स्वातन्त्र्य-संग्राम

के

महारथी

सम्पादक

परमानन्द शास्त्री, एम० ए०, एम० ओ० एल०

राजेन्द्र कालेज, भटिंडा ।

प्रकाशक

भारत भारती लिमिटेड,

दरियागंज, दिल्ली ।

१९५२

सूची

प्राक्कथन

छात्रों के जीवन-निर्माण और पथ-प्रदर्शन के हेतु महापुरुषों की जीवनियों का अध्ययन अत्यन्त उपयोगी और महत्वपूर्ण प्रमाणित हुआ है।

'यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः'

महापुरुष जैसा जैसा कार्य करते हैं दूसरे लोग भी वैसा ही आचरण करते हैं। भगवान् कृष्ण के कहे हुए उक्त सिद्धान्त के अनुसार महापुरुषों के जीवन का अध्ययन जन-सामान्य के लिए, विशेषतः जीवन-निर्माण की ओर अग्रसर हो रहे विद्यार्थी-वृन्द के लिए परमावश्यक है। देश-काल के वातावरण के अनुसार परिस्थितियाँ परिवर्तित होती रहती हैं। इस प्रकार की परिवर्तित परिस्थितियों में पूर्वयुग के महापुरुषों की अपेक्षा सम-सामयिक महामानवों के जीवन का अध्ययन विशेष लाभप्रद हो सकता है।

सौभाग्य से बीसवीं शती में भारतभूमि ने अनेक ऐसे नर-रत्नों को जन्म दिया जिनकी दिव्य आभा से युग-युगान्तरों तक विश्व का कोना-कोना जगमगाता रहेगा। इन मनस्वियों के राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय कार्य संसार के इतिहास में सदा स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेंगे। भारतीय स्वाधीनता के लिए इन वीर-पुंगवों ने अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया। स्वातन्त्र्य-संग्राम के प्रांगण में ये साहसी योद्धा परमोत्साह

के साथ कंधे से कंधा लगाये जूझते रहे। इनके अथक संघर्षों के फलस्वरूप ही राष्ट्र स्वतन्त्र हो सका है।

इस स्वाधीनता के महान् संघर्ष में दो प्रकार की विरुद्ध प्रवृत्तियाँ समानान्तर रूप से कार्य करती रहीं—हिंसात्मक और अहिंसात्मक। दोनों प्रकार की प्रवृत्तियों के परिचालक नेतागणों का उद्देश्य एक ही था। हिंसा में विश्वास रखने वाले परम साहसी सेनानियों के अपूर्व बलिदानों से भी स्वाधीनता-लाभ में सहयोग अवश्य प्राप्त हुआ, इसमें कुछ सन्देह नहीं। फिर भी यह तो मानना ही होगा कि स्वतन्त्रता की यह लड़ाई मुख्य रूप से अहिंसात्मक तत्त्वों के द्वारा ही लड़ी गई थी। यह सर्वसम्मत तथ्य है कि भारत की पराधीनता के पाशों से मुक्ति सत्य और अहिंसा के सिवा अन्य किसी अस्त्र से हो ही नहीं सकती थी। भारत का वर्तमान और भविष्य भी इसी सत्य, अहिंसा, समता, सद्भाव और भ्रातृत्व की नीति से ही उज्ज्वल हो सकता है। इसी लिए इन सिद्धान्तों के प्रचार की इस समय परमावश्यकता अनुभव की जा रही है।

इन्हीं सब बातों को ध्यान में रख कर ही इस पुस्तक में स्वातन्त्र्य-संग्राम के ऐसे ६ अनुपम सेनानियों की जीवन-गाथा अंकित करने का प्रयत्न किया गया है, जो आरम्भ से अंत तक सत्य और अहिंसा के सुनहरे सिद्धान्तों के सच्चे समर्थक रहे और जिनके असम शौर्य और साहस के द्वारा ही राष्ट्र स्वतन्त्रता देवी के साक्षात्कार का सौभाग्य प्राप्त करने में समर्थ हो सका। ऐसे महामानवों में विश्ववन्द्य बापू का स्थान सर्वोच्च है। वास्तव में गांधी जी के अथक प्रयत्नों का देश को स्वाधीनता दिलाने में सर्वोपरि हाथ रहा है। इस संग्राम के सर्वांशतः वे ही संचालक थे। वे नीति-निर्धारक और समग्र गतिविधियों के प्रेरक तथा सेनानायक थे। शेष सब नेतागण मानों उनके इंगितों पर निर्भीक भाव से अपने प्राणों की बाजी लगाकर ब्रिटिश साम्राज्य को

झकझोर देने वाले वीरव्रती सैनिक थे। जिस प्रकार अकेले कृष्ण के चरित्र में महाभारत के सम्पूर्ण पात्रों के चरित्रों का समावेश हो जाता है, वैसे ही अकेले बापू के पावन चरित्र में इस स्वाधीनता-संग्राम के सभी प्रमुख पात्रों का चरित्र स्वतः अंकित हो जाता है। इन्हीं सब बातों को देखते हुए प्रस्तुत पुस्तक में बापू के चरित्र को सुविस्तृत रूप में चित्रित किया गया है। यूँ तो महात्मा जी का चरित्र इतना महान् और गम्भीर है कि उस पर हज़ारों पृष्ठ भी लिख दिये जायँ तब भी वह पूर्ण न हो सके, फिर भी इस छोटी-सी पुस्तक में जितने अधिक विस्तार के साथ उस दिव्य चरित की झलक दिखाई जा सकती थी, उतनी दिखाने का पूर्ण प्रयत्न किया गया है। महात्मा जी ने सत्य, अहिंसा, त्याग, तपस्या, अदम्य उत्साह, उच्च भावना, शील और सदाचार की नींव रखकर स्वतंत्रता का युद्ध आरम्भ किया और इसी नींव पर मंज़िल पर मंज़िल बनाते चले गये और अन्त में पूर्ण सफलता प्राप्त की। स्वातंत्र्य-युद्ध की नीति का निर्धारण और संचालन उनके हाथ में था। शेष सब नेता उन्हीं की नीति का अनुकरण करते थे, उन्हीं के चरण-चिह्नों पर चलते थे और उन्हीं से सब प्रकार की शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करते थे इसलिए उनका स्थान गौण रहता है। मुख्य स्थान महात्मा जी के सिवा किसी को भी प्राप्त नहीं हुआ और इसी दृष्टि से हमने इस पुस्तक में उनकी जीवनी को अधिक विस्तार, महत्व और प्रथम स्थान दिया है। उनकी जीवनी को लगभग १०० पृष्ठ देकर हमने उनके जीवन के लक्ष्य को बालकों के सम्मुख रखने का पूर्ण प्रयत्न किया है जिससे पाठक भली-भाँति उनके जीवन-रहस्य को पा सकें। महात्मा जी के अतिरिक्त इस पुस्तक में राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद, महामान्य श्री नेहरू जी प्रधान मंत्री, सरोजिनी नायडू, लाला लाजपतराय और लौह-पुरुष सरदार पटेल की जीवन-गाथा अंकित की गई हैं। आशा है, ये चरित्र सुकुमार-मति छात्रों के जीवन-निर्माण में परम सहायक

सिद्ध होंगे।

श्री प्रो० रामलाल सावल एम०ए०, श्री प्रो० रामस्वरूप एम०ए०, श्री पं० भवानीशंकर शास्त्री, श्री शादीराम जोशी एम० ए० इन चारों विद्वान् लेखकों का हार्दिक धन्यवाद करता हूँ जिनकी परम सुन्दर रचनाओं के द्वारा इस पुस्तक-स्तवक का निर्माण हो सका है।

—सम्पादक

महात्मा गांधी

महात्मा गांधी का पूरा नाम श्री मोहनदास कर्मचंद गांधी था। 'गांधी' नाम से ऐसा ज्ञात होता है कि गांधी वंश का पहले कभी पंसारी या तेल इत्र आदि का व्यवसाय रहा होगा, पर महात्मा जी के दादा (पितामह) श्री उत्तमचंद गांधी काठियावाड़ में पोरबंदर रियासत के दीवान थे। इनके पिता श्री कर्मचंद गांधी भी पहले पोरबंदर और बाद में राजकोट एवं बांकानेर रियासतों के दीवान रहे। श्री उत्तमचंद गांधी ने निर्भीक प्रकृति पाई थी और यही निर्भीकता उनके दीवान-पद को त्यागने का कारण भी हुई। यह पद-त्याग एक राजनीतिक षड्-यन्त्र का परिणाम था। परन्तु इनकी राजभक्ति पर इसका कोई प्रभाव न पड़ा। पद-लाभ के बाद वे पोरबंदर से जूनागढ़ चले गये थे। वहाँ एक समय उनका साक्षात्कार नवाब साहब से हो गया और उन्होंने बाएँ हाथ से नवाब साहब को अभिवादन किया। पूछे जाने पर उत्तर में कहा कि "दायाँ हाथ तो पहले से ही पोरबंदर का राजभक्त हो चुका है"। इस घटना से उनके चरित्र की निर्भीकता के साथ-साथ अनन्य राजभक्ति और दृढ़ सिद्धान्तवाद का भी परिचय मिलता है। पिता के इन गुणों को कर्मचंद ने भी मानों सम्पत्ति के साथ ही ग्रहण कर लिया था। कर्मचंद जी ने स्कूल में शिक्षा नहीं पाई थी, उन्होंने शिक्षा केवल अनुभव से प्राप्त की थी। वे एक अनुभवी राज्याधिकारी थे। निर्भीक और राजकाज में प्रवीण थे। उनमें सत्य की प्रवृत्ति थी। पिता के समान

ये भी पोरबंदर के दीवान रहे और उसके बाद कुछ समय राजकोट और वांकानेर के भी दीवान रहे।

वांकानेर के प्रधानमन्त्री के पद को भी इन्होंने आत्म-सम्मान के कारण ही त्याग दिया था। इन्होंने चार विवाह किये थे, चतुर्थ विवाह चालीस वर्ष की आयु में श्रीमती पुतलीबाई जी से हुआ। इन्हीं माता-पिता के घर पोरबंदर में २ अक्तूबर १८६६ ई० (आश्विन कृष्ण १२ सं० १६२५) को मोहनदास का जन्म हुआ। मोहनदास अपने माता-पिता की अन्तिम सन्तान थे। महात्मा जी के हृदय पर अपनी माता जी का प्रभाव विशेष पड़ा प्रतीत होता है। 'आत्म-कथा' में वे उनके बारे में इस प्रकार लिखते हैं—"मेरे मन पर ऐसे संस्कार हैं कि मेरी माता जी साध्वी स्त्री थीं, वह बहुत भावुक थीं। पूजा-पाठ किये बिना कभी भोजन न करतीं, वैष्णव मंदिर रोज जातीं। मैंने जब से होश संभाला, याद नहीं पड़ता कि उन्होंने चातुर्मासिक व्रत कभी छोड़ा हो। कठिन से कठिन व्रत वह लेतीं और उन्हें पूरा करतीं। बीमार पड़ जाने पर भी वह लिये हुए व्रतों को न छोड़तीं। ऐसा एक समय मुझे याद है, जब उन्होंने चांद्रायण व्रत किया था। उसमें बीमार पड़ गईं, पर व्रत न छोड़ा। चातुर्मास में एक समय के भोजन का व्रत तो उनके लिए मामूली बात थी। एक चातुर्मास में उन्होंने सूर्यनारायण के दर्शन करने के बाद ही भोजन करने का नियम लिया। इस चातुर्मास में हम बच्चे बड़ी उत्सुकता से बादलों की ओर देखा करते थे ताकि सूर्य निकलने की सूचना माँ को दें और वह भोजन करें। चौमासे में बहुत बार सूर्य-दर्शन दुर्लभ होते हैं। मुझे ऐसे दिन याद हैं, जब कि हम सूर्य को देखते और चिल्लाते, 'माँ, माँ सूरज निकला' और माँ जल्दी-जल्दी आतीं, तब तक सूर्य छिप

जाता। वह यह कहती हुई लौट जातीं, "कोई बात नहीं, भगवान् की मर्जी नहीं कि आज भोजन करूँ।" और जाकर अपने काम में लग जातीं। वह व्यवहार-कुशल भी थीं। राजदरबार की सब बातें जानती थीं। रनवास में वह बुद्धिमती समझी जाती थीं।"

पिता की निर्भीकता, सत्य-प्रियता एवं न्याय-परायणता और माता की धर्म-भीरुता और उपवास-प्रवृत्ति का अलक्ष्य प्रभाव जो मोहनदास के अन्तःकरण पर शिशुकाल से ही अंकित हो गया था, आगे चलकर 'उनके जीवन-दर्शन के मूल-सिद्धान्तों के रूप में प्रतिफलित होगा', यह कौन जानता था।

बालपन और शिक्षा—

पोरबंदर से जब इनके पिता राजकोट गये तो इनकी आयु लगभग सात वर्ष की थी। वहाँ एक देहाती पाठशाला में इनकी पढ़ाई मन्द गति से चलती रही। पाठशाला से ऊपर के स्कूल और बाद में हाईस्कूल तक की शिक्षा इन्होंने राजकोट में ही प्राप्त की। इनकी गणना साधारण विद्यार्थियों में ही होती थी। इनका स्वभाव बड़ा संकोची और झेंपू था और किसी से मिलते-जुलते न थे। पर माता-पिता के अच्छे संस्कारों की इनमें प्रबलता थी। झूठ बोलने का दुर्गुण कभी उनमें न आया। सत्य की ओर बचपन से ही इनकी रुचि और प्रवृत्ति रही। सत्य के साथ ही गुरुजनों के प्रति आदर एवं भक्ति का भाव भी इनमें आरम्भ से ही था। इस विद्यार्थि-जीवन की दो घटनाओं का उन्होंने उल्लेख किया है जिनका प्रभाव उनके भावी जीवन पर विशेष रूप से पड़ा। पहली घटना 'श्रवण पितृ-भक्ति नाटक' से सम्बन्ध रखती है, जिसे पढ़कर माता-पिता के प्रति इनके हृदय में जो भक्ति का अंकुर था वह और अधिक पल्लवित हो उठा। शीशे में तस्वीर दिखानेवाले से भी एक दिन

श्रवण की मातृ-पितृ-भक्ति की तस्वीरें देखीं। ये दृश्य देख उनका हृदय गद्गद् हो उठा, आँखों में आँसू भर आये। मातृ-पितृ-भक्ति की भावना और भी जागृत और दृढ़ हो गई। इसी प्रकार एक वार उन्होंने पिता की आज्ञा से 'हरिश्चन्द्र' नाटक का अभिनय देखा। यह दूसरी घटना थी जिसका स्थायी प्रभाव उनके चित्त पर पड़ा। इस सम्बन्ध में वे लिखते हैं—"इस नाटक को देखते मैं अघाता न था। वार-वार उसे देखने को मन हुआ करता, पर वार-वार कौन जाने देने लगा ? जो हो। अपने मन में मैंने इस नाटक को सैकड़ों वार खेला होगा। हरिश्चन्द्र के सपने आते। यही धुन लगी रहती कि हरिश्चन्द्र की तरह सव सत्यवादी क्यों न हों ? यही धारणा होती कि हरिश्चन्द्र की तरह विपत्तियाँ भोगना और सत्य का पालन करना ही सच्चा सत्य है।" इन दोनों घटनाओं का जो तीव्र प्रभाव इनके हृदय पर वालपन में ही पड़ गया वह आगे चलकर जिस ईश्वरभक्ति और सत्य-निष्ठा में मूर्तिमान् हुआ उसे सारे संसार ने अपनी आँखों से देखा है।

जव ये हाई स्कूल में पढ़ ही रहे थे, इनका विवाह गोकुलदास मकनजी की पुत्री कस्तूरवाई से हो गया। उस समय मोहनदास की अवस्था केवल १३ वर्ष की थी। विवाह के उपरान्त पढ़ाई में ये अधिक ध्यान देने लगे। शायद विवाहित होने के वाद मोहनदास कुछ जिम्मेदारी का अनुभव करने लगे थे। अव शिक्षक का उलहना भी उन्हें चुभता था। एक वार किसी त्रुटि के कारण अध्यापक ने इन्हें पीटा। इसका इन्हें वहुत दुःख हुआ। फूट-फूट कर रोये। उन्हें पिटने का इतना दुःख न हुआ जितना पिटने के योग्य समझे जाने का। इसी समय से वे अपने सभी कार्यों में विशेष सावधानी वरतने लग गये।

गांधी जी ने अपने इस विद्यार्थि-जीवन की एक दुःखद घटना

का उल्लेख किया है। इस घटना को उन्होंने 'अपने जीवन का एक दुःखद प्रकरण' कहा है। यह घटना 'शेख महताब नामक एक युवक से घनिष्ठता' की है। यह युवक उनके मंझले भाई का सहपाठी था और अनेक कुसंस्कारों एवं दुर्गुणों से युक्त था। गांधी जी उसके दुर्गुणों से अपरिचित न थे, पर उसके कुछ एक गुणों पर मुग्ध भी थे। उसका शरीर इनसे अधिक गठीला और अधिक बलवान् था। साहसी भी अधिक था। वह जितना चाहे दौड़ सकता था। लंबी और ऊँची कुदान में उसे कौशल प्राप्त था। मार सहने की शक्ति भी वैसी ही थी। इस शक्ति का प्रदर्शन भी वह समय-समय पर करता रहता था। इस युवक के ऐसे-ऐसे पराक्रम के कामों से गांधी उस पर मुग्ध हो गये थे। वे स्वयं भीरु प्रकृति के बालक थे। चोरों, साँपों और भूत-प्रेतों का भय उनके मन को सदा विचलित किये रखता था। कमरे के भीतर भी बिना रोशनी के वे न सो सकते थे। अपने अन्दर जिस शक्ति का अभाव होता है उसे दूसरे में देखकर आश्चर्यान्वित होना स्वाभाविक है। यही गांधी जी के विषय में भी हुआ। "मैं भी इस मित्र के समान बलवान् हो जाऊँ तो क्या ही अच्छा हो!" इस लालसा से गांधी जी उस युवक की ओर आकर्षित हो गये। उनकी यह संगति उनकी माता, पत्नी एवं बड़े भाई को भी बुरी लगी परन्तु गांधी जी पर ऐसी मोहनी छाई थी कि उन्होंने इनकी चेतावनी की उपेक्षा की और उस युवक से घनिष्ठता बढ़ाते गये। गांधी जी को विश्वास था कि वे उसकी बुराइयों के शिकार नहीं हो सकते, उलटे अपने सुसंस्कारों से उसे ही सुधार-मार्ग पर ले आवेंगे। आगे जाकर उन्हें अपने इस व्यवहार पर पश्चात्ताप ही नहीं, दुःख भी हुआ। समान गुण और शील वालों में ही मित्रता शोभती और निभती है।

इस मित्र ने गांधी जी को मांसाहार की प्रेरणा देना आरंभ कर दिया। नित्य नई-नई दलीलों और उदाहरणों द्वारा इस प्रेरणा को बलवती बनाता जाता था। "मांस आदि वस्तुओं से शरीर का गठन होता है, उसमें चुस्ती आती है और दौड़ने-भागने की शक्ति उत्पन्न होती है।" ऐसे-ऐसे उपदेशों द्वारा उसने गांधी के विश्वास में शिथिलता संचरित कर दी और उनकी मानसिक शक्ति को निर्बल बना दिया। गांधी के मंझले भाई इस व्यसन में पहले से ही फँसे हुए थे और वे खूब खेलते-कूदते दौड़ते थे। उनमें फुर्ती थी और निडरता भी। चूँकि गांधी जी स्वयं निर्बल थे, सुस्त और डरपोक थे। अतः उस मित्र की दलीलों का मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। कुछ ही दिनों में उन्होंने मांसाहार की उपयोगिता स्वीकार कर ली। वह दिन भी निश्चित हो गया जब मांसाहार आरंभ किया जाय; परन्तु यह सब कुछ गुप्त रखा गया क्योंकि गांधी-परिवार वैष्णव होने के कारण कट्टर शाकाहारी था। मालूम होने पर माता-पिता को बहुत दुःख होगा, इस दृष्टि से भी सारी बातें गुप्त रखने का निश्चय हुआ। दूर नदी के तट पर स्थान नियत किया गया। नियत दिन आया। वे स्वयं लिखते हैं—"उस दिन की अपनी दशा का वर्णन करना कठिन है। एक तरफ़ था 'सुधार' का उत्साह और दूसरी ओर थी चोर की भाँति छिपकर काम करने की शर्म। मैं नहीं कह सकता कि इसमें किस की प्रधानता थी। हम लोग नदी किनारे एकान्त की खोज में चले। दूर जाकर ऐसा कोना तलाश किया जहाँ कोई सहसा देख न सके, और वहाँ मैंने पहले-पहल मांस खाया। साथ भटियारे के यहाँ की डबलरोटी थी। दो में से एक भी चीज न भाई। मांस चमड़े-सा लग रहा था। खाना असंभव हो गया, मुझे क़ै आने लगी। खाना बीच में ही छोड़ देना पड़ा। मेरी वह रात बड़ी

कठिनाई से कटी। नींद किसी तरह न आती थी। सपने में ऐसा मालूम होता था मानों बकरा मेरे शरीर के भीतर जिन्दा है और मैं···मैं···करता है। मैं चौंक-चौंक कर उठता, पछताता, पर फिर सोचता कि मांसाहार के बिना तो गति ही नहीं; यों हिम्मत नहीं हारनी है। मांसाहार एक कर्त्तव्य है और मुझे हिम्मत से काम लेना है।"

इस प्रकार 'सुधार' की दृष्टि और मित्रों के उत्साह-दान से यह क्रम आगे भी चला। इन्होंने समय-समय पर कोई पाँच-छः बार मांसाहार किया। यद्यपि वे मांस खा लेते थे पर उनके मन में उत्तम संस्कारों के कारण संघर्ष निरन्तर होता रहा। दबाये जाने पर भी ये संस्कार बार-बार उभर आते थे। इस एक दोष को छिपाने के लिए अनेक बहाने बनाने पड़ते थे। जिस दिन मांसाहार करते, घर खाना न खा सकते और माता से झूठे बहाने करने पड़ते। ऐसा करते समय उनके हृदय पर एक चोट पड़ती—'यह झूठ और वह भी माँ के सामने।' सत्य की निष्ठा और मातृभक्ति के कारण अपना व्यवहार उन्हें बहुत खलता था। चित्त में व्याकुलता रहती कि मैं माता-पिता को धोखा दे रहा हूँ। धीरे-धीरे उत्तम संस्कारों ने बल पकड़ा और उन्होंने निश्चय कर लिया—"यद्यपि मांस खाना आवश्यक है, उसका प्रचार हिन्दुस्तान में करके भोजन-सुधार करना है; पर माता-पिता से झूठ-कपट मांसाहार से भी बुरा है। अतः माता-पिता के जीते जी मांस न खाऊँगा, और तब तक के लिए मांसाहार स्थगित।" यह निश्चय उन्होंने शेख महताब को सुना दिया और तब से मांसाहार छूटा-सो-छूटा ही। माता-पिता ने कभी न जाना कि उनके दो पुत्र मांसाहार कर चुके हैं। माता-पिता से झूठ-कपट न करने के शुभ विचार से मांसाहार तो छूट गया पर मित्र की मित्रता तब भी

बनी रही। उस मित्र ने यहीं तक नहीं, आगे भी कदम बढ़ाया। मांसाहार से व्यभिचार की ओर गति हुई। एक बार दलदल में गिरने पर धीरे-धीरे नीचे जाने लगा। अभी और भी कटु अनुभव होने शेष थे। इस मित्रता ने कई रंग खिलाये। एक दिन यह मित्र उन्हें चकले में ले गया। उसने बाई (वेश्या) से सब बातें पहले ही ठहरा ली थीं और उसे पैसे भी दे दिये थे। पर अपने झेंपू स्वभाव के कारण मोहनदास गड्ढे में गिरने से बच गये या उन्हीं के शब्दों में यह कहना अधिक अच्छा है कि "ईश्वर ने मुझे बचा लिया"।

इसी प्रकार चचा इत्यादि की देखा-देखी सिगरेट पीने की लत १२-१३ वर्ष की आयु में पड़ गई। इस कार्य के लिए पैसे न मिलने पर नौकरों के पैसों में काट-कपट कर चोरी करने लगे। पर चोरी-चोरी यह काम करने में बड़ी ग्लानि में एक दिन आत्म-हत्या कर लेने का विचार भी हो गया। धतूरे के बीज खोज लाये और मन्दिर के एकान्त स्थान में सायंकाल को आत्म-हत्या करने चले पर एक दो बीज खाते ही हिम्मत छूट गई। मरना सरल काम नहीं। इसका फल यह हुआ कि सिगरेट की जूठन पीने और नौकरों के पैसे चुरा कर उनसे सिगरेट लाने की बुरी आदत छूट गई।

आत्म-कथा में उन्होंने चोरी की एक और घटना का उल्लेख किया है। इनके मांसाहारी मंझले भाई ने व्यसनों में फँसकर पचीस रुपये का ऋण अपने सिर पर लिया था। इस ऋण को चुकाने का कोई अन्य उपाय न देख दोनों भाइयों ने निश्चय किया कि मंझले भाई के हाथ में पड़े सोने के एक कड़े को काट कर उस टुकड़े को बेचकर उऋण हुआ जावे। कड़ा काटा गया और ऋण पट गया। मोहनदास को यह चोरी बहुत खली। वे इसे सहन न कर सके।

मन-ही-मन अपने आप को धिक्कारने लगे। आगे चोरी न करने का तो निश्चय कर ही लिया, परन्तु किया हुआ पाप बार-बार उन्हें दुखी करता रहा। पिता जी से सच-सच कह देने का विचार मन में उत्पन्न होता पर उनके रुष्ट हो जाने और स्वास्थ्य पर रुग्णावस्था में और भी बुरा प्रभाव पड़ने के भय से ऐसा करने का साहस न हुआ। अन्त में यह विचार कर कि दोष स्वीकार किये बिना मन की शुद्धि न हो सकेगी, उन्होंने पिताजी को एक पत्र लिखा जिसमें सब बातें लिख दीं और अपना दोष स्वीकार कर क्षमा-याचना की। साथ ही भविष्य में कभी ऐसा न करने की प्रतिज्ञा भी कर ली। पिता ने पत्र पढ़ा और उनकी आँखों से मोती की बूँदें टपकीं, पत्र भीग गया। तनिक देर के लिए उन्होंने आँखें मूँदीं और पत्र फाड़ डाला। यह दृश्य देख मोहनदास भी रो पड़े। मोहन के मन का पाप और पिता के मन का बोझ आँसुओं से धुल गया। पिता इनके सम्बन्ध में निःशंक हो गये। गांधी जी 'आत्म-कथा' में लिखते हैं—"इन मुक्ता-बिन्दुओं के प्रेम-बाण ने मुझे बींध दिया। मैं शुद्ध हो गया। इस प्रेम को तो वही जान सकता है, जिसे उसका अनुभव हुआ है।

राम-बाण वाग्यॉं रे होय ते जाणे।"

यह घटना मानों पुत्र की पिता से अन्तिम क्षमा-याचना और पिता का पुत्र को अन्तिम क्षमादान और चारित्र्य-दीक्षा थी। उन दिनों इनके पिता भगंदर रोग से पीड़ित थे। रोग बढ़ता जाता था। गांधी रोगी की सेवा-शुश्रूषा में अपनी माता और चचा का हाथ बटाने में संलग्न रहने लगे। वे अधिक समय उनके पास बिताते और उनकी परिचर्या करते रहते, पर "मर्ज बढ़ता गया ज्ूँ ज्ूँ दवा की"। सन् १८८५ ई० को पिता का स्वर्गवास हो गया। और अब सारे परिवार की देख-रेख माता पुतलीबाई को ही

करनी पड़ी।

१८८७ में मोहनदास ने मैट्रिक परीक्षा पास की और भावनगर के श्यामलदास कॉलेज में भरती हुए। यहाँ इन्हें पाठ्य-विषय कठिन मालूम हुए और अध्ययन में मन न लगा। वहाँ का वातावरण भी इनके मनोनुकूल नहीं था। ऐसे ही समय इनके परिवार के मित्र श्री मावजी दवे ने एक सुझाव रखा कि यदि मोहनदास को अपने पिता के स्थान पर प्रधान-मन्त्री बनना है तो उसे विलायत जाकर बैरिस्टरी पास करनी चाहिए। अनेक कठिनाइयों के होते हुए भी भाई और माता ने विलायत जाने की आज्ञा दे दी। माता जी के सामने इन्होंने मांस, मदिरा और स्त्री-संग से दूर रहने की प्रतिज्ञाएँ लीं। जातीय पंचायत ने इस कार्य में बाधा डालने का प्रयत्न किया और जाति-बहिष्कार की धमकी दी। मोहन को माता की आज्ञा मिल चुकी थी, अतः जातिवालों की धमकियों की उपेक्षा करके उन्होंने ४ सितम्बर १८८८ ई० को बम्बई से विलायत के लिए प्रस्थान कर दिया।

समुद्र-यात्रा करते समय उन्हें जहाज में विशेषतः दो कठिनाइयों का सामना करना पड़ा—एक तो अपने झेंपू स्वभाव के कारण अन्य यात्रियों से बातचीत करने में भी वे संकोच करते थे। अपने केबिन में ही प्रायः पड़े रहते थे। दूसरी कठिनाई निरामिष भोजन की थी। पर मोहनदास माता से की हुई प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहे और दुःख-सुख सहते यात्रा को पूरा किया।

डा० प्राणजीवन मेहता ने, जो पहले से ही इंग्लैंड में थे, इनका स्वागत किया। उन्होंने इन्हें होटल में ठहरा दिया। डा० मेहता ने इन्हें विलायत के आचार-विचार और रीति-नीति से परिचित कराया। होटल का निवास इन्हें 'सांसत-घर'-सा लगा; क्योंकि एक तो घर से बाहर रहने का यह प्रथम अवसर था और फिर

यह महँगा भी था। खान-पान की भी कठिनाई थी। विक्टोरिया होटल को छोड़ कुछ मित्रों के साथ ये एक कमरा किराये पर लेकर रहने लगे। यहाँ भी ये परेशान ही रहे। कुटुम्बियों और विशेषकर माता का विरह इन्हें बहुत सताता था। घर बार-बार याद आता था। रातें रोकर बिताईं। नींद आती ही न थी। रहन-सहन और बोल-चाल का ढंग भी अच्छी तरह नहीं आता था। भोजन भी निरामिष होने के कारण रूखा-सूखा लगता था। फलतः न तो शीघ्र देश लौट ही सकते और न वहाँ दिल लगता। साँप-छछून्दर की दशा हो गई। कुछ दिनों के पश्चात् डा० मेहता ने उस कमरे को छुड़वा कर एक कुटुम्ब में रहने का आयोजन करवा दिया। अब उन्हें सभ्य बनने की धुन सवार हुई। बम्बई के सिले कपड़ों को त्याग कर 'आर्मी और नेवी स्टोर' में दूसरे कपड़े बनवाये। उन्नीस शिलिंग की 'चिम' की हैट ली। इससे भी सन्तोष न हुआ तो बांड स्ट्रीट में, जहाँ शौकीन लोगों के कपड़े सिलते थे, वहाँ सायंकालीन वेष-भूषा के कपड़े बनवाये जिसमें दस पौंड खर्च हुए। घड़ी के लिए सोने की चेन का प्रबन्ध किया। टाई बाँधने की कला सीखने का प्रयत्न किया। मिनटों शीशे के सामने खड़े रहकर टाई बाँधा करते और माँग काढ़ा करते। माँग का तो इन्हें विशेष ध्यान रहता था, कहीं बिगड़ न जाय। परन्तु इतनी टीप-टाप ही बस न थी। उन्होंने सोचा अकेली सभ्य पोशाक से ही तो कोई सभ्य नहीं हो जाता। सभ्यता की अन्य बातों को सीखने की भी धुन सवार हुई। अतः एक तिमाही की तीन पौंड फ़ीस देकर नृत्य-कला की कक्षा में भरती हुए। पर सुर-तान का ज्ञान न होने के कारण नृत्य-कला न सीख सके। अतः तीन पौंड खर्च करके वायलिन खरीदा गया और शिक्षिका की फ़ीस भी भरी। भाषण-कला भी सभ्यता का लक्षण है अतः उसके लिए

अन्य शिक्षक की खोज की गई। उसे भी एक गिन्नी की भेंट चढ़ाई। उसकी प्रेरणा से बैल की 'स्टेंडर्ड एलोक्यूशनिस्ट' पुस्तक खरीदी और पिट के भाषण से श्रीगणेश किया।

पर इन बैल साहब ने उनके कान में चेतावनी की बैल (घंटी) बजा दी और उन्हें सचेत कर दिया। आत्म-कथा में उन्होंने लिखा है कि "सभ्यता के इन बाह्याडम्बरों के प्रति सचेत हो मैंने एक पत्र अपने भाषण-शिक्षक तथा अन्य शिक्षकों को लिखकर इनसे पीछा छुड़ाया।" इसके बाद उन्होंने वायलिन भी बेच दी। सभ्य बनने की इस सनक से तो तीन मास में ही पीछा छूट गया परन्तु कपड़ों की तड़क-भड़क बरसों चलती रही। सारांश यह कि अब वे विद्यार्थी बन गये। सभ्य बनने की इस दौड़ में उन्हें एक लाभ अवश्य हुआ कि उन्हें फ्रेंच और लेटिन भाषाओं का ज्ञान हो गया।

अभी तक उनके भोजन की समस्या का ठीक-ठीक सुझाव नहीं हो पाया था। उस समय लंदन में निरामिष भोजनालय दो चार ही थे। चूँकि उन्हें अपनी प्रतिज्ञा का पूरा ध्यान बना रहता था, इसलिए ऐसे भोजनालय की खोज में रहते थे। उस कुटुम्ब-गृह में उन्हें पेट भर भोजन नहीं मिलता था, हर भोजन-वेला पर दो-तीन टुकड़े रोटी के मिला करते थे जिस कारण वास्तव में वे भूखे ही रहा करते थे। उन्होंने एक दिन समीप ही फेरिंगडन स्ट्रीट में एक निरामिष भोजनालय खोज लिया और लन्दन में पहली बार उन्होंने पेट भर कर भोजन किया। पर पेट भर भोजन करने के लिए धन भी उतना ही व्यय करना पड़ता था। अतः कभी-कभी वे हाथ से भी भोजन बना लिया करते थे। यहीं अन्नाहार और फलाहार का अच्छा विवेचन करने वाली पुस्तकें भी उनके हाथ लगीं जिनमें एक हेनरी साल्ट की 'A plea for Vegetarianism'

शीर्षक पुस्तक थी। इसे पढ़कर अन्नाहार की उपयोगिता पर इनका विश्वास बढ़ गया। तभी से भोजन संबंधी प्रयोगों की धुन इन पर सवार हुई जो उनके जीवन-चर्या का एक अंग रही। पर गांधी जी के संबंध में पहले कार्य आरंभ हुआ और पीछे विश्वास। यही उनके सारे जीवन की विशेषता रही है। कार्य पहले होता और उसके समर्थन में युक्तियाँ पीछे सोची जाती थीं। महान् से महान् कार्यों में भी उनकी यही प्रवृत्ति रही।

सभ्य बनने की इस दौड़ में भी गांधी जी अपने व्यय की बटौती प्रतिदिन लिखा करते थे। भोजन, वस्त्र, किराया-भाड़ा, समाचार-पत्र, पुस्तकों तथा पत्रादि के व्यय का ठीक-ठीक हिसाब लिखकर रात्रि को अपनी पूँजी को कूतना उनका दैनिक स्वभाव था। भोजन-प्रयोगों के अनुभव के बाद उन्होंने एक ऐसा निवास-स्थान भी खोज लिया जो उनके स्कूल के समीप ही था। इस प्रकार किराये-भाड़े की बचत भी की और पैदल स्कूल जाने लगे। उन्हें दिन में आठ-दस मील पैदल घूमना पड़ जाता था जिससे कुछ शारीरिक व्यायाम भी हो जाता था।

भाई के धन के इस प्रकार अपव्यय को अनुचित समझ कर उन्हें व्यय में कमी करने की प्रेरणा हुई। सादा जीवन बिताने की ओर उनका ध्यान गया। उन्होंने तड़क-भड़क वाली वेश-भूषा को तिलाञ्जलि दे दी और एक कमरे में गुजर करने की ठान ली। प्रातःकालीन नाश्ता वे स्वयं बनाने लग गये और मध्याह्न-भोजन के लिए निरामिष भोजनालय में चले जाया करते। सायंकालीन भोजन भी घर पर ही बना लिया करते। भोजन पर बहुत कम व्यय होने लग गया। स्वदेश से जो मिठाइयाँ इत्यादि उन्हें अब तक आया करती थीं, उन्हें भी बंद करवा दिया। अपव्यय को यथासंभव उन्होंने बंद करने की ठान ली। बिना मसाले की उबली

हुई सब्जियों में ही वे रस लेने लगे। उन्होंने स्वयं कहा है कि इस प्रकार के अनेक प्रयोगों से उन्हें यह अनुभव हो गया कि "सुस्वाद का वास्तविक स्थान मन है, जिह्वा नहीं। मन के सन्तोष से जिह्वा की भी तृप्ति हो जाती है। अतः उन्होंने मनःपरिवर्तन की प्रवृत्ति पर बल दिया जो उनके जीवन का एक लक्ष्य ही बन गया। मन पर संयम कर लेने में सब प्रकार के आनन्द प्राप्त हो जाते हैं।

उनके विलायत-निवास की एक घटना विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने वहाँ भिन्न-भिन्न धर्मों का परिचय प्राप्त करने का प्रयत्न किया। इसी बीच में दो थियोसोफिस्ट मित्रों से साक्षात्कार हो गया जिनके आग्रह से उन्हें एडविन आर्नेल्ड-कृत गीता का अनुवाद पढ़ने की प्रेरणा मिली। मूलपाठ पढ़ने की भी उन्हीं से प्रेरणा मिली। इंग्लैंड में ही पहली बार इन्हें अनुभव हुआ कि 'भगवद्गीता एक अमूल्य-ग्रन्थ है।' उन्होंने स्वयं लिखा है कि "यह धारणा दिन-दिन अधिक बढ़ती गई—और अब तो तत्व-ज्ञान के लिए मैं उसे सर्वोत्तम ग्रन्थ मानता हूँ। निराशा के समय इस ग्रन्थ ने मेरी अपार सहायता की है।"

इन्हीं दिनों थियोसोफी (ब्रह्मवाद) की भी दो-एक पुस्तकें पढ़ डालीं। आर्नेल्ड-कृत 'बुद्धचरित' (Light of Asia) भी पढ़ा। बाइबल भी यहीं पढ़ी। उसका 'सर्मन ऑन दि माउण्ट' (गिरि-प्रवचन) नामक अध्याय पढ़ने पर इन्हें अत्यन्त आनन्द मिला। इसमें अपकार का बदला उपकार से और हिंसा का प्रेम से देने का उपदेश दिया गया है। ये भावनाएँ उनके हृदय में पैठ गईं। इन ग्रन्थों के अनुशीलन से इनके हृदय में ईश्वर के प्रति श्रद्धा का संचार हुआ और यह बात दिल में जम गई कि त्याग में ही धर्म है। इस प्रकार सत्य, अहिंसा और त्याग के

भाव इनके हृदय पर अंकित हो गये।

हाँ, तो लन्दन पहुँच कर ये ६ नवम्बर १८८८ को इनर टेम्पल में भरती हुए और जून १८६० को मैट्रिक पास की। फ्रेंच, लेटिन, कॉमन लॉ और रोमन लॉ का अध्ययन किया। अंग्रेजी भाषा में दक्षता प्राप्त की। अन्तिम परीक्षा पास करने में कोई कठिनाई नहीं हुई। १० जून १८६१ को ये बैरिस्टर हो गये और ११ जून १८६१ को इंग्लैंड के हाई कोर्ट में नाम रजिस्टर करवा कर भारत के लिए चल दिये। वहाँ एक भी दिन रहने की इनकी इच्छा न हुई।

देखा जाय तो मोहनदास गांधी ने जिस आयु में दो साल और आठ महीनों का समय इंग्लैंड में व्यतीत किया वह मनुष्य के चरित्र-संघटन एवं व्यक्तित्व-निर्माण का सर्वोत्तम समय होता है परन्तु गांधी पर वहाँ कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। इसका कारण यह था कि गांधी सामान्य छात्र का प्रतिरूप न थे, अतः सामान्य विद्यार्थियों के समान केवल अध्ययन ही उनके लिए ज्ञान-प्राप्ति का साधन न था। वे कर्मण्य थे और उनकी प्रकृति क्रियात्मक थी। उनका विकास कर्मण्यता द्वारा हुआ और कर्मण्यता ही उनके ज्ञान का साधन रही। वे बौद्धिक ज्ञानी न होकर एक सच्चे कर्मठ ज्ञानी थे। पर उनके सम्पूर्ण विद्यार्थि-काल में कहीं इस बात का संकेत तक नहीं मिलता कि यही मोहन-दास गांधी एक दिन ऐतिहासिक गांधी हो जायँगे। गांधी को जगत्प्रसिद्ध ऐतिहासिक गांधी अथवा युग-पुरुष बनाने का श्रेय वास्तव में जितना श्रीमद्भगवद्गीता को है उतना और किसी वस्तु को नहीं। यही शास्त्र उनके जीवन का सम्बल रहा, यही उनका गुरु और यही विपत्सखा।

भारत लौटे—

बम्बई में जहाज से उतरने पर इनके ज्येष्ठ भ्राता ने इन्हें सूचना दी कि उनकी माता का देहान्त हो चुका है। चूँकि मोहनदास का माता के प्रति अगाध प्रेम था, अतः विदेश में उन्हें यह शोक-संवाद नहीं भेजा गया था। इन्हें इससे अत्यधिक शोक हुआ पर वे अपनी भावनाओं पर काबू पाने में समर्थ हो गये। ये राजकोट चले गये। इनके ज्येष्ठ भ्राता श्री लक्ष्मणदास गांधी को, जो राजकोट में वकालत करते थे और जिन्होंने इनका विलायत का भारी व्यय सहन किया था, अपने नये बैरिस्टर भाई से अनेक आशाएँ थीं, पर उन्हें घोर निराशा हुई। गांधी जी वकालत करने में नितान्त असफल रहे। पहले राजकोट और बाद में बम्बई दोनों जगह इन्हें अपने झेंपू स्वभाव के कारण वकालत में असफलता का मुँह देखना पड़ा। बम्बई से पुनः राजकोट चले आये और वहाँ अर्जियाँ (प्रार्थना-पत्र) लिखने के काम से इन्हें लगभग तीन सौ रुपया मासिक की आय होने लग गई। भाई इनके लिए किसी नौकरी की खोज में थे। इसी समय इनके भाई के पास पोरबंदर की एक मेमन दुकान का सन्देश आया—"दक्षिण अफ्रीका में हमारा व्यापार है। हमारी दुकान बड़ी है। वहाँ हमारा एक बड़ा मुकदमा चल रहा है। चालीस हजार पौंड का दावा है। हमारी तरफ़ बड़े-बड़े और अच्छे बैरिस्टर हैं। यदि अपने भाई को वहाँ भेज दें तो हमें भी सहायता मिलेगी और उनकी भी कुछ मदद हो जायगी। वह हमारा मामला हमारे वकीलों को अच्छी तरह समझा सकेंगे। काम भी कोई परिश्रम का नहीं। आने-जाने का पहले दर्जे का किराया मिलेगा और खान-पान के अतिरिक्त १०५ पौंड पारिश्रमिक।" काम एक साल का था। मोहनदास ने स्वीकार कर लिया और पहले दर्जे का

टिकट ले अप्रैल १८६३ में जहाज से दक्षिण के लिए चल दिये। इस समय तक उनके दो पुत्र हो चुके थे। हीरालाल का जन्म इंग्लैंड जाने से पहले और मणिलाल का २८ अक्तूबर १८६२ को इंग्लैंड से लौटने के एक साल बाद। इस प्रकार वे कस्तूरबा और दोनों पुत्रों को यहीं छोड़ कर शीघ्र लौट आने का आश्वासन दे पुनः विदेश को प्रस्थान कर गये।

अफ़्रीका में—

मई १८६३ को गांधी जी नेटाल के डरबन बंदर पर उतरे। अब्दुल्ला सेठ ने उनका स्वागत किया और बंगले पर ले गये। अपने कमरे के पास ही सेठ जी ने इन्हें एक कमरे में ठहराया। दक्षिण अफ़्रीका में रंग-भेद, जाति-भेद एवं धर्म-भेद का बोलबाला था। गोरे (अँग्रेज) भारतीयों को कुली या सामी नाम से पुकारते थे और इस प्रकार व्यवसाय-भेद के अनुसार उन्हें 'कुली अध्यापक', 'कुली बैरिस्टर', 'कुली व्यापारी' आदि नामों से अभिहित किया करते थे। अँग्रेज यह जान बूझ कर कहते थे। 'कुली' से अभिप्राय समाज में निरादृत मजदूर पेशा से था। इस निन्दात्मक अभिधान से बचने के लिए भारतीय पारसी अपने आपको 'फारसदेशीय' और मुसलमान 'अरबदेशीय' कहते थे। पगड़ी अरबियों का शिरस्त्राण समझा जाता था न कि हिन्दुस्तानियों या भारतीयों का। ऐसे देश में गांधी जी अपने भाग्य की परीक्षा करने गये थे। वहाँ पहुँचने के कुछ दिन बाद अब्दुल्ला सेठ गांधी जी को सरकारी अदालत दिखाने ले गये और उनका कई वकीलों से परिचय करवाया। अदालत में वे अपने वकील के पास ले गये। गांधी जी उस समय पगड़ी पहने हुए थे। मजिस्ट्रेट ने इन्हें कुतूहल के साथ देखा और पगड़ी उतार देने की आज्ञा दी। गांधी जी को यह बुरा लगा और वे अदालत से उठकर चले

गये। गांधी वहाँ धनोपार्जन के लिए गये थे। उन्होंने पगड़ी की जगह अँग्रेजी टोपी (हैट) पहनने की सोची, पर अब्दुल्ला सेठ इससे सहमत न हुए। उसने कहा—"यदि आप इस समय ऐसा करेंगे तो उलटा अर्थ होगा। जो लोग देशी पगड़ी पहने रखना चाहते होंगे, उनकी स्थिति विषम हो जायगी। फिर आपके सिर पर अपने ही देश की पगड़ी शोभा देती है। यदि आप अँग्रेजी टोपी लगावेंगे तो लोग 'वेटर' समझेंगे।" अब्दुल्ला के शब्दों में व्यावहारिकता थी, देशाभिमान था। गांधी जी को उनकी बात जँच गई। गांधी जी ने इस घटना पर समाचार-पत्रों में लिखा और अपने पक्ष का समर्थन किया। पत्रों में खूब चर्चा हुई—कुछ पक्ष में, कुछ विपक्ष में। तीन-चार दिन में ही इस देश में गांधी जी की प्रसिद्धि हो गई।

इधर ट्राँसवाल की राजधानी प्रिटोरिया में मुकद्दमे के संबंध में गांधी जी को जाना पड़ा। रात भर की यात्रा थी। अब्दुल्ला सेठ ने उन्हें प्रथम श्रेणी का टिकट ले दिया और वे डरबिन से गाड़ी में सवार हो गये। नेटाल की राजधानी मरित्सवर्ग में एक अँग्रेज यात्री उसी डिब्बे में आ गया। वहाँ एक भारतीय (गांधी जी) को देख कर तुरन्त लौट गया और थोड़ी देर में रेल के दो अफ़सरों के साथ डिब्बे में प्रविष्ट हुआ, जिन्होंने गांधी जी को तृतीय श्रेणी के डिब्बे में चले जाने को कहा। प्रथम श्रेणी का टिकट रखने के कारण गांधी जी ने तृतीय श्रेणी में यात्रा करना अस्वीकार कर दिया। जिस पर उन्होंने पुलिस को बुलाकर उन्हें बलात् बाहर धकेल दिया और उनके सामान को भी प्लेटफ़ार्म पर फेंकवा दिया। गांधी के आत्माभिमान को बहुत आघात पहुँचा। वे सीधे स्टेशन के वेटिंग रूम में चले गये और सामान को भी वहीं रेलवेवालों की देख-रेख में छोड़ गये। जाड़े की ऋतु थी। वह स्थान ऊँचाई पर था।

अतः रात्रि को शीत अधिक था। उनका सामान और ओवरकोट भी रेलवेवालों के पास था। कहीं पुनः अपमान न हो जाय, इन्हें कोट माँगने तक का साहस न हुआ। रात्रि भर शीत से ठिठुरते रहे और मन-ही-मन इस अपमानजनक घटना पर विचारते रहे। दूसरे दिन उस नगर के कई व्यापारी अब्दुल्ला सेठ की सूचना पर इनसे मिले। उन्होंने ऐसे अनेकानेक अनुभवों का बखान किया। उन लोगों ने परिस्थिति के अनुसार कार्य साध लेने की बात उनसे कही। विरोध करना तो दीवार से माथा पीटने के समान है। परन्तु गांधी जी ने अपनी परीक्षा की ठान ली। उनके पिता एवं पितामह ने भी अधिकारि-वर्ग से टक्कर ली थी। वे भी अधिकारियों के अनुचित व्यवहार के सामने नहीं झुके थे। मरित्सबर्ग की इस दुर्घटना के कटु अनुभव ने उनमें इस सामाजिक अन्याय का विरोध करने का बीज वपन कर दिया। उन्होंने मन-ही-मन विरोध का निश्चय कर लिया और दूसरी गाड़ी में शयन के लिए एक और टिकट लेकर वहाँ से चल दिये। चार्ल्स-टाउन से घोड़ागाड़ी में यात्रा करनी थी। इस यात्रा में उन्हें कष्ट ही नहीं अपितु और भी अपमान का अनुभव करना पड़ा। गाड़ी के मालिक से व्यर्थ झगड़ा न करके ये उसके कहने के अनुसार कोचवान के साथ एक स्थान पर बैठ गये। आगे जाकर मालिक को सिगरेट पीने की इच्छा हुई। उसने कोचवान के पाँवों में एक मैला कपड़ा बिछा कर इन्हें वहाँ बैठने की आज्ञा दी और उसकी सीट पर स्वयं बैठना चाहा, यह इन्हें सहन न हुआ। वे अपने स्थान पर डटे रहे। 'यदि भीतर के रिक्त स्थान पर मुझे बैठने दिया जाय तो मैं इस स्थान को छोड़ सकता हूँ' गांधी जी के इन शब्दों को सुनकर मालिक आग-बगोला हो इन्हें गाली-बकने लगा और घसीट कर इन्हें नीचे फेंकने का प्रयत्न

करने लगा। शरीर के दुर्बल होते हुए भी इन्होंने सीखचों को पकड़े रखा और स्थान न छोड़ा। द्वन्द्व होता रहा। भीतर बैठे अन्य यात्रियों ने उस मालिक से अन्त में कहा, "बकवाद मत करो। इन्हें पीटो मत। सचाई इनके पक्ष में है।" उनके इस अनुरोध से वह हट गया और गांधी जी गाड़ी में बैठे रहे। दूसरे दिन गांधी जी ने 'घोड़ा-गाड़ी-कम्पनी' से शिकायत की। उत्तर में केवल इतना आश्वासन दिलाया गया कि भविष्य में उनका ऐसा अपमान नहीं होगा। इस प्रकार वे जोहेन्सबर्ग पहुँच गये, जहाँ से फिर रेल-यात्रा करके प्रिटोरिया पहुँचना था। इस दूसरी घटना ने जले पर नमक भुरकने का काम किया। जोहेन्सबर्ग में ये एक होटल में गये, पर भारतीय समझ कर मैनेजर ने यह कह कर इन्हें टाल दिया—"खेद है, सब कमरे भरे हुए हैं।" वहाँ से ये सेठ कमरुद्दीन की दुकान पर पहुँचे। होटल की बात कहने पर वे लोग हँस पड़े और इन्हें बताया कि "गोरे लोग अपने होटलों में हमें स्थान नहीं देते। यहाँ वर्ण-द्वेष अत्यधिक है। आप कल प्रिटोरिया जायँगे, पर हम लोगों को प्रथम व द्वितीय श्रेणी के टिकट ही नहीं दिये जाते। आपको तृतीय श्रेणी में यात्रा करनी होगी। ट्राँसवाल में तो नेटाल से भी बुरी स्थिति है।" पर रेल के नियमों में ऐसा कोई निषेध न देख गांधी जी ने प्रथम श्रेणी में ही यात्रा करने का निश्चय किया। सभ्य वेशभूषा में इन्हें देख स्टेशन-मास्टर ने इन्हें इस शर्त पर प्रथम श्रेणी का टिकट दे दिया कि मार्ग में यदि गॉर्ड इन्हें उस डिब्बे में से उतार दे तो वे कम्पनी पर दावा नहीं करेंगे। और मार्ग में ऐसा हुआ भी, पर सह-यात्री एक अंग्रेज ने गॉर्ड को फटकार दिया और इन्हें आराम के साथ बैठे रहने को कहा। गार्ड यह भुनभुनाता हुआ चला गया—"तुम्हें कुली के साथ बैठना हो तो बैठो। मेरा क्या" ?

गांधी जी अपमान के कड़वे घूँट पीकर रह गये। राम-राम करके रात को आठ बजे प्रिटोरिया पहुँचे। वहाँ ये एक अमेरिकन होटल में पहुँचे, जहाँ इन्हें इस शर्त पर स्थान मिला कि वे अपने कमरे में नीचे ही भोजन कर लेवें; क्योंकि अन्य सभी यात्री गोरे थे और उनके साथ ये भोजनालय में भोजन करने की माँग न करें। होटल का खर्चा अधिक था, अतः दूसरे दिन अब्दुल्ला सेठ के वकील श्री बेकर ने एक बाई के घर पर ३५ शिलिंग प्रति सप्ताह पर इनके रहने का प्रबंध कर दिया। प्रिटोरिया में गांधी जी ने वहाँ के एक प्रतिष्ठित भारतीय व्यापारी सेठ तैयब हाजी खान मुहम्मद से परिचय कर लिया और भारतीयों की स्थिति समझने में उनकी सहायता माँगी। उनकी तथा कुछ अन्य नव-परिचित भारतीयों की सहायता से गांधी जी ने भारतीयों की एक सभा बुला कर उनसे चार कामों की अपील की—"विदेश में आप लोगों को देखकर ही भारतीय सभ्यता का अनुमान लगाया जाता है, इसलिए आपका उत्तरदायित्व बहुत है। आप लोग व्यापार में भी सत्य को न छोड़ें। गन्दगी दूर करें, और जाति-पाँति तथा साम्प्रदायिक भेद-भाव को यहाँ भूल जावें, सब भारतीय एक हो कर रहें तथा सभी अंग्रेजी भाषा सीखें। एक भारतीय मंडल की स्थापना करके अधिकारियों से मिलकर अथवा प्रार्थना-पत्रादि देकर अपने भाइयों के कष्ट-निवारण के उपायों पर विचार करें।" इसके पश्चात् नियमित रूप से भारतीयों की सभा होने लगी और गांधी जी प्रिटोरिया के प्रत्येक भारतीय से शीघ्र परिचित हो गये। गांधी जी ब्रिटिश एजेंट से मिले। रेलवे अधिकारियों से पत्र-व्यवहार करके यह वचन ले लिया कि साफ़-सुथरे और अच्छे कपड़े पहननेवाले भारतीयों को प्रथम व द्वितीय श्रेणी के टिकट दिये जाया करेंगे। इससे समस्या हल तो न हुई, पर कुछ

सुविधा अवश्य हो गई।

वास्तविकता यह थी कि दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों की स्थिति बहुत हीन थी। 'आरेंजी फ्री स्टेट' में से उन्हें निकाल बाहर कर दिया गया था। वहाँ ये केवल 'वेटर' बनकर ही रह सकते थे। १८८५ में ट्राँसवाल में भी उनके विरुद्ध कड़ा कानून बनाया गया, जिसके अनुसार प्रवेश-फ़ीस के रूप में प्रत्येक भारतीय को तीन पौंड देने पड़ते थे। मताधिकार किसी को भी नहीं था। उन्हें 'फ़ुटपाथ' (पगडंडी) पर भी चलने का अधिकार न था, रात को नौ बजे के पश्चात् बिना परवाने के बाहर निकलने की उन्हें आज्ञा न थी। उस समय भारतीयों की ऐसी हीन दशा थी। गांधी जी इस दयनीय दशा को सुधारने के लिए व्यग्र रहते थे।

इधर जिस मुकद्दमे में वे अफ्रीका गये थे, उससे संबंधित पत्रादि को अच्छी तरह से देखा। मुकद्दमे का खर्चा अतिशय बढ़ता जा रहा था। दोनों पक्षों पर भारी बोझ था। दोनों पक्षों के उजड़ जाने की आशंका थी। अतः यद्यपि इनके अपने मुवक्किल का पक्ष अधिक सबल था तो भी गांधी जी ने दोनों पक्षों पर समझौते के लिए प्रभाव डाला। इनके परिश्रम से मामला पंचायत में गया और पंचायत के निर्णय को दोनों पक्षों ने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया। इससे गांधी जी को अत्यधिक प्रसन्नता हुई। तत्पश्चात् गांधी जी डरबिन चले गये और वहाँ से भारत लौटने की तैयारी होने लगी। अब्दुल्ला सेठ की ओर से जब इन्हें विदाई-भोज दिया जा रहा था, उसी समय पास रखे समाचार-पत्र के एक समाचार पर गांधी जी की दृष्टि गई। समाचार हिन्दुस्तानी मताधिकार के संबंध में था। उस समय नेटाल की धारा-सभा में यह मसविदा पेश था कि धारा-सभा के सदस्यों को चुनने के अधिकार भारतीयों से छीन लिये जावें। गांधी जी को यह बात बहुत अखरी। इससे तो

नेटाल में भी भारतीयों का अस्तित्व मिटा दिया जायगा। भोज में आमन्त्रित भारतीयों का ध्यान गांधी जी ने बिल से होने वाले अनिष्ट की ओर दिलाया। उन लोगों ने अनुरोध किया कि यदि गांधी जी एकाध मास वहाँ ठहरने का वचन दें तो वे लोग, जैसे गांधी जी चाहेंगे, बिल का विरोध करने को तैयार हैं। गांधी जी ने ठहरने का निश्चय कर लिया और वह विदाई-सभा विचार-समिति के रूप में बदल गई। इससे अफ़्रीका का वह संघर्ष नियमित रूप से आरंभ हो गया। गांधी जी ने वकील का जीवन छोड़ एक सेवक का जीवन अंगीकार कर लिया। देश-सेवा से उनके लिए नेतृत्व के द्वार खुल गये। जगत्प्रसिद्ध ऐतिहासिक गांधी का आविर्भाव होने लगा।

गांधी जी ने तत्काल एक सभा बुलाई, जिसमें सभी जातियों और धर्मों के भारतीय सम्मिलित हुए और उसमें फ्रेंचाइज़-बिल (मताधिकार-संबंधी कानून) के विरुद्ध एक प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। इस सभा में ईसाई नव-युवक एवं प्रतिष्ठित व्यापारी भी सम्मिलित हुए थे। विरोध में आवेदन-पत्र लिखा गया और उस पर अधिक-से-अधिक संख्या में भारतीयों के हस्ताक्षर लेकर उसे धारा-सभा के अध्यक्ष, प्रधान मन्त्री आदि को बिल के स्थगित करने के लिए तार द्वारा भेजा गया। पत्रों में तदनुकूल खूब चर्चाएँ हुईं। धारा-सभा में भी खूब विचार-विनिमय हुए। बिल तो पास होना ही था, पर इसका एक शुभ फल यह हुआ कि भारतीयों में नये जीवन का संचार हो गया। भेद-भाव मिट गये। सब ने समझा कि हम सबका एक समाज है; हम सब भारतीय हैं और राष्ट्रीय अधिकारों के लिए मिल-जुल कर लड़ना हमारा कर्त्तव्य है। आन्दोलन के आरंभ में ही ऐसी चेतना का उद्भव शुभ परिणामों का द्योतक था। इससे गांधी जी का उत्साह बढ़ा।

उन्होंने एक विस्तृत प्रार्थना-पत्र लिख कर दस हज़ार हस्ताक्षरों के साथ उपनिवेश मन्त्री के पास भेजा और उसकी एक हज़ार प्रतियाँ छपवाकर भारत में नेताओं एवं समाचार-पत्रों के लिए भेज दीं। इंग्लैंड में सब दलों के नेताओं के पास ये प्रतियाँ भिजवाई गईं। इस प्रकार बिल के विरोध में विस्तृत प्रचार किया गया। गांधी जी का नेटाल में ठहरना आवश्यक हो गया। वे वहाँ की अदालत के वकील रजिस्टर कर लिये गये और स्वतन्त्र आजीविका का साधन हो गया। आजीविका का स्वतन्त्र साधन बन जाने पर गांधी जी ने भारतीयों की सेवा और संगठन के अपने वास्तविक उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए मई १८९४ ई० को 'नेटाल इण्डियन काँग्रेस' की स्थापना की, जिसमें समय-समय पर लोग इकट्ठे होकर भारतीय समस्याओं पर चर्चा एवं विचार-विनिमय करते। गांधी जी ने भारतीय पक्ष के समर्थन में दो पुस्तकें भी लिखीं। इस प्रकार के प्रचार से कई अँग्रेज़ों ने भी इस कार्य में सहानुभूति प्रदर्शित की। इसी समय गांधी जी ने उप-निवेश-जात भारतीयों की एक शिक्षा-समिति की भी स्थापना की, जिसमें युवक समय-समय पर मिलकर भाषण दिया करते और निबंध पढ़ा करते।

इन आयोजनों से व्यापारी, क्लर्क और शिक्षित युवक तो गांधी के सम्पर्क में आगये और उनमें देशाभिमान की चेतना का प्रादुर्भाव हो गया, परन्तु अभी तक निम्न श्रम-वर्ग से उनका सम्पर्क न हो सका था। इस वर्ग में दो प्रकार के श्रमिक थे, एक वे जो स्वतन्त्ररूप से अपनी इच्छा से आजीविका के लिए दक्षिण अफ्रीका में आये थे और दूसरे वे जो पाँच वर्ष का एग्रीमेंट (इकरारनामा) करके गन्ना, चाय और कहवा की कृषि के लिए यहाँ लाये गये थे। ये श्रमिक 'गिरमिटिया' नाम से प्रसिद्ध

थे। इन गिरमिटिया श्रमिकों की स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी। ये क्रीत सेवकों के समान समझे जाते थे। इसी समय सन् १८९४ ई० में इन गिरमिटिया भारतीयों पर नेटाल सरकार ने पहले २५ पौंड प्रतिवर्ष कर लगाया जिसे भारत के वाइसराय ने ३ पौंड करवा दिया। ३ पौंड भी इन श्रमिकों के लिए भारी कर था। नेटाल कांग्रेस ने इसके विरोध में आन्दोलन खड़ा कर दिया। इसी वर्ष नेटाल धारा-सभा ने सभी एशिया-वासियों को मताधिकार से वंचित कर दिया। भारतीयों पर यह दूसरी चोट थी। इस प्रकार अँग्रेज जाति प्रवासी भारतीयों को अधिकार-वंचित करने पर तुली हुई थी। गांधी जी उग्रवादी तो नहीं थे; वे अल्प-संख्यक अँग्रेजों की स्थिति को समझते थे और यह भी अनुभव करते थे कि बहुसंख्यक भारतीयों के व्यापारादि में बढ़ते हुए प्रभाव से आतंकित होकर ही अँग्रेज अपनी सुरक्षा के लिए इस प्रकार के अनुचित व्यवहार पर उतारू हो रहे थे और इस प्रकार भारतीयों से पक्षपातपूर्ण दुर्व्यवहार कर रहे थे, परन्तु गांधी जी इस पक्षपात को वैधानिक रूप देने के विरुद्ध थे। कानून द्वारा सामाजिक अन्यायों का औचित्य सिद्ध करना उनकी दृष्टि में अन्यायपूर्ण था।

गांधी जी का उद्देश्य इस सिद्धान्त को स्थापित करना था कि अँग्रेजी साम्राज्य के नागरिक होने के नाते भारतीय साम्राज्य में समानता के अधिकारी हैं। यदि एक बार भारतीयों ने अपनी हीनता को स्वीकार कर लिया तो वे सम्मान खो बैठेंगे और कहीं के न रहेंगे। यही दशा अँग्रेजों की भी होगी यदि उन्होंने बलात् भारतीयों पर हीनता लाद दी। फलतः गांधी जी का इस संघर्ष का उद्देश्य न केवल भारतीयों बल्कि अँग्रेजों के भी सम्मान की सुरक्षा करना था।

अफ्रीका के संघर्ष के इन तीन वर्षों में गांधी जी ने अन्याय का विरोध करने की अभूतपूर्व शक्ति का परिचय देते हुए यह भी प्रदर्शित कर दिया कि उनमें किसी संस्था को चलाने एवं नेतृत्व करने के गुण विद्यमान हैं। दक्षिण अफ्रीका की जटिल समस्याओं के लिए गांधी जी का वहाँ कई वर्षों तक रहना अनिवार्य हो गया था और उनकी वकालत भी अब जड़ पकड़ चुकी थी। अतः उन्होंने अपने कुटुम्ब को भी वहीं ले आने का निश्चय कर लिया। उधर तीन पौंड वाले कर के विरुद्ध भारत में पुकार करना भी आवश्यक था। इन सब कारणों से वे सन् १८९६ के मध्य में पैंगोला जहाज से कलकत्ता की ओर चल दिये।

पुनः भारत में—

भारत में आकर सब बड़े २ नगरों में प्रवासियों की यातनाओं और अपमानों की चर्चा करते हुए प्रचार करने लगे। उन्होंने कई सभाओं में भाषण भी दिये, समाचार-पत्रों में लेख लिखे और 'हरी पुस्तक' नाम से प्रसिद्ध एक पुस्तिका लिखकर उसे छपवाया तथा स्थान-स्थान पर बँटवाया। कई समाचार-पत्रों ने इनके कार्य में सहयोग दिया। इस प्रकार प्रवासी भारतीयों के साथ होने वाले अन्यायों के विरुद्ध उन्होंने एक भारतव्यापी आन्दोलन खड़ा कर दिया। इधर जब ये इस कार्य में संलग्न थे, अफ्रीका से तार द्वारा इन्हें बुलावा आ गया जिसमें लिखा था—"पार्लियामेंट की बैठक जनवरी में होगी, जल्दी आइये।" इस प्रकार छः मास भारत में बिता कर दिसम्बर १८९६ को आप 'कुरलैंड' जहाज से अपनी धर्मपत्नी, दो पुत्रों और स्वर्गीय बहनोई के एकमात्र पुत्र को साथ लेकर पुनः दक्षिण-अफ्रीका को चल दिये। इसी जहाज के साथ 'नादरी' नामक दूसरा जहाज भी था जिसमें लगभग ८०० यात्री थे।

उधर भारत में किये गये गांधी के प्रचार से अफ्रीका के गोरे इन पर अत्यधिक रोष कर रहे थे। इनका पुनः अफ्रीका आना उन्हें वहुत खलने लगा। डाक्टरी जाँच के वहाने से दोनों जहाजों को डरविन बंदर पर रोक दिया गया और १३ जनवरी १८९७ को इन्हें तथा अन्य यात्रियों को जहाज से उतरने की अनुज्ञा मिली। गोरे अत्यन्त विगड़ उठे थे। गांधी जी के प्राणों का संकट था। गांधी जी ने वच्चों और कस्तूरवा जी को तो गाड़ी में रुस्तम सेठ के घर भिजवा दिया और स्वयं श्री लाटन के साथ पैदल चल पड़े। गोरे छोकरों ने गांधीजी को मार्ग में पकड़ लिया और भीड़ ने उन पर सड़े अंडों और कंकरों की बौछार करना आरंभ कर दिया। लातों और थप्पड़ों से भी पीटा। इस घटना में इन्हें वहुत चोटें आईं और ये भूमि पर गिर पड़े। इसी समय सुपरिंटेंडेंट पुलिस की धर्मपत्नी की सहायता से इनकी रक्षा हो गई, और वाद में पुलिस की एक टुकड़ी की रक्षा में इन्हें रुस्तमजी के घर पहुँचाया गया। पर उत्तेजित गोरों ने यहाँ भी पीछा किया और घर को घेर लिया। पुलिस सुपरिंटेंडेंट के सूचना देने पर, कि उस घर में रहने पर उनका और उनके मित्र का जानो-माल सव संकट में हैं, आपको वेश वदल कर पुलिसथाने में शरण लेनी पड़ी। नेटाल सरकार को उन गोरों पर मुकद्दमा चलाने का आदेश हुआ, पर गांधी जी इससे सहमत न हुए। अपराधी के लिए पश्चात्ताप ही सवसे वड़ा दण्ड है।

"यह मेरे लिए एक धार्मिक प्रश्न है और मैं इसमें आत्म-संयम से काम लूँगा"। अपराधी के विरुद्ध मुकद्दमा चलाने की अपेक्षा उन्होंने अपने देश-वासियों में जागृति पैदा करने में समय लगाना अच्छा समझा।

एक स्वर्णावसर से लाभ उठाने के लिए भारतीयों ने इस समय

गांधी जी को भारत से दक्षिण अफ्रीका बुलाया था। एक ओर भारत की अँग्रेजी सरकार के और दूसरी ओर अँग्रेजी साम्राज्य के उपनिवेश-मन्त्री श्री चेम्बरलेन के दबाव के कारण नेटाल की धारा-सभा में एक कानून पर वाद-विवाद होने जा रहा था, जिसके अनुसार जाति-भेद अथवा वर्ण-भेद का निराकरण किया जावे और उसके स्थान में धारा-सभा की सदस्यता के लिए शिक्षा-संबंधी योग्यता को आधार बनाया जावे। यही गांधी जी का ध्येय था। नेटाल एक्ट नाम से एक कानून पास किया गया जिसके अनुसार ब्रिटिश प्रजा को, जिसमें कि भारतीय भी सम्मिलित समझे गए, समान-मताधिकार मिल गए। यही गांधी जी की माँग थी। इससे उन सब प्रयत्नों का अन्त हो गया जिनसे भारतीयों को मताधिकार से वंचित किया जा रहा था। इससे गांधी जी को कुछ सान्त्वना मिली। उत्तेजना और परस्पर तनातनी भी शिथिल पड़ गई।

इधर १८९९ में दक्षिण अफ्रीका में डचों और अँग्रेजों के बीच 'बोअर-युद्ध' छिड़ गया। गांधी जी की निजी सहानुभूति बोअरों (डचों) के साथ थी, तो भी ब्रिटिश-शासन की न्यायशीलता में इन्हें विश्वास था। अतः इन्होंने ब्रिटिश घायलों की सेवा-शुश्रूषा के लिए एक सेवा-दल का संगठन किया, जिसमें स्वयंसेवकों को घायलों की आवश्यक सेवा करने की शिक्षा भी दी गई। इस दल में लगभग ११८० भारतीय थे। इस दल ने बहुत काम किया और इसके सेवा-कार्य की प्रभूत प्रशंसा हुई। इससे भारतीयों की प्रतिष्ठा भी बहुत बढ़ गई और गोरों के व्यवहार में भी कुछ अन्तर पड़ा। गांधी जी को आशा थी कि समय पाकर इन दोनों जातियों के पारस्परिक व्यवहार में सुधार हो जायगा और वे एक दूसरी के निकट आती जायँगी। इस समय गांधी जी के पास और कोई विशेष योजना भी न थी। अतः उन्होंने भारत जाने की

इच्छा प्रकट की। जनता ने इस आश्वासन पर इन्हें छुट्टी दे दी कि "यदि एक वर्ष के अन्दर फिर आवश्यकता पड़ी तो उन्हें आना पड़ेगा"। कृतज्ञता-प्रदर्शन के रूप में भारतीय प्रवासियों ने इन्हें हीरा, जवाहर, सोना और चाँदी की अमूल्य वस्तुएँ उपहार-स्वरूप भेंट कीं। श्रीमती कस्तूरबा के लिए एक बहुमूल्य स्वर्ण-माला भी थी।

गांधी जी की १८९६ की विदाई के समय भी उन्हें कुछ उपहार दिये गये थे जिन्हें इन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया था, क्योंकि ये वस्तुएँ व्यक्तिगत प्रीति-चिन्हों के रूप में उन्हें दी गई थीं। परन्तु आज की प्रभूत सम्पत्ति को देखकर इनकी अन्तरात्मा चंचल हो उठी। मन में यह प्रश्न उठा कि ये वस्तुएँ उन्हें सार्वजनिक सेवा के बदले में मिली हैं, उन पर इनका क्या अधिकार है? रात्रि भर इसे स्वीकार करने या न करने के बारे में इनके मन में संघर्ष चलता रहा। सेवा-कार्य करते-करते अब उनके विचार उन्नत हो चुके थे। धन-सम्पत्ति-संग्रह संबंधी विचार बदल रहे थे। धन-परिग्रह में उन्हें अब अहित दिखाई देने लगा था। वे लोगों को धन-संचय के मोह से बचने का उपदेश दिया करते थे। इन सब विचारों का संघर्ष रात भर होता रहा। अन्त में सत्य का प्रकाश हुआ और इन्होंने इन बहुमूल्य उपहारों को स्वीकार न करने का निश्चय कर लिया। सार्वजनिक धन सार्वजनिक सेवा में व्यय होना चाहिए, अतः उन्होंने एक ट्रस्ट बनाकर इस धन को सार्वजनिक कार्यों के लिए निर्धारित कर देने का निर्णय किया। कस्तूरबा के विरोध करने पर भी वे अपने निर्णय पर डटे रहे। यही उनकी दृष्टि में सत्य का मार्ग था। उनका यह दृढ़ मत हो गया था कि जन-सेवक को जो भेंट मिलती है उसे निजी सम्पत्ति के रूप में ग्रहण करने का उसे अधिकार नहीं है।

इस प्रकार गांधी जी ने सार्वजनिक फंड का मार्ग भी खोल दिया।

भारत में—

१९०१ ई० में गांधी जी भारत लौट आये। यहाँ पहुँच कर कुछ दिन घूमने-घामने में बिता दिये। इस साल भारतीय काँग्रेस का अधिवेशन कलकत्ता में होने वाला था। ये दो-तीन दिन पहले ही कलकत्ता पहुँच गये और चुपके-से काँग्रेस के कार्यालय में एक क्लर्क का काम करते रहे। यहाँ काँग्रेस-तन्त्र का इन्हें पर्याप्त अनुभव हुआ। काँग्रेस की अव्यवस्था और त्याग-वृत्ति के अभाव पर इन्हें दुःख भी हुआ। इनके प्रयत्नों से दक्षिण-अफ्रीका के प्रवासी भारतीयों के संबंध में काँग्रेस में एक प्रस्ताव भी सर्वसम्मति से स्वीकार हो गया। ये अधिवेशन के बाद भी कुछ समय कलकत्ता ही रहे। यहाँ गोखले जी से इनकी घनिष्ठता हो गई। दोनों एक दूसरे की सेवा-वृत्ति एवं त्याग-भावना से प्रभावित हुए। इस प्रकार कलकत्ता में रहने से इन्हें बंगाल के जीवन का अच्छा परिचय हो गया। कलकत्ता से ये काशी को चले। भारतीय जीवन से अधिकाधिक सम्पर्क में आने की इच्छा से इन्होंने रेल के तीसरे दर्जे में यात्रा करने का निश्चय कर लिया, जिस निश्चय पर ये आजीवन आरूढ़ रहे। वहाँ से राजकोट और राजकोट से बम्बई पहुँचे, जहाँ इनका गोखले जी से और भी अधिक सम्पर्क हो गया। ये हाईकोर्ट के वकील के रूप में बम्बई बस जाना चाहते थे किन्तु दक्षिण-अफ्रीका से एकाएक पुनः तार आ गया—"चैम्बरलेन आ रहे हैं। आपको शीघ्र यहाँ आ जाना चाहिए"। गाँधी जी ने वहाँ से आते समय उन्हें वचन दिया ही था, अतः बाल-बच्चों को बम्बई छोड़ ये डरबिन को चल दिये। १ जनवरी १९०३ को ये प्रिटोरिया पहुँच गये।

पुनः दक्षिण-अफ्रीका में—

गांधी जी का अनुमान था कि श्री चैम्बरलेन दक्षिण-अफ्रीका से ३५० लाख पौंड का उपहार लेने तथा बोअरों और अँग्रेजों के संबंधों को पक्का करने की दृष्टि से वहाँ आ रहे थे। वास्तव में उपनिवेश-मन्त्री का मन्तव्य केवल बोअरां से विरोध कम करने का ही न था; बल्कि उन्हें रियायतें देकर अपने पक्ष में करना था। ब्रिटेन बोअरों के घावों को भरना चाहता था और इसी कारण भारतीयों की शिकायतों को दूर करके बोअरों का रोप मोल लेना नहीं चाहता था। गांधी जी वहाँ पहुँचते ही चैम्बरलेन से मिलने वाले भारतीय प्रतिनिधि-मंडल के लिए आवेदन-पत्र का लेख तैयार करने और तत्संबंधी अन्य कार्यों में व्यस्त हो गये। गांधी जी के नेतृत्व में गये हुए प्रतिनिधि-मंडल से नेटाल में तो चैम्बरलेन मिल लिया और गांधी जी की दलीलों को सुन लिया, पर मीठी-मीठी बातें करके वास्तविक प्रश्न को टाल गया। ट्राँसवाल में अधिकारियों ने गांधी जी को प्रतिनिधि-मंडल में सम्मिलित न होने दिया, क्योंकि वहाँ बोअरों का जोर था। फलतः श्री गॉडफ्रे के नेतृत्व में प्रतिनिधि-मंडल उपनिवेश-मन्त्री से मिला। पर ऐसे आवेदनों से क्या होना था? इधर भारतीयों के कष्ट दिन-प्रतिदिन बढ़ते जा रहे थे, इसलिए लोगों के अनुरोध से गांधी जी वहीं ठहर गये और ट्राँसवाल के सुप्रीम कोर्ट के वकीलों में भरती हो गये। वहाँ इन्होंने कुछ मित्रों के सहयोग से 'ट्राँस-वाल ब्रिटिश इण्डियन एसोसिएशन' की स्थापना की। उत्तेजना बढ़ती जा रही थी और ऐसा प्रतीत होता था कि भारतीय प्रवा-सियों को बहा देने वाली ज्वालामुखी फूटने ही वाली है। भारतीयों के लिए ट्राँसवाल सरकार ने एक एशियाई कार्यालय की स्थापना की। १६०४, १६०५ और १६०६ में इस एशियाई

कार्यालय का मुख्य काम भारतीयविरोधी विधि-विधानों को कार्यान्वित करना तथा ऐसे ही नये-नये नियमों को खोज निकालना था। जनरल बोथा और स्मट्स की धमकियाँ अब कार्यान्वित की जा रही थीं। गोरों और भारतीयों में तनातनी बढ़ती जा रही थी। गांधी जी अब भारतीयों के सम्मानित नेता माने जाते थे। अब उन्होंने जन-सेवा का पूरा व्रत ले लिया। गांधी जी ने भारतीयों के दृष्टिकोण को प्रचारित करने के लिए 'इण्डियन ओपीनियन' समाचार-पत्र भी चलाया। जुलू-विद्रोह में सेवादल से पीड़ित जुलुओं का सेवा-कार्य करवाया। प्लेग में सब प्रकार के सेवा-कार्य की योजनाएँ कार्यान्वित कीं। इस प्रकार उन्होंने अपने आपको पूर्णरूपेण जन-सेवा के लिए अर्पित कर दिया और ब्रह्मचर्य-व्रत ले लिया।

१९०६ ई० में ट्राँसवाल-सरकार ने 'ड्राफ्ट एशियाटिक लॉ अमेंडमेंट बिल' धारा-सभा में रख दिया। यह बिल पहले के सभी कानूनों से अधिक भयंकर था। इससे तो ट्राँसवाल से भारतीयों का अस्तित्व ही मिट जाने का भय था। संसार के किसी भी भूभाग में शायद ही सभ्य मनुष्यों के लिए इससे भयंकर कानून कभी बना हो। भारतीयों में खलबली मचना अनिवार्य ही था। गांधी जी ने विचारा कि इसमें सम्पूर्ण भारत देश का अपमान है। अतः उन्होंने ११ सितम्बर १९०६ को जोहन्सबर्ग के इम्पीरियल थियेटर में भारतीय प्रतिनिधियों की एक विराट् सभा बुलाई। गांधी जी ने उन्हें बतलाया कि यदि यह बिल पास हो गया तो दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों का सर्वनाश हो जायगा। ऐसे अन्याय के सामने झुकने से तो मर जाना अच्छा है। सभा में यह निश्चय किया गया कि "इस बिल का विरोध करने के लिए सभी उपायों का अवलंबन किया जाय।

यदि इतने पर भी पास हो जाय तो हमें इसके आगे सिर न झुकाना चाहिए; और इस अवज्ञा के फलस्वरूप जो दुःख सहने पड़ें, सहन करने चाहिएँ।" सब ने खड़े होकर, ईश्वर को साक्षी रख कर, प्रतिज्ञा की कि "चाहे जितने दुःख-कष्ट पड़ें, वे इस कानून को न मानेंगे।" बिल कुछ परिवर्तन के साथ स्वीकार कर लिया गया। गांधी जी के अवज्ञा करने से पूर्व सभी वैध उपायों का उपयोग कर लेने की दृष्टि से एक प्रतिनिधि-मंडल को इंग्लैंड भेजने का विचार रखा। गांधी जी और हाजी वजीर अली प्रतिनिधि बनकर इंग्लैंड गये। आवेदन-पत्र यात्रा में ही तैयार किया गया। लन्दन पहुँच कर दादा भाई नौरोजी की सम्मति से सर लेपेल ग्रिफिन को नेता बनाकर इनका प्रतिनिधि-मंडल पहले पार्लियामेण्ट के कुछ सदस्यों से मिला और बाद में उपनिवेश सचिव लॉर्ड एलगिन से मिला, जिनसे सहायता का वचन मिल गया। यह मंडल लॉर्ड मार्ले से भी मिला। पार्लियामेण्ट के सदस्यों की एक सभा में गांधी जी ने तत्संबंधी भाषण दिया। अनेक पर-दुःख-कातर अँग्रेजों से भी सहायता मिली। इस संबंध में आन्दोलन करते रहने की एक समिति बना कर ये दक्षिण-अफ्रीका लौट आये। बिल १९०७ ई० तक के लिए स्थगित कर दिया गया। १ जनवरी १९०७ को ट्राँसवाल को उत्तरदायित्व-पूर्ण शासन दिया जाने वाला था। सम्राट् की यह आज्ञा हुई कि यदि स्वतन्त्र होने पर वहाँ की पार्लियामेण्ट इस बिल को पास कर देगी तो साम्राज्य-सरकार इसे अस्वीकार न करेगी। १९०७ में भारतीय विरोध होने पर भी नई सभा ने इस बिल को पास कर दिया और १ अगस्त १९०७ का दिन नये परवाने लेने के लिए निश्चित कर दिया गया। भारतीयों की एक न चली। इन्होंने इसके विरोध के लिए 'निष्क्रिय-प्रतिरोध-मण्डल' नामक संस्था

बना कर लोगों से प्रतिज्ञा-पत्र भरवा कर स्वयंसेवक भरती कर लिये। परवाने देने के प्रत्येक दफ़्तर पर १ अगस्त को पिकेटिंग करने के लिए स्वयंसेवक नियत कर दिये गये कि परवाना लेने के लिए आये हुए लोगों को शान्तिपूर्वक सचेत करें और यदि पुलिस गाली-गलौज अथवा मार-पीट करे तो उसे सहन करें और यदि पकड़े तो गिरफ़्तार हो जायँ।

यह योजना सफल हो गई और ५०० से अधिक व्यक्तियों ने परवाने न लिये। सरकार को विफलता का मुँह देखना पड़ा। खीझ कर सरकार ने पं० रामसुन्दर नामक एक सज्जन को गिरफ़्तार कर लिया। अदालत में उनका आदर किया गया और एक मास का साधारण दंड दिया। जेल में भी उनके साथ अच्छा व्यवहार किया गया। आन्दोलन चलता रहा। 'इण्डियन ओपीनियन' ने इस कार्य में विशेष सहायता दी। दिसम्बर में गांधी जी तथा कुछ अन्य कार्य-कर्त्ताओं को दो-दो मास की सादा कैद हुई। यह गांधी जी की प्रथम जेल-यात्रा थी। फिर क्या था। आन्दोलन ने बल पकड़ लिया। झुण्ड-के-झुण्ड लोग स्वेच्छापूर्वक कानून भंग कर जेल जाने लगे। ज्यों-ज्यों आन्दोलन बढ़ा, सरकार का रोष भी बढ़ने लगा। सादा दण्ड की जगह कड़ा दण्ड दिया जाने लगा, पर इस-से भी लोगों के उत्साह में कमी न हुई। सरकार कुछ ढीली पड़ी। समझौते की बातचीत चली। जनरल स्मट्स की ओर से अलबर्ट कार्ट राइट गांधी जी से जेल में मिले। दोनों में यह निर्णय हुआ कि भारतीय स्वेच्छापूर्वक परवाने बदलवा लें; उन्हें कानून से बाध्य न किया जाय। नवीन परवाना सरकार भारतीयों की सम्मति से बनाये और भारतीय यदि उसे स्वेच्छापूर्वक ले लें तो कानून रद्द कर दिया जाय। दो-तीन दिन बाद जनरल स्मट्स के पास गांधी जी को ले जाया गया, उपर्युक्त मसविदा

स्वीकृत हुआ। गांधी जी छोड़ दिये गये। उन्होंने रात को सभा बुलाई, समझौता स्वीकार किया गया और दूसरे दिन शेष सब स्वयंसेवकों को जेल से छोड़ दिया गया। कुछ लोगों में शंकाएँ फैल गईं। कुछ पठानों ने गांधी जी पर प्रहार कर दिया, उन्हें चोटें आईं, पर उन्होंने उन पठानों को छुड़वा दिया। और भी विरोध हुआ परन्तु अधिकांश भारतीयों ने परवाने भर दिये।

परन्तु जनरल स्मट्स ने समझौते में विश्वासघात किया और कानून रद्द करने का जो वचन दिया था उसे भंग कर दिया। भारतीयों में फिर उत्तेजना फैल गई। स्थान-स्थान पर सभाएँ हुईं। सत्याग्रह का निश्चय हुआ और सरकार को अन्तिम चेतावनी भेज दी गई। उधर सरकार ने इसी समय 'इमिग्रेण्ट्स रिस्ट्रिक्शन एक्ट' पास किया, जिसके अनुसार नये भारतीयों का अफ्रीका आना बंद कर दिया गया। इससे सत्याग्रह-आन्दोलन में और बल आया। सत्याग्रह पुनः आरम्भ हो गया। गांधी जी का दफ़्तर सत्याग्रह के दफ़्तर में बदल गया। कई प्रतिष्ठित व्यक्ति भी जेल गये। गांधी जी भी पकड़े गये। छूटने पर वे एक बार फिर इंग्लैंड गये पर विफल ही लौट आये। अब सत्याग्रह को जोरों से चलाने का निश्चय हुआ। कई क़ैद हुए। अनेक स्वयंसेवकों के कुटुम्बों का पालन-पोषण का भार भी इन्हीं पर पड़ा। गांधी जी ने इस हेतु 'टाल्स्टॉय-फार्म' की स्थापना की। लोगों ने स्वयं इस पर मकान खड़े कर दिये। उधर उनका फ़िनिक्स-आफ़िस भी आश्रम में बदल चुका था। इन दोनों स्थानों में गांधी जी ने रस्किन और टॉल्स्टाय द्वारा अनुमोदित सादा जीवन बिताने और शारीरिक परिश्रम करने के सिद्धान्त को सक्रिय रूप देना आरम्भ किया। इन दोनों आश्रमों में जो प्रयोग किये गये उन्हीं का विकसित रूप भारत में साबरमती सत्याग्रह-

आश्रम में दिखाई दिया।

इन्हीं दिनों श्रीयुत् गोखले दक्षिण-अफ्रीका पधारे। जनता ने उनका खूब स्वागत किया। साम्राज्य-सरकार के आदेशानुसार यूनियन-सरकार ने भी उनका स्वागत किया। गोखले जी ने घूम-फिर कर भारतीयों की दशा अपनी आँखों से देखी। अधिकारियों ने शीघ्र ही काला कानून रद्द कर देने और प्रवेश-कानून में से वर्ण-भेद वाला भाग निकाल देने का वचन उन्हें दे दिया। गांधी जी को सरकार के वचन पर विश्वास न हुआ। अन्त में हुआ भी यही। दूसरी बार के इस वचन-भंग से भारत में भी तीव्र उत्तेजना पैदा हो गई। भारतीय वाइसराय ने भी प्रवासी भारतीयों के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की। यूनियन-सरकार अपने आग्रह पर अड़ी रही। इधर उसने एक और अपमानपूर्ण आघात किया। अफ्रीका में बसे हुए भारतीय प्रवासियों के उन सब विवाहों को, जो इन्होंने अपनी धार्मिक प्रथाओं के अनुसार भारत में किये थे, एक अदालत ने अनियमित ठहरा दिया। सरकार ने भी इस निर्णय को स्वीकार कर लिया। उस निर्णय के अनुसार दक्षिण-अफ्रीका में केवल ईसाई-धर्मानुसार किये गये विवाह ही विधि-विहित ठहराये गये। इसका तत्काल दुष्परिणाम यह निकला कि समस्त भारतीय हिन्दू-मुस्लिम महिलाओं की कोई स्थिति ही न रही। विवाहित होते हुए भी उनकी स्थिति रखेलियों की-सी हो गई। यह एक घोर अपमान था। मातृ-जाति के इस अपमान से अफ्रीका ही नहीं, भारत में भी खलबली मच गई। २८ सितम्बर १९१३ को गांधी जी ने यूनियन-सरकार को चुनौती का पत्र (Ultimatum) भेज दिया। स्त्रियों ने भी अपना अपमान देख सत्याग्रह में भाग लेने का निश्चय कर लिया। वे भी क्षेत्र में आ डटीं। सत्याग्रह-आन्दोलन ट्राँसवाल की सीमा लाँघ कर नेटाल में भी फैल गया।

स्त्रियों की अपील पर खान-मजदूरों ने भी हड़ताल कर दी और सहस्रों की संख्या में जेल जाने को तैयार हो गये। गांधी जी ने मजदूरों की एक सेना (जिसमें २०२७ पुरुष, १२७ स्त्रियाँ और ५७ बच्चे थे) लेकर कानून-भंग करने के उद्देश्य से ट्रांसवाल की ओर प्रस्थान कर दिया। ६ नवम्बर १९१३ को यह यात्रा आरंभ हुई। गांधी जी को मार्ग में ही पकड़ लिया गया, पर अदालत से छोड़ दिये गये। वे पुनः यात्रा करती हुई इस मजदूर-सेना से आ मिले। दो दिन बाद सारी सेना को जेल में धकेल दिया गया। इस संघर्ष में अँग्रेज एवं कुछ योरुपीय सज्जनों ने भी सहायता की। इस बार जेल में कठोर व्यवहार किया गया; स्त्रियों तक को भी कोई सुविधा न दी गई। इस समय का सत्याग्रह अत्यन्त शान्तिपूर्ण एवं व्यवस्थित था। श्री गोखले के प्रोत्साहन से श्री एण्ड्रयूज और पियर्सन भारत से दक्षिण अफ्रीका आ गये। भारत से प्रभूत धन-सहायता भी पहुँच रही थी। सत्याग्रह का संचालन ऐसी कुशलता से हुआ कि सब चकित हो गये। अनेक अँग्रेजों ने भी सत्याग्रहियों के साथ सक्रिय सहानुभूति दिखाई। सफलता के सभी लक्षण दिखाई दे रहे थे। ट्रांसवाल-सरकार को परिस्थिति के गुरुत्व को समझने के लिए बाध्य होना पड़ा। उसने आत्माभिमान की रक्षा के लिए एक कमीशन की नियुक्ति की, जिसने गांधी जी, श्री पोलक एवं कैलेनबक को छुड़वा दिया। श्री एण्ड्रयूज ने दोनों दलों में समझौते का बड़ा प्रयत्न किया। गांधी जी और जनरल स्मट्स के बीच इस संबंध में पत्र-व्यवहार होने लगा। गांधी जी ने पाँच शर्तें उपस्थित कीं। कैदियों को तो उसी दिन मुक्त कर दिया गया और शेष शर्तों के बारे में कमीशन की रिपोर्ट पर विचार करने का वचन दिया गया। इस आश्वासन पर सत्याग्रह स्थगित कर दिया गया। कमीशन की रिपोर्ट निकली

और फलस्वरूप सरकार ने कानून बनाकर १–तीन पौंड कर वाला कानून रद्द कर दिया और २–भारतीय कानून के अनुसार नियमित ठहराये गये विवाहों को नियमित मान लिया। कुछ अन्य बातों का भी लिखित विश्वास दिलाया गया। इसके फलस्वरूप जो संघर्ष १९०६ में आरंभ हुआ था, आठ वर्ष बाद ३० जून १९१४ को सफलतापूर्वक समाप्त हो गया।

गांधी जी भारत में—

अफ्रीका में अपना कार्य समाप्त कर गांधी जी ने भारत लौटने का निश्चय किया, पर श्री गोखले की बीमारी का समाचार पाकर इन्होंने पत्नी सहित लन्दन को प्रस्थान करने की तैयारी की। दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों ने आँसू-भरी आँखों से इन्हें विदाई दी। ये ६ अगस्त १९१४ को इंग्लैंड पहुँचे। ४ अगस्त को योरुपीय महायुद्ध की घोषणा हो चुकी थी। इन्हें इंग्लैंड में ही रुकना पड़ा। यह निश्चय करके कि भारतीयों का यह कर्त्तव्य है कि विपत्ति के समय साम्राज्य-सरकार की सहायता करें, इन्होंने युद्ध-सेवा के लिए वहाँ ८० विद्यार्थियों का एक स्वयंसेवक दल बना लिया, जिन्हें नियमित रूप से शिक्षा दी गई। इतने में गांधी जी पसली के दर्द से बीमार रहने लगे। वहाँ ठीक न हो सके। अतः ये भारत लौट आये। भारत में कर्मवीर गांधी के रूप में इनकी पर्याप्त प्रसिद्धि हो चुकी थी। बम्बई उतरने पर इनका भारी स्वागत हुआ। ये जहाँ भी गये, इनका आदरपूर्ण स्वागत हुआ। राजकोट जाते समय वीरमगाँव की जकात की जाँच होने वाले कष्टों के बारे में इन्होंने सुना। इस संबंध में पहले गवर्नर बम्बई और बाद में वाइसराय चेम्सफ़ोर्ड से आप मिले। थोड़े ही दिनों में जकात रद्द कर दी गई। इन्हीं दिनों श्री गोखले के देहावसान से इन्हें बहुत दुःख हुआ।

इधर दक्षिण-अफ्रीका के इनके सत्याग्रह-आश्रम के कई साथी भी भारत आ गये थे। गांधी जी का विचार इन साथियों को लेकर एक आश्रम स्थापित करने और उसमें सरल सात्विक जीवन विताने का था। अहमदावाद जिले के कोचरब नामक स्थान पर एक मकान लेकर इन्होंने २५ मई १६१५ को आश्रम की स्थापना कर दी। चूँकि सत्य की पूजा और सत्य की शोध ही इनका ध्येय बन गया था, अतः आश्रम का नाम 'सत्याग्रह-आश्रम' ही रखा गया। इस आश्रम में कई लोग भरती हो गये। जाति-भेद न होने के कारण उसमें अछूतों को भी समान अधिकार थे। सब आश्रम-वासी एक ही कुटुम्ब के समान रहते और एक ही भोजन-गृह में भोजन करते थे। इस कारण इन्हें बहिष्कार इत्यादि अनेकों झंझटों और कष्टों को झेलना पड़ा, किन्तु अपने धम में गांधी जी तथा अन्य आश्रमवासी अचल रहे। यहीं से गांधी जी के अछूतोद्धार की नींव पड़ी जो आगे जाकर उनके जीवन-लक्ष्यों में एक प्रधान लक्ष्य बन गया। इधर श्री मदनमोहन मालवीय जी के सहयोग से गांधी जी ने सरकार से गिरमिट-प्रथा तोड़ने की माँग की, जो इनकी सत्याग्रह की चुनौती की अन्तिम तिथि ३१ जुलाई १६१६ से पहले ही सरकार ने रद्द कर दी। भविष्य के लिए कुली-प्रथा का अन्त हो गया।

१६१६ के दिसम्बर मास में होने वाले काँग्रेस-अधिवेशन में गांधी जी के अनुरोध से काँग्रेस के दोनों दलों—गरम, नरम—में समझौता भी हो गया।

चम्पारन की समस्या—

भारत के बिहार-प्रान्त में नील की खेती करने वाले गोरों का अत्याचार बढ़ता जा रहा था। 'तीन कठिया' की प्रथा से किसानों को बहुत कष्ट था। इसके अनुसार चम्पारन के कृषक अपनी ही

भूमि के ३/२० भाग में नील की खेती करने के लिए बाध्य किये जाते थे, जिसकी आय भूमि के वास्तविक मालिक को जाती थी। यह वहाँ का कानून था। लोगों के अनुरोध से गांधी जी वहाँ गये। पटना में राजेन्द्र बाबू और व्रजकिशोर बाबू से सलाह करके ये १५ अप्रैल १९१७ को मुज़फ़्फ़रपुर पधारे। १६ अप्रैल को चम्पारन के मोतीहारी नगर में पहुँचने पर चौबीस घंटे के भीतर ज़िला छोड़ देने के लिए इन्हें मजिस्ट्रेट का नोटिस मिला। गांधी जी ने अवज्ञा की, मुकदमा चल पड़ा। पर इसी बीच में वाइसराय की आज्ञा से इन्हें सब स्थानों में यात्रा करने और जाँच करने की स्वतन्त्रता मिल गई। गाँव-गाँव घूमकर इन्होंने वहाँ की स्थिति का अध्ययन किया और लगभग ७००० किसानों के बयान लिये। गांधी जी ने कई गाँवों में पाठशालाएं खोल दीं। कुछ नवयुवकों और युवतियों के सहयोग से इन पाठशालाओं द्वारा किसानों के बच्चों को शिक्षा दी जाती, गाँवों की सफ़ाई आदि का प्रचार किया जाने लगा और इस प्रकार सेवा, सफ़ाई एवं शिक्षा द्वारा ग्राम-सुधार का आन्दोलन आरंभ हो गया। निलहे गोरे उत्तेजित हुए, पर यह काम चलता रहा। गांधी जी ने गवर्नर की सहायता से एक जाँच-समिति भी नियुक्त करवा ली, जिसके एक सदस्य वे स्वयं भी थे। समिति ने किसानों की शिकायतों को सच्चा बताया और सर्वसम्मति से यह आवेदन दिया कि निलहे गोरे अनुचित रीति से प्राप्त आय का कुछ भाग लौटा दें और भविष्य के लिए 'तीन कठिया' का कानून रद्द किया जाय। जाँच-समिति के आवेदनानुसार कानून बना और 'तीन-कठिया' रद्द हो गई। इस प्रकार गांधी जी के प्रयत्न से निलहे गोरों के राज्य का अन्त हो गया। वहाँ गांधी जी अत्यन्त लोकप्रिय हो गये। जब गांधी जी बिहार से चले तो तीस-तीस हज़ार आदमी स्टेशनों पर उनके

दर्शनों को आये थे। इस प्रकार धीरे-धीरे गांधी जी भारत के प्रथम श्रेणी के नेताओं में स्थान पाने की ओर बढ़ने लगे।

मज़दूर-हड़ताल—

'मजदूर-संघ' के सम्बन्ध में गांधी जी विहार से सीधे अहमदाबाद पहुँचे। जाँच करने पर मजदूरों का पक्ष गांधी जी को पुष्ट दिखाई दिया। मिल-मालिकों के अपनी बात पर अड़े रहने के अनुरोध पर गांधी जी ने मजदूरों को हड़ताल कर देने की सम्मति दी। हड़तालें हुई, जलूस निकले। कुछ समय बाद मजदूरों में धीरे-धीरे शिथिलता आने लगी। काम पर जाने वालों के साथ झगड़े होने लगे। शान्ति-भंग से गांधी जी दुःखित हुए और इन्होंने उपवास आरंभ कर दिया। किसी सामाजिक समस्या को लेकर किया गया यह गांधी जी का प्रथम उपवास था। उस दिन हड़ताल का १८ वाँ दिन था। २१ वें दिन दोनों पक्षों ने पंच-निर्णय स्वीकार कर लिया। हड़ताल समाप्त हुई और समझौता हो गया। इधर कोचरब में प्लेग फैल जाने पर आश्रम को वहाँ से हटाकर साबरमती जेल के पास खेमों में ले जाया गया। बाद में यही स्थायी रूप से आश्रम बना, जो धीरे-धीरे विस्तृत रूप धारण करता गया।

खेड़ा-सत्याग्रह—

अहमदाबाद के मजदूर-सत्याग्रह के समाप्त होते ही खेड़ा-सत्याग्रह का कार्य-भार इन पर आ पड़ा। गुजरात प्रान्त के खेड़ा ज़िले में फ़सल के पूर्णतया नष्ट हो जाने पर वहाँ के किसानों की दशा शोचनीय हो गई थी। वे भूमि-कर देने में नितान्त असमर्थ थे, पर अधिकारी कर देने के लिए जनता को बाध्य कर रहे थे। जनता की माँग स्पष्ट थी। इस संबंध में सब प्रकार के वैधानिक प्रतिरोध असफल हो गये। उल्टे गांधी जी को शासन की ओर से अपमान सहने पड़े और धमकियाँ भी। वैधानिक

प्रयत्नों के विफल सिद्ध होने पर गांधी जी ने लोगों को सत्याग्रह की अनुमति दे दी। फिर क्या था ? सत्याग्रह की प्रतिज्ञाएँ की गईं। गाँव-गाँव में सत्याग्रह के स्वरूप और उसकी अबोध-शक्ति का प्रचार होने लगा। आन्दोलन ने उग्र रूप धारण कर लिया; सरकार भी दमन पर तुल गई। किसान पीड़ित किये जाने लगे; उनके पशु-धन को बेचा जाने लगा। उनके घरों में से जो कुछ मिला, पुलिस उठा ले गई। किसी-किसी गाँव में तो समूची फ़सल ज़ब्त कर ली गई। पुलिस पकड़-धकड़ करने लगी। दमन से आन्दोलन ने और भी बल पकड़ा। अन्त में सरकार को झुकना पड़ा और इस बात पर समझौता हो गया कि निर्धन किसानों को कर से मुक्त कर दिया जायगा, पर धनी किसानों को कर देना होगा। सत्याग्रह समाप्त हुआ। भारत में सरकार के विरुद्ध किया गया यह प्रथम सत्याग्रह था। किसानों को अपनी वास्तविक स्थिति और शक्ति का अनुभव हुआ।

उधर योरुपीय युद्ध उग्र रूप धारण करता जा रहा था। लोकमान्य तिलक के अनुयायी इस अवसर से लाभ उठाने के पक्ष में थे। बंग-विभाजन से लेकर इस काल-पर्यन्त भारतीय नेताओं के प्रचार से भारत में विदेशी शासन के प्रति लोगों में वैमनस्य की भावनाएँ बढ़ती जा रही थीं। लोकमान्य तिलक का निर्वासन देशभक्ति के प्रचार का ही परिणाम था। तिलक महाराज उग्रवादी नेता थे। गांधी जी और तिलक की विचार-धाराओं में भेद था।

लोकमान्य भारत के ख्यातिप्राप्त उग्रदलीय नेता थे और देश-भक्ति के आरोप पर निर्वासन का दण्ड भी भोग चुके थे। परन्तु गांधी जी शान्तिपूर्ण सत्याग्रही थे। यद्यपि प्रवासी भारतीयों के माने हुए नेता थे, परन्तु उनकी शान्तिपूर्ण आन्दोलन-

पद्धति में पीड़ित जनता का अभी पूरा विश्वास नहीं हो पाया था। परन्तु गांधी जी को अपने सिद्धान्तों पर अचल विश्वास था और वे अँग्रेजों के सहयोग से ही भारत के भाग्य का निपटारा चाहते थे। उनका विश्वास हृदय-परिवर्तन द्वारा शत्रु पर विजय पाने में था। इसीलिए इस युद्ध-जैसी घोर आपत्ति के समय वे साम्राज्य-सरकार की सहायता के पत्त में थे। फलतः उन्होंने सेना के रंगरूटों की भरती में सरकार से सहयोग की नीति को अपनाया और गाँव-गाँव घूम कर भरती के लिए प्रचार किया। इस प्रचार में इन्हें बहुत शारीरिक कष्ट भी झेलना पड़ा। यद्यपि लोकमान्य राज्य-भक्ति की प्रतिज्ञा करके निर्वासन-दण्ड से मुक्त होकर १६१४ में देश लौटे थे, परन्तु उन-जैसी उग्र भावनाओं का व्यक्ति कैसे चुप रह सकता था। 'स्वराज्य हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है' को घोषणा कर १६१६ में उन्होंने होम-रूल (स्वराज्य) के पक्ष में अँग्रेज-विरोधी एक उग्र आन्दोलन आरंभ कर दिया। इसमें श्रीमती एनी बेसेंट, सी० पी० रामास्वामी ऐयर और मुहम्मदअली जिन्ना जैसों का सुपुष्ट सहयोग तिलक महाराज को मिल गया। भारत-भूमि ज्वालामुखी जैसे भयंकर कोलाहल से उद्वेलित हो उठी। न केवल राजनीतिज्ञों में ही, वरन् किसानों एवं सैनिकों में भी यह तीव्र भावना थी कि सरकार को युद्ध में बहाये जाने वाले भारतीयों के रुधिर का मूल्य चुकाने का वचन देना चाहिए। इस प्रकार तिलक तथा गांधी जी में भरती संबंधी कार्य में उग्र मतभेद था।

गांधी जी ने भरती में सरकार को सहयोग दिया। लोकमान्य को अगस्त १६१८ को क़ैद कर लिया गया। न केवल यही बल्कि शौकतअली, मुहम्मदअली जो उस समय मुसलमानों के प्रभावशाली नेता थे, श्रीमती बेसेंट तथा अगणित अन्य कार्य-कर्त्ताओं

को सरकार ने जेल में बंद कर दिया। देश में उग्र भावनाओं का प्रसार था। पर १६१८ के नवंबर मास में युद्ध समाप्त हो गया। जनता को आशा थी कि 'युद्ध-विजय के उपलक्ष्य में सरकार जनता को कुछ शासन-संबंधी अधिकार दे देगी' पर 'भावी चेन्न तदन्यथा।' भारतीयों को सेवाओं के पुरस्कार में रौलेट एक्ट मिला। जब यह कानून कौंसिल में रखा गया, इसका भारतव्यापी विरोध हुआ। कॉंग्रेस ने यथाशक्ति इस बिल की निन्दा की। पर इस सब विरोध के होते हुए भी यह कानून पास हो गया और भारत की आशाओं पर घोर वज्रपात हुआ। उसे पुरस्कार के बदले दण्ड मिला। इस बिल से गांधी जी को गहन दुःख हुआ। गांधी जी ने अनुभव किया कि यह कानून सर्वथा अन्यायपूर्ण है, स्वतन्त्रता के सिद्धान्तों के विपरीत है और व्यक्ति के सामान्य अधिकारों पर कुठाराघात है। इन्होंने वाइसराय से पत्र द्वारा इस कानून को अस्वीकार करने का व्यर्थ अनुरोध भी किया। अन्त में विवश होकर दक्षिण-अफ्रीका के सफल प्रयोगों के आधार पर सत्याग्रह करने का निश्चय किया और उसकी योजना में लग गये। यद्यपि वे रोग से इतने दुर्बल हो गये थे कि इनके भाषण भी दूसरों द्वारा पढ़े जाते थे, इन्होंने असीम उत्साह और गहन लगन के साथ यात्रा आरंभ कर दी और देश-व्यापी बृहत् सत्याग्रह आन्दोलन करके सरकार को इस दमनकारी कानून को वापस लेने के लिए बाध्य करने का दृढ़ निश्चय कर लिया। बम्बई में गांधी जी की अध्यक्षता में केन्द्रीय सत्याग्रह-समिति स्थापित हुई। २८ फरवरी १६१६ को इस कानून को न मानने की प्रसिद्ध घोषणा कर दी गई। गांधी जी ने सत्याग्रह का रहस्य समझाते हुए देशव्यापी यात्रा की। देश भर में सभाओं की धूम मच गई। जनता में अभूत-पूर्व उत्साह दृष्टि-

गोचर होने लगा। पहले २० मार्च और बाद में ६ अप्रैल का दिन इस सत्याग्रह के लिए निश्चित हुआ। देश भर में स्थान-स्थान पर हड़तालें करने, उपवास और प्रार्थनाएँ करने तथा सभाओं में कानून के प्रति विरोध प्रदर्शित करने का कार्य-क्रम रखा गया। देशव्यापी हड़ताल हुई। गांधी जी ने 'सत्याग्रही' नामक एक पत्र बिना डिक्लेरेशन के निकाला। जगह-जगह जब्त पुस्तकें खुले में बेची गईं। खूब बिक्री भी हुई। दिल्ली की ओर जाते हुए रेल में ही कोसी के स्टेशन पर दिल्ली तथा पंजाब में प्रवेश न करने के लिए प्रवेश-निषेधक आज्ञा-पत्र गांधी जी को दे दिया गया। आज्ञा की अवज्ञा करने पर उन्हें गिरफ्तार करके बम्बई पहुँचा कर छोड़ दिया गया।

बम्बई में इन्हें यह आदेश दिया गया कि बम्बई-क्षेत्र में ही वे अपना कार्य कर सकते हैं। यह हड़ताल भारतीय सरकार के विरोध में किया गया गांधी जी का सर्वप्रथम सरकार-विरोधी राजनीतिक कार्य था, जिसे इन्होंने जान-बूझ कर किया था। वास्तव में यह हड़ताल सरकार के विरुद्ध किये गये उस विराट् संघर्ष का श्रीगणेश था जिसे गांधी जी ने अट्ठाईस वर्षों के सुदीर्घ काल तक संचालित किया। इस संघर्ष के अन्त के साथ ही भारत में अँग्रेजी-शासन का भी अन्त हो गया।

इधर गांधी जी की गिरफ्तारी से देश भर में उग्र उत्तेजना फैल गई। पहले पंजाब और दिल्ली में ही दंगे हुए थे। अब बम्बई और अहमदाबाद में भी दंगे हुए। बम्बई तथा अन्य स्थानों में अपने भाषणों में गांधी जी ने इन कार्यों की तीव्र निन्दा की, और अँग्रेजों को पीटना, आहत कर देना, मकानों को आग लगा देना, गाड़ियों को रोकना, तारों को काटना इत्यादि कार्यों को 'सत्याग्रही के लिए अनुचित है'—घोषित किया। साबरमती पहुँच कर गांधी जी

ने तीन दिन का उपवास भी किया; परन्तु हिंसात्मक कार्य बढ़ते ही गये। वे हिंसा-कार्यों के घोर विरोधी थे। जब इन्होंने देखा कि सत्याग्रह की आड़ में हिंसा का व्यवहार किया जाने लगा है तो उन्हें असह्य हो उठा। १८ अप्रैल को उन्होंने आन्दोलन स्थगित कर दिया। विपक्षवालों ने इनकी हँसी उड़ाई, व्यंग्य कसे, पर गांधी जी ने चिन्ता न की।

उधर पंजाब में जो दंगे हुए थे, उनके कारण वहाँ की सरकार ने वहाँ फ़ौजी कानून (Martial Law) लागू कर दिया। जनरल डायर ने अमृतसर के 'जलियाँवाला बाग़' में हो रही एक शान्त सभा पर मशीनगनों से गोली बरसा कर सैंकड़ों निरीह, निर्दोष व्यक्तियों को काल के ग्रास बना दिया। वह भूमि निरपराधों के रक्त से लाल हो गई। स्त्रियों पर अत्याचार किये गये। लोगों को सड़कों पर पेट के बल चलाया गया और अनेक प्रकार की यातनाएँ दी गईं। ऐसा दिखाई पड़ता था—मानों मध्य-युग का शासन पंजाब में चल रहा है, बर्बरता नंगी नाच रही है, सभ्यता मानों दुम दबा कर भाग गई है। सभ्यता के इस युग में जनरल डायर की ये काली करतूतें ब्रिटिश जाति के गोरे मुँह पर स्याही की भाँति पुत गईं और सदा के लिए ही पुती रहेंगी। भारत ही नहीं, देश-विदेशों में इन कुकृत्यों के कारण हाहाकार मच गया, व्यापक विरोध हुआ। जाँच के लिए हण्टर-कमेटी की नियुक्ति हुई। राष्ट्रीय काँग्रेस ने इस कमेटी का बहिष्कार किया। काँग्रेस द्वारा नियुक्त एक कमेटी की जाँच से अनेक ऐसे रोमाञ्चकारी कुकृत्यों का पता लगा जो मानव जाति के इतिहास की अत्यन्त घृणित घटनाओं में गिने जायँगे। फ़ौजी कानून ने सैंकड़ों पंजाबियों को जेल के सीखचों के पीछे बंद कर दिया। सरकार ने विरोध का जोरों से दमन किया, पर कुछ

समय पश्चात् अनेक कैदी छोड़ दिये गये। कुछ नये सुधारों की घोषणा की गई। गांधी जी को सुधारों में अब भी विश्वास था, पर यह सब निराशाजनक हुआ। उधर लन्दन में जनरल डायर के स्मारक बनाये जा रहे थे, उसे थैलियाँ भेंट हो रही थीं। अन्त में गांधी जी को अँग्रेजी पॉलिसी का ज्ञान हो गया। १६२० में गांधी जी होम-रूल-लीग के प्रधान चुने गये। ३० जून को गांधीजी के नेतृत्व में खिलाफ़त-आन्दोलन ने असहयोग की नीति को अपना लिया। गांधी जी ने घोषणा की कि ३१ जुलाई को उपवास और प्रार्थना-सभाएँ करके १ अगस्त से असहयोग-आन्दोलन कर दिया जायगा। इसी दिन लोकमान्य तिलक का स्वर्गवास हो गया। अब देशवासियों का एकमात्र आशा-स्तम्भ गांधी जी ही रह गये। कलकत्ता के विशेषाधिवेशन में काँग्रेस ने असहयोग का समर्थन किया और दिसम्बर १६२० के काँग्रेस-अधिवेशन ने इस पर स्वीकृति की छाप लगा दी। गांधी जी ने उसमें एक प्रस्ताव रखा कि ब्रिटिश-साम्राज्य के भीतर अथवा बाहर जैसे भी हो स्वराज्य-प्राप्ति काँग्रेस का ध्येय है। जिन्ना आदि साम्राज्य के भीतर स्वराज्य-प्राप्ति के पक्ष में थे। गांधी जी का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ, जिन्ना का मत ठुकरा दिया गया। जिन्ना की रुचि काँग्रेस से हटने लगी। गांधी जी ही काँग्रेस में सर्वेसर्वा हो गये। उन्हीं की नीति काँग्रेस-नीति बन गई। गांधी जी ने काँग्रेस का नया विधान बनाया। इस विधान के अनुसार काँग्रेस एक प्रजातान्त्रिक संस्था हो गई, जिसमें ग्राम-काँग्रेस से लेकर प्रान्तीय काँग्रेस तक सभी संस्थाएँ बन गईं। ३५० सदस्यों की एक अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी को स्थान मिला जो नीति का निर्धारण करेगी और १५ सदस्यों की कार्यकारिणी उस नीति को कार्यान्वित करेगी। यह विधान स्वीकार हुआ। इसी अधिवेशन में अछूतोद्धार का प्रस्ताव पास

हुआ, हाथ की कताई और बुनाई के काम के पुनरुद्धार के लिए तिलक-फंड में एक करोड़ रुपये एकत्र करने के प्रस्ताव भी स्वीकार किये गये। मध्यवर्ग का इस अधिवेशन में अधिक प्रतिनिधित्व हुआ। गांधी जी ने इस अधिवेशन में यह घोषणा की कि जनता इस अहिंसात्मक असहयोग में शान्तिमय उपायों से यदि सफल हो गई तो बारह मास में ही स्वराज्य मिल जायगा। उन्होंने अपना यह सन्देश भारत के कोने-कोने में पहुँचा दिया। लोगों के दिलों में यह बिठा दिया कि जो व्यक्ति असहयोग-आन्दोलन में भाग न लेगा वह स्वराज्य मिलने में विलम्ब लाने का उत्तरदायी होगा। भारत में एक अभूतपूर्व जागृति की लहर प्रवाहित हुई। वकीलों ने वकालत छोड़ दी, विद्यार्थियों ने स्कूल-कॉलेज एवं कौंसिलों और अदालतों का वहिष्कार किया गया। अनेक लोगों ने अपनी उपाधियाँ लौटा दीं। प्रिंस-ऑफ़-वेल्ज़ के भारत-आगमन के समय सम्पूर्ण भारत में हड़ताल की गई। सहस्रों व्यक्ति जेल गये। १९२१ के अहमदाबाद काँग्रेस-अधिवेशन में गांधी जी सत्याग्रह-आन्दोलन के सर्वेसर्वा (डिक्टेटर) बनाये गये। जनवरी १९२२ को बारदोली में सत्याग्रह-संग्राम आरंभ कर देने की घोषणा करते हुए गांधी जी ने सरकार को चुनौती भेज दी। इतने में ही चौरी-चौरा के हत्याकाण्ड के फलस्वरूप उत्तेजित जनता ने पुलिस की कार्यवाही से आतंकित हो थाने में आग लगा दी। पुलिस के बाईस आदमी मारे गये। हिंसात्मक मनोवृत्ति में गांधी जी को घृणा थी। दुःखी हो कार्यसमिति की अनुमति से प्रस्तावित सत्याग्रह को उन्होंने स्थगित कर दिया। चौरीचौरा के हत्या-पाप के प्रायश्चित्तस्वरूप महात्मा जी ने आत्म-शोधन हेतु पाँच दिन का उपवास किया।

१० मार्च १९२२ को गांधी जी गिरफ्तार कर लिये गये

और साथ ही श्री शंकरलाल बैंकर को। 'यंग इंडिया' में छपे उनके तीन लेखों के आधार पर उन पर राजद्रोह का अभियोग लगाया गया था। गांधी जी को इसकी पहले ही आशा थी। 'यंग इंडिया' में उन्होंने 'यदि मैं पकड़ा गया' शीर्षक में ६ मार्च को ही लिख दिया कि "यदि सरकार रक्त की नदियाँ भी बहा दे तो भी मुझे भय नहीं, परंतु मुझे घोर पीड़ा होगी यदि मेरे लिए या मेरे नाम पर लोगों ने सरकार को बुरा-भला भी कहा। मेरे पकड़े जाने पर यदि लोग सन्तुलन खो बैठे तो मेरे लिए अपमान-जनक होगा।" मुकद्दमा अहमदाबाद के गवर्नमेंट सर्कट-हाउस में सेशन जज सी० एन० ब्रूमफ़ील्ड की अदालत में २२ मार्च १६२२ को आरंभ हुआ। यह मुकद्दमा अपने महत्त्व में बहुत बड़ा समझा गया। आसपास चारों ओर फ़ौज का पहरा था। प्रवेश पास द्वारा ही हुआ तो भी भीड़ की सीमा न थी। अभियोग सुना देने पर जज ने इन से पूछा। अपना अभियोग स्वयं स्वीकार करते हुए जो लिखा बयान उन्होंने पढ़ा उसमें अँग्रेजी-राज्य के १५० वर्ष का कच्चा चिट्ठा था। 'अन्याय के प्रति असहयोग उतना ही धर्म है जितना न्याय के साथ सहयोग'। अन्त में गांधी जी ने कठोर-से-कठोर दंड देने की अपील भी की। अभियोग और अभियुक्त दोनों की महत्ता का अनुभव करते हुए जज ने दण्ड सुनाने से पूर्व गांधी जी को नमस्कार किया और उन्हें महान् नेता, महापुरुष एवं सत्पुरुष आदि शब्दों में श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए छः वर्ष के कारावास का दण्ड सुना दिया। गांधी जी ने मुस्कराते हुए इस दण्ड को 'सरल' कहा। अदालत के उठ जाने पर दर्शक-समूह गांधी जी के चरणों से लिपट गया; अनेक रोने लग गये—महात्मा जी ने मुस्करा कर उनका धन्यवाद किया और कहा कि "हमें जेलों को भर देना है।

स्वतन्त्रता का निवास जेलों में है, फाँसी के तख्तों पर है; वह कौंसिलों, न्यायालयों और विद्यालयों में नहीं मिल सकती। हमें सहर्ष जेलों में जाना चाहिए।"

गांधी जी को २० मार्च १६२२ को यरवदा जेल में बंद कर दिया गया। जेल में उनका स्वास्थ्य गिरने लगा। उन्हें दर्द-गुर्दा का रोग हो गया। अन्त में उन्हें यरवदा जेल से पूना के सेसून हस्पताल में ले जाया गया, जहाँ उनका ऑपरेशन होना था। सरकार ने ऑपरेशन का उत्तरदायित्व न लिया। महात्मा जी ने यह उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया। ऑपरेशन के मध्य में ही विजली जाती रही, टार्चों ने भी काम न दिया। हरीकेन के प्रकाश में ही कार्य-संपादन किया गया। डाक्टर के भाग्य में यश लिखा था, वह उसे मिला। स्वास्थ्य में सुधार बहुत धीरे-धीरे हो रहा था, अतः सरकार ने उन्हें जेल से मुक्त कर देने में ही बुद्धिमत्ता समझी। वे स्वास्थ्य-लाभ के लिए जुहू समुद्र-तट पर चले गये। गांधी जी के कारावास के वाईस मास में देश की अवस्था में महान् परिवर्तन हो गया था। इस दुरवस्था पर विचार-विनिमय करने के लिए श्रीयुत सी० आर० दास और मोतीलाल नेहरू इनकी सेवा में उपस्थित हुए। दो विषय विशेष विचारणीय थे—(१) हिन्दू-मुस्लिम-एकता और (२) असहयोग आन्दोलन। हिन्दू-मुस्लिम-एकता की दृढ़ चट्टान, जिस पर गांधी जी ने भारतीय स्वतन्त्रता-प्रासाद का उन्नत भवन बनाने की आशाएँ बना रखी थीं, इन दो वर्षों में ही दोनों जातियों के तीव्र द्वेष-विद्वेष की वलवती लहरों में गहरी डूब चुकी थी। खिलाफत-आन्दोलन की कब्र खुद चुकी थी और दोनों जातियाँ सहनशीलता को तिलाञ्जलि देकर भ्रातृत्व के स्थान पर शत्रुत्व को अपनाती जा रही थीं। छोटी-छोटी बातों पर पारस्परिक दंगे-फ़िसाद कर रही

थीं। उधर असहयोग-आन्दोलन भी प्राणहीन हो चुका था। अनेकों वकील आजीविका के लिए पुनः न्यायालयों के द्वार खट-खटा रहे थे, विद्यार्थी विद्यालयों में फिर पहुँच चुके थे और जनता में भय और आशंका छा गई थी। खेद की बात तो यह थी कि अत्यधिक लोग असहयोग की कार्यवाही पर खुले में पश्चात्ताप कर रहे थे। इन कारणों से काँग्रेस-संस्था में पुनः दो दल खड़े हो गये थे—एक का गांधी-नीति में विश्वास था और दूसरे का नहीं। स्वयं सी० आर० दास और मोतीलाल गांधी-नीति में विश्वास छोड़ स्वराज्य-दल का निर्माण कर चुके थे और म्युनिसिपैलिटी, प्रान्तीय तथा केन्द्रीय कौंसिलों में पुनः जाकर वहीं अँग्रेजी-शासन का भण्डाफोड़ करने के पक्ष में हो गये थे। स्वराज्य-दल के प्रोग्राम में इस समय आकर्षण था, गांधी जी के असहयोग में त्याग और बलिदान की भावना। यह सब देख गांधी जी ने राजनीति-क्षेत्र से अवकाश ग्रहण करने का दृढ़ निश्चय कर लिया और अपनी सारी शक्ति हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य की भावनाओं को प्रचारित करने में ही लगा देने की प्रतिज्ञा कर ली। २६ मई १९२४ के 'यंग इंडिया' के सम्पूर्ण अंक में 'हिन्दू-मुस्लिम-संघर्ष, उसके कारण और निराकरण' शीर्षक ६००० शब्दों का विस्तृत लेख लिख कर हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य की आवश्यकता पर प्रकाश डाला। इस समस्या पर उन्होंने गहन विचार किया। स्वतन्त्रता का एकमात्र साधन एकता को ही अनुभव किया तथा उसके लिए अधिक-से-अधिक बलिदान को भी तुच्छ समझा। उनकी अन्तरात्मा से उन्हें उपवास की प्रेरणा मिली और उन्होंने १८ सितम्बर १९२४ के दिन इक्कीस दिन का उपवास करने का निश्चय कर लिया तथा मौलाना मुहम्मद-अली के निवास-स्थान पर इसे आरंभ कर दिया। व्रत पूर्ण हो

गया, परन्तु जनता अथवा कॉंग्रेस-संस्था पर इसका कोई उल्लेख-नीय प्रभाव न पड़ा। अमृतसर-दुर्घटना-प्रसूत भावनाएँ शिथिल पड़ चुकी थीं; सरकार से संघर्ष करने की सचेत भावनाएँ, श्रद्धा एवं आत्मविश्वास के स्थान में जनता के अंदर संदेह, अविश्वास और निराशा ने स्थान पा लिया था। लोगों को निठल्लेपन की रूखी-सूखी में ही सुख मिलने लगा था। महात्मा जी के २१ दिन के उपवास का अनेकों पर प्रभाव भी पड़ा, उनकी मनोवृत्ति में कुछ परिवर्तन भी हुआ, परन्तु हिन्दू-मुस्लिम-तनातनी में विशेष सुधार न हुआ। अतः महात्मा जी ने ऐसे समय सरकार से संघर्ष करना उचित न समझ अपने घर को सुधारना ही उचित समझा। अतः आने वाले राजनीतिक अवसरों के लिए जनता को नैतिक रूप से विकसित करना, विशेषतः हिन्दू-मुस्लिम-एकता और अछूतोद्धार के प्रयत्न एवं चर्खा के कार्यक्रम को अग्रसर करना ही उन्होंने अपना भावी प्रोग्राम निर्धारित किया। अब सरकार की आलोचना के स्थान में अधिकतर भारतवासियों की ही टीका-टिप्पणी करने लगे। जनता को अधिकार-प्राप्ति के प्रयत्न करने की अपेक्षा अधिकारों के दुरुपयोग करने के विरोध के लिए तैयार करने के कार्य में लग गये। चरित्र-निर्माण, नैतिक बल-संचार एवं आवेश पर संयम करने आदि के लिए वे जनता में प्रचार करने लगे। इस प्रकार राजनीति के स्थान में नीति के क्षेत्र को उन्होंने अपनाया; क्योंकि वे राजनीति से नैतिकता को सदा से श्रेष्ठ समझते आये थे और नैतिकता के अभाव में राजनीति में सफलता उनकी दृष्टि में वास्तविक और स्थायी सफलता थी ही नहीं। फलतः गांधी जी के व्यक्तिगत प्रभाव में कोई कमी न आई। वे जहाँ जाते, लोग उन्हें घेर लेते। उन्हें दिन में एकान्त का अवकाश मिलना ही कठिन हो गया। लोग उनके दर्शनों के भूखे

प्रतीत होते थे। राजनीतिक नेता के रूप में उन्हें इतना मान और प्रेम न मिला था जितना इस समय। सच तो यह है कि वे जनता के उपास्यदेव हो गये। पर उन्हें यह सब इष्ट नहीं था—'मैं महात्मा नहीं। मेरा महात्मापन व्यर्थ है।' यह प्रायः वे जनता से कहा करते। परन्तु जनता कब माननेवाली थी, कोई उन्हें बुद्ध का और कोई कृष्ण का अवतार कहता। उनका चर्खा तो कृष्ण के सुदर्शन-चक्र से भी अधिक प्रिय हो गया और उसकी शक्ति अनन्त मानी जाने लगी। इस प्रकार महात्मा जी १९२४ से १९२७ तक भारतवर्ष के कोने-कोने में घूमे। जहाँ जाते उन्हें थैलियाँ भेंट होतीं। उन पर धन, आभूषण एवं जवाहरात तक चढ़ाये जाते। इस प्रकार उन्होंने असंख्य धन भी एकत्र कर लिया और उससे अनेक सार्वजनिक फंड खोल दिये। खादी का भी खूब प्रचार हुआ। केवल अशिक्षित जन-समूह ही नहीं, बड़े-बड़े शिक्षित और बुद्धि-परायण व्यक्ति भी उनके प्रभाव से प्रभावित हुए। महात्मा जी मस्तिष्क और हृदय को मिलाने, नगर और ग्राम एवं धनवान् और निर्धन को संगठित करने के प्रयत्न में लगे थे। अणु-त्रम से प्रभावित सभ्यता तथा जातियों में विभक्त देश के लिए इससे बढ़कर और जन-सेवा क्या हो सकती थी? पिछड़े हुओं की सहायता के लिए उन्हें समझने के लिए उनकी जीवन-वृत्ति अपनाना आवश्यक है, अतः निम्न-से-निम्न कार्य करने से जी चुराना ठीक नहीं। समय-समय पर मेहतर का काम भी कर लेने की प्रेरणा वे दिया करते; बल्कि स्वयं उन्होंने वह काम महीनों किया भी। इस प्रकार गांधी जी ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति राष्ट्र के विधायक कामों में लगा दी और उनके प्रयत्नों से खादी के कार्य में विशेषोन्नति हुई। गांधी जी के प्रयत्न से मालाबार का हरिजन-सत्याग्रह भी शान्त हो गया। १९२४ में वे काँग्रेस

के अध्यक्ष रहे और १६२५ दिसम्बर को इस पद को श्रीमती सरोजिनी नायडू को संभलवा कर उन्होंने वर्ष भर का राजनैतिक मौन-व्रत ले लिया। ७ जनवरी १६२६ के 'यंग इंडिया' में इस प्रकार घोषणा निकली—"कम-से-कम आगामी २० दिसम्बर तक मैं आश्रम से बाहर नहीं जाऊँगा, नदी से पार अहमदाबाद से तो बिल्कुल नहीं जाऊँगा। शरीर और आत्मा दोनों को विश्राम चाहिए।"

स्वराज्य-दल, जिसने कौंसिल में अपने प्रतिनिधि सरकार के मार्ग में बाधा डालने को भेजे थे, धीरे-धीरे सरकार से सहयोग करने की ओर प्रवृत्त होता जा रहा था। श्री जयकर और केलकर मुसलमानों से सहयोग करने की अपेक्षा सरकार से सहयोग बढ़ाने के पक्ष में हो गये। उन्होंने स्वराज्य-दल को त्याग कर रेस्पोन्सिविस्ट-दल बना लिया जो हिन्दू महा-सभा की ओर अधिक झुका था। मुस्लिम लीग ने भी १६२५ में धार्मिक राजनीति को अपना लिया। भारत की राजनीतिक अवस्था में अव्यवस्था और पतन आ रहा था। फलतः गांधी जी के लिए मौन का ही उपयुक्त समय था। 'मौन ही सांसारिक उपासना की उचित भाषा है' यह उनका कथन है।

अब उनका विश्वास सरकार पर से उठ गया। 'जब तक यह सरकार-रूपी तृतीय दल यहाँ विद्यमान है, हिन्दू-मुस्लिम-एकता असंभव है'—यह उन्हें अनुभव हो गया। अतः स्वतन्त्रता से पूर्व और पश्चात् वे धार्मिक शान्ति का होना आवश्यक समझने लग गये थे। तथाकथित मौन-वर्ष में गांधीजी ने मनुष्य के धर्म, कर्म, नैतिकता, ब्रह्मचर्य एवं अछूतोद्धार, विधवा, बालविवाह तथा अन्यान्य नैतिक विषयों पर खूब लिखा और इस प्रकार भारतीयों को जीवन-यापन करने की अनेक शिक्षाएँ

दीं। कर्मण्य गांधी कर्मण्य सफलता का पक्षपाती रहा। उन्होंने नीति का आधार तर्क पर बनाया, कल्पना के अन्धविश्वास पर नहीं। इस प्रकार उन्होंने सभी धर्मों की एकता का प्रचार किया और मनुष्य को सबसे पहले मानव बनाने की शिक्षा दी।

मौन-वर्ष के पश्चात् भी गांधी जी की नीति में कोई परिवर्तन न आया, वही हिन्दू-मुस्लिम-एकता, वही अस्पृश्यता-निवारण और वही खादी-प्रचार उनकी नीति के प्रमुख कार्य थे।

१९२६ की गोहाटी काँग्रेस में स्वतन्त्रता तथा अँग्रेजों से सब प्रकार के सम्बन्ध-विच्छेद का प्रस्ताव रखा गया। गांधी जी ने यह कहते हुए प्रस्ताव का विरोध किया कि "ये प्रस्तावक सज्जन मानव-प्रकृति में श्रद्धा के अभाव को प्रकट कर रहे हैं, फलतः अपने आप में भी श्रद्धा का अभाव दिखा रहे हैं। ये ऐसा विचार क्यों करते हैं कि साम्राज्य-सरकार के कर्त्ता-धर्त्ताओं का हृदय-परिवर्तन कभी हो ही नहीं सकता? यदि भारत उन्नत और बलिष्ठ होगा तो इंग्लैंड भी बदल जायगा।"

गांधी जी ने देश के मनोबल को सशक्त बनाने के अपने प्रयत्न जारी रखे। उन्होंने फिर भारत का दौरा आरंभ कर दिया। वे स्वयं अछूतों में बैठ जाते और इसलिए बड़े बड़े ब्राह्मणों तक को उनके साथ बैठना पड़ता। ऐसे कर्मठ देश-सेवक की आज्ञा का उल्लंघन कौन करता?

उनके प्रचार के फलस्वरूप और सब कुछ हुआ परन्तु हिन्दू मुसलमान एक न हो सके। एक सभा में उन्होंने यह मान भी लिया, "मैं असहाय हूँ। मैंने इस आशा से हाथ धो लिये हैं। अब भगवान् ही इन्हें मिलायेगा...और वह अवश्य एकता पैदा करेगा......" इस प्रकार वे अपने आपको सन्तोष दे लेते थे। पर उन्होंने यात्रा बंद न की, यद्यपि स्वास्थ्य दिन-प्रति-दिन गिरता

जा रहा था। बीच-बीच में ये बीमार भी हुए, पर ठीक होते ही वे अपने काम में लग जाते। इस वर्ष उन्होंने सारे भारत का फिर भ्रमण किया। उधर १९२७ में मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में बनी एक उपसमिति ने एक रिपोर्ट तैयार की, जिसमें औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग की गई थी। जब इस रिपोर्ट को कलकत्ता कॉंग्रेस-अधिवेशन में रखा गया जिसके अध्यक्ष स्वयं श्री मोतीलाल ही थे, तब जवाहरलाल, सुभाष बाबू आदि नवयुवक इस प्रकार प्रार्थना, याचना करने के पक्ष में नहीं थे। उस समय गांधी जी के प्रयत्न से यह समझौता हो गया कि यदि दिसम्बर १९२९—एक वर्ष के भीतर सरकार राष्ट्र की इस निम्नतम माँग को स्वीकार न करे तो कॉंग्रेस का ध्येय पूर्ण-स्वतन्त्रता कर दिया जाय। यह सब हुआ, पर गांधी जी ने अपनी प्रचार-यात्रा निरन्तर बनाये रखी। उनके भ्रमण के कार्यक्रम में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। इसके बाद ही भारतीय सुधार की समस्याओं की जाँच करने के लिए साइमन-कमीशन की नियुक्ति की गई, जिसमें एक भी भारतीय सदस्य को स्थान न दिया गया। गांधी जी को इससे असन्तोष और रोष हुआ कि "वह कमीशन भारत के भाग्य का क्या निर्णय करेगा जिसमें एक भी भारतीय सदस्य नहीं।" तुरन्त ही एक देशव्यापी आन्दोलन खड़ा हो गया कि कमीशन का बहिष्कार किया जाय और उसे न तो भारतीय समस्याओं के अध्ययन में किसी प्रकार की सहायता दी जाय और न ही कोई योजना उसके समक्ष रखी जाय। सर सप्रू के अनुरोध से उदार-दल ने, मालवीय जी के नेतृत्व में हिन्दू महासभा ने भी कॉंग्रेस के इस बहिष्कार में सहयोग देने का निश्चय कर लिया यहाँ तक कि मुस्लिम लीग के नेता जिन्ना भी इसी ओर झुक गये और वाइसराय के प्रलोभनों से भी उनके पक्ष में न हुए। ३ फ़रवरी १९२८ को जब कमीशन बम्बई उतरा

तो काले झण्डों और 'साइमन, वापस जाओ' के नारों से उसका स्वागत हुआ। यह बहिष्कार राजनीतिक ही नहीं, सामाजिक भी था। कुछ अछूतों एवं साधारण नेताओं के अतिरिक्त कोई मान्य भारतीय प्रतिनिधि उससे न मिला। कमीशन का पूर्ण बहिष्कार हुआ। गांधी ने अपने दोनों समाचार-पत्रों में तो कमीशन का संकेत तक न किया, जैसे कि ऐसी कोई वस्तु थी ही नहीं। पर सारे देश भर में इसके विरोध में प्रदर्शन किये गये, जिनमें सरकार की ओर से जनता पर कठोर प्रहार किये गये। पंजाब में 'शेरे-पंजाब' लाला लाजपतराय पर लाठी-वर्षा हुई, और उन्हीं चोटों ने तो उनके प्राण ही ले लिये। उन्हीं दिनों लखनऊ की विरोध-सभा में पण्डित जवाहरलाल नेहरू पर लाठी-वर्षा की गई। इस प्रकार सरकार ने घोर यातनाएँ दीं, पर कमीशन को किसी भारतीय नेता के दर्शनों का सौभाग्य न मिल सका। कमीशन आया और चला गया। जाकर उसने अपनी रिपोर्ट पार्लियामेंट के समक्ष रख दी।

बारदोली में १२ फरवरी १९२८ को सरदार पटेल के नेतृत्व में किसान-सत्याग्रह हुआ जो गांधी जी की शिक्षा-दीक्षा में ही किया गया। वह ऐतिहासिक सत्याग्रह था, जिसमें सरकार को सिर-तोड़ प्रयत्न करने पर भी मुँह की खानी पड़ी थी। गांधी जी को अपने इस शस्त्र पर और भी दृढ़ विश्वास हो गया था।

भारत के मजदूर-संघ की बढ़ती हुई गति-विधि के विरुद्ध भी सरकार ने १९२८ में ही कार्यवाही आरंभ कर दी थी, जिसके अनुसार ट्रेड यूनियन नेताओं, समाजवादियों एवं साम्यवादियों की सामूहिक धर-पकड़ की गई। ऐसी स्थिति में काँग्रेस का १९२८ वाला अधिवेशन कलकत्ता में हुआ, जिसमें उपरोक्त औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग की गई थी। १९२९ का वर्ष गांधी जी ने फिर

भारत के दौरे में ही बिताया। इधर हिंसावादी दल ने अपनी कार्यवाही आरंभ कर दी थी। लाहौर में साण्डर्स की हत्या हो चुकी थी, गांधी जी ने इसकी भर्त्सना की। पर उन्हें भय था कि यदि सरकार ने देश की माँग को स्वीकार न किया तो खून-खच्चर हो जायगा। हत्याकाण्ड, अग्निदाह, लूट-मार आदि के काल्पनिक दृश्य उन्हें पीड़ित कर रहे थे। मई १९२९ के 'यंग इंडिया' में उन्होंने लिखा कि 'यदि भारत हिंसात्मक साधनों से तथाकथित स्वराज्य को प्राप्त करेगा तो वह मेरे गौरव का देश न होगा।" स्वतन्त्रता तो अहिंसा से ही आनी ठीक होगी, यह उनकी हार्दिक इच्छा थी। इंग्लैंड में सत्ता मजदूर-दल के हाथ में आगई थी। वाइसराय इरविन भारत संबंधी बातचीत के लिए इंग्लैंड चले गये। महात्मा जी को अब भी आशा थी कि सरकार यदि राष्ट्रीय-माँग को समय पर और सम्मानपूर्वक स्वीकार कर लेगी तो हिंसात्मक झंझावात बंद हो सकेगा, परन्तु अभी ऐसी आशा का समय नहीं आया था। पुलिस षड्-यन्त्रकारी साहित्य की खोज में सम्पादकों के दफ्तरों और घरों की तलाशी लेने में व्यस्त थी। गांधी जी ने उसकी इस कार्यवाही की घोर निंदा की और जनता को बताया कि इस तरह आतंक पैदा करके एक लाख विदेशी करोड़ों देशवासियों पर शासन कर रहे हैं। सम्मान, अनुशासन और संयम से भारत अपना आत्मगौरव बनाये रख सकता है और स्वराज्य प्राप्त कर सकता है—वे यह प्रचार करते रहे।

वाइसराय कई मास उपरान्त भारत लौटे। आकर ३१ अक्तूबर १९२९ को वाइसराय ने यह उत्तेजनापूर्ण घोषणा कर दी कि 'भारत में ब्रिटिश-नीति का उद्देश्य भारत को औपनिवेशिक धरातल तक पहुँचाना है; इस हेतु एक गोल-मेज-कॉन्फ्रेंस बुलाई जायगी जिसमें भारत तथा भारतीय रियासतों के प्रतिनिधि ब्रिटिश

प्रतिनिधियों के साथ बैठ कर उस विषय पर बातचीत करेंगे।" काँग्रेस के उच्चाधिकारियों ने इस वक्तव्य के साथ सहानुभूति दर्शाते हुए यह अपील की कि प्रस्तावित काँफ्रेंस में काँग्रेस का प्रतिनिधित्व सब से अधिक हो। पर पं० जवाहरलाल और सुभाष बोस आदि नवयुवक नेताओं को समझौते का यह प्रस्ताव स्वीकार न था, उनकी ओर से विरोध की तीव्र आँधी प्रवाहित हुई। परन्तु बड़े-बूढ़े अपने कार्यक्रम में लगे रहे और वाइसराय से मिलने के लिए २३ दिसम्बर १६२६ का दिन नियत किया गया। उसी दिन प्रातःकाल वाइसराय की ट्रेन के नीचे बंब फटा, पर वे सकुशल रहे। नेतागण वाइसराय से नियत समय पर मिले और प्रस्तावित काँफ्रेंस संबंधी वार्त्तालाप हुआ। उधर इंग्लैंड की पार्लियामेंट में इसी प्रश्न पर घोर वाद-विवाद हो रहा था, अतः वाइसराय ने नेताओं के सामने काँफ्रेंस के संबंध में कोई निश्चित वक्तव्य देने में असमर्थता प्रकट की। ऐसे ही समय दिसम्बर में काँग्रेस का प्रसिद्ध अधिवेशन लाहौर में रावी के तट पर हुआ। काँग्रेस ने ३१ दिसम्बर की रात के १२ बजे के पश्चात् अर्थात् नववर्ष के आरंभिक घंटों में पूर्ण स्वतन्त्रता और सरकार से विच्छेद का प्रस्ताव स्वीकार कर पूर्ण स्वतन्त्रता की पताका फहरा दी। काँग्रेस के सदस्यों और मित्रों को कौंसिलों के बहिष्कार का आदेश देते हुए शान्तिपूर्ण अवज्ञा-आन्दोलन पर स्वीकृति की छाप लगा दी गई। काँग्रेस ने महात्मा गांधी को इस आन्दोलन का पूर्ण उत्तरदायित्व सौंपकर 'डिक्टेटर' घोषित कर दिया। गांधी जी यह भली भाँति जानते थे कि इस कार्य के लिए देश को शिक्षित करना दिनों का काम नहीं, उसके लिए समय चाहिए। यदि वे ही सर्वेसर्वा होते तो इस पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रस्ताव रखते ही नहीं, परन्तु अब क्या था? पाँसा फेंका जा चुका था।

कॉंग्रेस ने पूर्ण स्वराज्य का आदेश दे दिया था, अतः उन्होंने एक आज्ञाकारी सेवक के समान सारा भार अपने सिर ले लिया। देश की स्थिति से वे आतंकित थे ही; वातावरण में हिंसा-वृत्ति का प्रभाव भरा पड़ा था; कुछ नवयुवक स्वतन्त्रता के लिए हिंसा पर तुले हुए थे। उधर जनता व्यावसायिक मन्दी के कारण तंग थी। अतः ऐसी परिस्थिति में अवज्ञा-आन्दोलन छोड़ देने में 'निश्चय अहित' उन्हें दिखाई दे रहा था। वे अन्तरात्मा के आदेश की प्रतीक्षा में थे। छः सप्ताह बीत गये। अन्तरात्मा का आदेश मिलता प्रतीत हुआ। 'यंग इंडिया' के २७ फ़रवरी के अंक में उनका लेख 'जब मैं गिरफ़्तार कर लिया जाऊँगा' शीर्षक से छपा और दूसरे अंक में नमक-कानून की कुछ धाराएँ छापी गईं। २ मार्च को गांधीजी ने वाइसराय को पत्र भेज कर नौ दिन के भीतर सत्याग्रह आरंभ करने की चेतावनी दे दी। यह एक आश्चर्यकारक पत्र था। पत्रवाहक भी एक अँग्रेज सज्जन रेजिनल रेनॉल्ड्स थे। इरविन ने कोई उत्तर न दिया, केवल उनके सेक्रेटरी ने उनकी ओर से खेद प्रकट करते हुए लिखा कि "आपका प्रस्तावित कार्यक्रम सार्वजनिक शान्ति के लिए भयजनक और कानून का उल्लंघन होगा।" इस पर गांधी जी ने कहा—"मैंने घुटने झुका कर रोटी की भिक्षा माँगी थी। उत्तर में पत्थर का टुकड़ा मिला। अँग्रेज जाति केवल बल के आगे ही झुकना जानती है···।" ११ मार्च को भारत चकित हो गांधी जी के आश्रम पर दृष्टि गड़ाये था। बीसियों ही स्वदेशी व विदेशी पत्रकार आश्रम में गांधी जी की गति-विधि को देख रहे थे कि वे अब क्या करेंगे। दूर-दूर देश-विदेशों में चिन्ता की लहर फैली हुई थी। गांधी जी को यह समय 'जीवन भर का उपयुक्त अवसर' अनुभव हुआ। गांधी जी ने अपने सहयोगियों के रूप में साबरमती आश्रम के

केवल उन्हीं व्यक्तियों को चुना जो प्रत्येक दशा में अहिंसात्मक रह सकते थे। गांधी जी ने प्रतिज्ञा की कि 'स्वराज्य लिये विना इस आश्रम में पैर न धरूँगा'। १२ मार्च को प्रार्थना हुई। गांधी जी ने एक पतली लठिया हाथ में लिये हुये अठहत्तर आश्रमवासियों के साथ ऐतिहासिक डाँडी-यात्रा आरंभ कर दी। वह अद्भुत दृश्य था। दो सौ मील की दीर्घ यात्रा थी। एक पतला दुवला वृद्ध अठहत्तर निःशस्त्र साथियों को लेकर एक साम्राज्य-सत्ता के साथ युद्ध करने जा रहा था। मार्ग में जहाँ-जहाँ यह दल पहुँचा, वहाँ-वहाँ सभाएँ होतीं; गांधी जी लोगों को सत्याग्रह का मर्म समझाते। वे कहते, 'हम भगवान् के नाम पर यात्रा कर रहे हैं।' चौबीस दिन में यह दल डाँडी पहुँचा। देश भर उत्साह से उद्वेलित हो उठा। काँग्रेस ने देश को आदेश दिया कि ६ अप्रैल को अथवा जिस दिन गांधी जी को पकड़ा जाय उसी दिन सत्याग्रह आरंभ कर दिया जाय। गांधी जी ने ६ अप्रैल को अपने दल के साथ नमक-कानून भंग किया। समस्त भारत में सत्याग्रह हुआ। नमक बनाया जाने लगा। सरकार गिरफ्तारियाँ करने लगी। पुलिस ने कई स्थानों पर जलते हुए नमक-जल को सत्याग्रहियों पर उँड़ेल कर उन्हें जलाने की घृणित कार्यवाही भी की, पर स्वयंसेवकों ने ऐसे-ऐसे सभी अत्याचारों को वीरतापूर्वक सहन किया। वम्बई में सत्याग्रहियों ने समुद्री क्यारियों में से सैकड़ों मन नमक उठा-उठा कर बाजारों में खुले-आम वेचा। पुलिस की मार से या उनके घोड़ों के खुरों से सैकड़ों स्वयंसेवकों को चोटें आईं। एक दो जगह गोलियाँ भी चलाई गईं। जनता ने अनेकों अनुचित कानूनों को भंग किया। कहीं जंगल-सत्याग्रह, कहीं नमक-सत्याग्रह, कहीं जब्त पुस्तकों की विक्री, कहीं मादक-द्रव्यों और अँग्रेजी माल की दुकानों पर पिकेटिंग करके लोग धड़ाधड़ जेल जा रहे

थे। सरकार भी दमन पर तुल गई थी। विशेष कानून जारी किये गये, राष्ट्रीय-संस्थाओं को अनियमित ठहराया गया। पर दमन आन्दोलन को न रोक सका। भारत का यह सत्याग्रह जिस उत्साह, वीरता और लग्न के साथ हुआ, वह सदा के लिए उसके इतिहास में गौरवपूर्ण स्थान पायेगा। वर्षों का काम दिनों में हो रहा था। स्त्रियों ने तो असंभव को भी संभव बना दिया। शराब की दुकानों पर ताले लग गये। विदेशी कपड़े की गाँठें काँग्रेस की मुहर लग कर गोदामों में डाल दी गईं। इन दिनों ऐसा मालूम होता था मानों काँग्रेस का ही राज्य है। एक लाख के लगभग लोग ज़ेलों में बंद हो गये। सरकार ने अनेक आर्डिनेंस निकाले, पर वे सब प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध हुए। अन्त में सरकार को बाध्य हो कार्यकारिणी के सदस्यों को मुक्त करना पड़ा। गाँधी-इरविन-वार्त्तालाप आरंभ हुआ। कई दिनों के बाद समझौता हो गया। सत्याग्रही जेल से छूट गये। कराची में काँग्रेस का अधिवेशन धूम-धाम से हुआ और काँग्रेस के एकमात्र प्रतिनिधि के रूप में गांधी जी द्वितीय गोलमेज़-काँफ़्रेंस में सम्मिलित हुए। चर्चिल को तो यह देखकर ही अत्यधिक दुःख हुआ था कि एक भारतीय सन्त—आधा नंगा, आधा ढका, सम्राट् के प्रतिनिधि वाइसराय के प्रासाद में प्रवेश करके समान प्रतिनिधि के अधिकारों के साथ बातचीत कर रहा है; पर वह क्या कर सकता था। अब वही सन्त देश का प्रतिनिधि हो गोलमेज़-काँफ़्रेंस में उन सब के साथ समान आसन पर अधिष्ठित हो अधिकार सहित बातचीत करने आ रहा था। फलतः २९ अगस्त को यह सन्त बम्बई से जहाज़ में बैठ गया। जहाज़ में प्रवेश करते समय उस भविष्य-द्रष्टा के मुँह से यह निकला—'मुझे रीते हाथ लौटने के लक्षण दीख रहे हैं।' महात्मा के वचन अन्त में सत्य ही निकले।

ये १२ सितम्बर को लंदन पहुँचे और ५ दिसम्बर तक रहे। वहाँ इनका भारी स्वागत हुआ।

इंग्लैंड में उनका खूब स्वागत हुआ। उनको मिलने वाले श्रमिकों, पत्रकारों, मनीषियों एवं जनता की भीड़ लगी रहती। इन्होंने वहाँ अनेक भाषण भी दिये। विद्वानों, कलाकारों एवं नेताओं से भी भेंट हुई। गांधी जी वहाँ इतने व्यस्त रहने लगे कि कई बार तो दो घंटे भी सोना न मिल सकता था। महात्मा जी को वहाँ लोगों ने इतना भी अवकाश न दिया कि वे कॉन्फ्रेंस के लिए अपना भाषण भी तैयार कर लेते। इतने पर भी कॉन्फ्रेंस में दिया गया उनका भाषण सर्वश्रेष्ठ वक्तृता थी, जिसमें विषय एवं परिस्थिति के स्पष्टीकरण की तीव्र उत्कण्ठा प्रकट होती थी। प्रयत्न-प्रसूत न होते भी इनका भाषण अत्यन्त प्रभावशाली था। उन्हें कॉन्फ्रेंस की गति-विधि और रंग-ढंग से निराशा हुई। उनकी इस यात्रा की सर्वश्रेष्ठ विशेषता यह थी कि जिस अर्धनग्न भारतीय सन्त को वाइसराय भवन में वाइसराय से मिलते समय चर्चिल का मन व्यथित हुआ था, उसे उसी वेश में सम्मान और समानता के साथ ब्रिटेन के सम्राट् से भी भेंट करते चर्चिल ने खुली आँखों से देखा। भगवान् जाने, उस समय उसके दिल पर कितने साँप लोट रहे होंगे और उन्हें कितनी व्यथा सहन करनी पड़ी होगी। अस्तु, गांधी जी खाली हाथ भारत लौटे, परन्तु अपना तथा भारत का मस्तक ऊँचा रखा। आकर उन्होंने युक्तप्रान्त में किसानों का सत्याग्रह होता पाया। इधर गांधी जी बम्बई पहुँचे उधर पं० जवाहरलाल को सरकार ने इलाहाबाद की सीमा से बाहर न जाने का नोटिस दे दिया और तसद्दुक शेरवानी जी को गिरफ्तार कर लिया, जिससे जनता में उत्तेजना फैल गई। स्पष्ट था कि सरकार दमन पर उतारू है। युक्तप्रान्त, बंगाल और उत्तर-पश्चिमी

सीमाप्रान्त में कर न देने का आन्दोलन जारी था। वाइसराय ने महात्मा जी से मिलने से इन्कार करा दिया। वाध्य होकर काँग्रेस को पुनः सत्याग्रह कर देना पड़ा। इस समय सरकार की दमन-नीति में पहले से भी अधिक कड़ाई आ गई। काँग्रेस ही नहीं, अन्य सभी संस्थाएँ, जिनसे किसी प्रकार की प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष सहायता काँग्रेस को मिलती थी, अनियमित ठहरा दी गईं। अनेक संस्थाओं पर सरकार ने कब्ज़ा भी कर लिया। जिन लोगों के मकानों में सत्याग्रही किरायेदार होकर रह रहे थे, उन्हें भी जेल भेज दिया गया। हड़ताल करने पर कितने ही दुकानदारों पर जुर्माने किये गये और समाचार-पत्रों में सत्याग्रह के समाचार तक छापना जुर्म बना दिया गया। सुव्यवस्था के शासन की जगह भय और आतंक का शासन हो रहा था। यह काँग्रेस के संगठन और जनता पर उसके अधिकार का द्योतक था कि ऐसे घोर दमन के युग में भी आन्दोलन उसी गति से चलता रहा। यह दशा डेढ़ वर्ष रही और लगभग साठ हज़ार भारतीय जेलों में बंद कर दिये गये। सभी नेता जेलों में बंद थे। उधर अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक अवस्था के विकृत हो जाने पर भारतीय व्यापार की दशा गिर रही थी, किसानों की अवस्था दुर्बल हो रही थी और उत्तेजना में शिथिलता आ रही थी, जिसका फल यह हुआ कि आन्दोलन भी ढीला पड़ने लगा। ठीक भी था इतने लंबे युद्ध में निरन्तर समान उत्साह की आशा हो भी कैसे सकती थी ? समाचार-दमन के कारण ठीक-ठीक खबरें भी लोगों को न मिल सकती थीं, नेतृत्व का भी अभाव-सा था, जनता एक प्रकार से अंधकार में थी। यद्यपि काँग्रेस का आन्दोलन बंद नहीं हुआ, तो भी उसका रूप बड़ा विकृत एवं गुप्त हो गया। इधर जेल में यह सूचना पाकर कि सरकार शीघ्र ही जाति-गत प्रतिनिधित्व के बारे

में निर्णय करने वाली है, गांधीजी ने ११ मार्च को भारत-सचिव सर सेम्युअल होर को एक पत्र लिखा जिसमें अस्पृश्यों के बारे में विशेष चिन्ता प्रकट करते हुए उन्होंने यह सूचना दी कि यदि सरकार अपने निर्णय में इन 'अस्पृश्य' जातियों के लिए पृथक् प्रतिनिधित्व की व्यवस्था करेगी तो मैं अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार आमरण उपवास आरंभ करूँगा। १७ अगस्त १६३२ को प्रधान-मन्त्री रेम्जे मेक्डानल्ड ने पृथक् प्रतिनिधित्व की घोषणा कर दी। गांधी जी ने उन्हें भी पत्र द्वारा सूचित कर दिया कि वे आजीवन उपवास द्वारा उनकी इस घोषणा का विरोध करेंगे और यह उपवास २० सितम्बर को मध्याह्न से आरंभ होगा। प्रधान-मन्त्री ने गोलमोल उत्तर दिया और निर्णय के पक्ष का समर्थन किया। फलतः २० सितम्बर को दिन के १२ बजे यह दुःखद उपवास आरंभ हो गया। देश में चिन्ता की लहर फैल गई। जेलों में नेता लोग व्याकुल हो उठे। देश में सर्वत्र हलचल मच गई। अनेक प्रतिनिधि-मंडलों ने गांधी जी से जेल में मिलने की अनुज्ञा माँगी। सरकार ने उन्हें मिलने की सब बाधाओं को दूर कर दिया। जो चाहे गांधी जी से मिल सकता था। मित्र और शुभचिन्तकों ने उपवास को स्थगित करने के अनुरोध किये पर गांधी जी ऐसी प्रेरणाओं को भगवत्प्रेरणा समझते थे, यह उनकी अन्तरात्मा का सन्देश था, ईश्वर का आदेश था। जब तक हिन्दू जाति में यह कुप्रथा विद्यमान है—उसका उद्धार असंभव है। नेताओं को इस उपवास में से गांधी जी के सुरक्षित निकल आने की संभावना न रही। हिन्दू नेता पूना में इस समस्या को सुलझाने के लिए एकत्र हुए। अस्पृश्यों के प्रतिनिधियों के रूप में डा० अम्बेदकर और डा० सोलंकी भी वहीं आ गये थे। अम्बेदकर का हृदय हिन्दुओं के लिए असीम घृणा से भरा पड़ा था।

उपवास भंग कराने का केवल एक उपाय था कि हिन्दू और हरिजन-नेताओं में परस्पर समझौता हो जाय; क्योंकि सरकारी घोषणा में ऐसे समझौते के हो जाने पर अस्पृश्य-प्रतिनिधित्व स्वतः समाप्त हो जाता था। अतएव सभी के प्रयत्नों का एकमात्र केन्द्र-बिन्दु यह समझौता हो गया। नेताओं को बहुत दौड़-धूप करनी पड़ी। अन्त में प्रयत्न सफल हुए और हिन्दुओं और अछूतों के नेताओं में समझौता हो गया। इसके अनुसार प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं में सारे भारत से कुल १४८ सदस्यों के चुनाव का अधिकार अस्पृश्य जातियों को दिया गया और संयुक्त निर्वाचन की शर्त रखी गई। इस समझौते की अन्तर्भावना गांधी जी की माँग के अनुकूल होने पर उनसे यह स्वीकार करा लिया गया और २६ सितम्बर को सरकार ने भी इसे स्वीकार कर लिया। यह समझौता 'यरवदा-पैक्ट' के नाम से प्रसिद्ध है। इसकी सूचना गांधी जी को ४ बजे पहुँची। इस समय गुरुदेव महाकवि रवीन्द्र भी वहीं पहुँच गये थे। उनके तथा अन्य मित्रों के समक्ष २६ जनवरी को सवा पाँच बजे गांधी जी ने उपवास खोला। इस प्रकार उस भयानक ऐतिहासिक उपवास की इतिश्री हुई। इधर सरकार से गांधी जी को जेल से ही अस्पृश्यता-निवारण-आन्दोलन करने की यह छूट मिल गई कि वे जेल में रहते हुए तत्संबंधी काम कर सकते हैं। फलतः कुछ ही दिनों में श्री घनश्यामदास बिड़ला की अध्यक्षता में अस्पृश्यता-निवारण-संघ की स्थापना हुई, जिसका प्रधान-कार्यालय दिल्ली में रखा गया। सभी प्रान्तों में प्रान्तीय एवं जिला-संघ खोले गये। गांधी जी जेल के भीतर से इसका नेतृत्व करने लगे। परिणामस्वरूप सैकड़ों मन्दिर और कुएँ हरिजनों के लिए खुल गये। उनकी गंदी बस्तियों के लिए सुधार-योजनाएँ बनाई गईं, पाठशालाएँ खोली

गई और अनेक असुविधाएँ दूर कर दी गई। जो काम युगों में न हो सका, वह कुछ मास में ही हो गया।

परन्तु गांधी जी ऊपरी सजधज से सन्तोष पाने वाले व्यक्ति न थे। वे 'करनी और कथनी' में अभेद के पक्षपाती थे। उन्होंने अनुभव किया कि इस अस्पृश्यता-संघ के कुछ कार्य-कर्त्ता अन्तर्मन और शुद्ध मनोवृत्ति से अस्पृश्यता में विश्वास नहीं कर पाये और यह कार्य करते हुए भी उनकी भावनाएँ परिपक्व नहीं हैं। यह त्रुटि उन्हें अपनी त्रुटि अनुभव हुई। अतः उन्होंने पुनः ८ मई १९३३ को २१ दिन का बिना शर्त के 'आत्म-विकास' के लिए उपवास आरंभ कर दिया। उनका स्वास्थ्य पहले ही बिगड़ चुका था। अतः वे २१ दिन का उपवास पूरा कर लेंगे, इसकी संभावना सरकार को बिलकुल न थी। इस विचार से कि कहीं जेल में ही उनका अवसान न हो जाय, सरकार ने उन्हें मुक्त कर दिया। छूट कर भी पूना में उपवास जारी रखा और भगवान् की दया से वे इस तपस्या की अग्नि में से चमकते हुए स्वर्ण के समान बाहर निकले। उन्हें छोड़ देने के उपलक्ष्य में मैत्री-भाव प्रदर्शित करने की दृष्टि से गांधी जी ने उपवास के दिनों में छः सप्ताह के लिए सत्याग्रह स्थगित करवा दिया और सरकार से भी सम्मानपूर्ण समझौते के लिए अनुरोध किया। सरकार तो न मानी, पर सत्याग्रह गांधी जी की आज्ञानुसार पहले छः सप्ताह और पुनः और छः सप्ताह के लिए स्थगित रहा। फिर १४ जुलाई की एक गुप्त बैठक में हुए निर्णय के अनुसार कांग्रेस के स्थानापन्न अध्यक्ष श्री अणे ने एक वक्तव्य द्वारा सत्याग्रह स्थगित कर दिया। सब कांग्रेस-संस्थाएँ भंग कर दीं और अपने-अपने उत्तरदायित्व पर व्यक्तिगत सत्याग्रह जारी रखने का आदेश दे दिया।

तदनुसार गांधी जी ने भी अपने प्राण-प्रिय सत्याग्रह आश्रम को भंग करने की घोषणा कर दी और सरकार को सूचित करते हुए यह भी लिखा कि वे और उनके ३४ आश्रमवासी १ अगस्त को किसानों की स्थिति का निरीक्षण करने और उन्हें आवश्यकता-नुसार सम्मति देने की दृष्टि से गुजरात के 'रास' गाँव को प्रस्थान कर देंगे। ३१ जुलाई की रात को ये सब गिरफ्तार किये गये और जेल भेजे जाकर पुनः ४ अगस्त को छोड़ दिये गये। उन्हें पूना-नगर की सीमा में ही रहने और बाहर न जाने का भी आदेश दिया गया। वे पुनः आज्ञा की अवज्ञा करने पर आधा घंटा बाद पकड़ लिये गये और एक वर्ष के लिए फिर यरवदा-जेल में भेज दिये गये। इस बार उन्हें हरिजन-आन्दोलन करने की सुविधाएँ नहीं दी गई अतः उन्होंने १६ अगस्त से पुनः आमरण उपवास आरंभ कर दिया। स्वास्थ्य विगड़ने लगा और २० अगस्त को बुरी दशा में उन्हें हस्पताल लेजाया गया तथा २३ अगस्त को बिना शर्त के ही जेल से मुक्त कर दिया गया। वे अपने आपको एक वर्ष के लिए कैदी ही समझते रहे अतः उन्होंने ३ अगस्त १६३४ तक कानून-अवज्ञा-आन्दोलन न करने की घोषणा की। वास्तव में इस समय से लेकर १६३६ तक महात्मा जी पूर्णरूपेण शिक्षा तथा जनहितकारी संस्थाओं एवं अस्पृश्यता-निवारण-संघ के कार्यों में ही लगे रहे। ७ नवम्बर १६३३ को गांधी जी ने हरिजन-उद्धार के हित दस मास के लिए भारत-भ्रमण के हेतु प्रस्थान कर दिया। बिना विश्राम व अवकाश लिये वे भारत के प्रत्येक प्रान्त में घूमे और खूब प्रचार किया। १५ जनवरी १६३४ को बिहार-प्रान्त में विनाशकारी भूचाल की दुर्घटना हो गई। वे हरिजन-कार्य छोड़ कर बिहार के पीड़ितों की सेवा के लिए मार्च मास में वहाँ पहुँच गये और नंगे पाँव गाँव-गाँव दुखियों को सान्त्वना देते हुए भ्रमण करने लगे। इस प्रकार उन्हें

शिक्षा और उपदेश देकर ढाढ़स बँधाते रहे।

इस प्रकार गांधी जी ने सार्वजनिक हित को इन दिनों अपना लक्ष्य बनाकर भ्रमण जारी रखा। इस कार्य के अतिरिक्त १६३२ के बाद किसी अन्य ओर ध्यान नहीं दिया। उन्होंने एक प्रकार से तपस्वियों जैसी लगन से काम करना आरंभ कर दिया और जनता के नैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक उद्धार के लिए पूर्णतया अपने आपको अर्पित कर दिया। इस प्रकार भ्रमण करते हुए और प्रचार करते हुए उन्होंने कई सार्वजनिक कार्य किये और संस्थाएँ खोलीं। २६ अक्तूबर १६३४ को 'अखिलभारतीय ग्रामोद्योग संघ' की स्थापना की जिसके वे संरक्षक बनाये गये और उनके कई लखपति स्नेही और मित्र इस संस्था के सहायक हुए। यह संस्था अब तक भी जीवित है। इस प्रकार उन्होंने किसानों, मजदूरों और ग्रामनिवासियों को अपने पाँओं पर खड़े होने के योग्य बनने की प्रेरणा दी तथा अनेक विधियों से वे जनता को स्वतन्त्रता का अर्थ समझाने लगे। अनुशासन, सदाचरण, सत्य-भाषण, नियमित आचार, सादा जीवन, अहिंसा-वृत्ति, स्पृश्य-अस्पृश्य-भेद-निवारण, प्रीति-भाव, स्वावलम्बन, हिन्दू-मुस्लिम-एकता, कर्तव्य-पालन, सुगृहस्थ-जीवन इत्यादि जीवन-संबंधी असंख्य विषयों पर जनता को शिक्षित करने का वे प्रयत्न करते रहे; यहाँ तक कि आर्थिक और व्यावसायिक समस्याओं पर भी सारगर्भित भाषण देकर समुचित प्रकाश डालते रहते थे। दोनों पत्रों में ऐसी ही जीवन-संबंधी असंख्य समस्याओं पर सारपूर्ण लेख लिखना उनका नियमित कार्य-क्रम था।

सन् १६३३ से १६३६ तक के छः वर्ष विशेष रूप से उनके तपस्या और प्रचार के वर्ष थे। वैसे तो उनका समस्त जीवन ही जनता की सेवा और तपस्या में बीता था।

सन् १९३३ के बाद यद्यपि गांधी जी ने काँग्रेस से मोक्ष प्राप्त कर लिया था, तदपि काँग्रेस के वे सदा प्राण रहे और उनके महत्व को कोई भी न छीन सका। जनता पर और काँग्रेस के अनेक नेताओं पर उनका डिक्टेटर के समान प्रभाव बना रहा; काँग्रेस का कोई कार्य-क्रम ठीक नहीं माना जाता था, जब तक उस पर महात्मा जी की स्वीकृति की मुहर न लग जाय। काँग्रेस के लिए महात्मा जी का आशीर्वाद सदा अपेक्षित रहा। १९३५ के एक्ट ऑफ इंडिया के अधीन १९३७ के चुनावों में महात्मा जी की स्वीकृति से ही काँग्रेस ने चुनाव लड़े। भारत के ग्यारह प्रान्तों में से छः प्रान्तों में तो काँग्रेस का स्पष्ट बहुमत था, आसाम, बंगाल और उत्तर-पश्चिमी प्रान्त में उसका दल औरों से बड़ा रहा और सिन्ध तथा पंजाब में अल्प-संख्यक मतों से वह हारी। चुनावों से काँग्रेस का महत्व स्पष्ट हो गया। काँग्रेस ने सत्ता ग्रहण करना भी स्वीकार कर लिया और ९ प्रान्तों में काँग्रेस-सरकार बना दी गई। गांधी जी काँग्रेस से पृथक् थे ही पर फिर भी उन्होंने काँग्रेस को शासन-सत्ता एवं पद-ग्रहण के मद में आकर भ्रष्ट होने से बचने के लिए चेतावनी दी।

द्वितीय महायुद्ध की भयंकर घटाएँ योरुप के आकाश पर छा रही थीं। हर हिटलर भौतिक और वैज्ञानिक शक्ति का आश्चर्य-जनक संग्रह करता जा रहा था। उसका आतंक दिन-प्रति-दिन बढ़ता ही जा रहा था। अपने देश में वह सर्व-प्रभुत्व-सम्पन्न हो चुका था और उसने यहूदियों को जर्मनी से सामूहिक रूप में निर्वासित कर दिया था। मानना तो किसने था, पर अपनी ओर से गांधी जी ने यहूदियों को भी शान्तिपूर्ण सत्याग्रह करने की ही सम्मति दी थी। उधर उन्होंने नात्सी-कार्य-पद्धति की भी निर्भीक रूप से भर्त्सना की। उधर २४ अगस्त को स्टालिन-

हिटलर-समझौता भी परिपक्व हो गया। गाँधी जी के पास विदेशों से तार आये—'संसार आपके नेतृत्व की प्रतीक्षा में है। कृपया हस्तक्षेप कीजिए' इत्यादि। परन्तु पर्याप्त विलंब हो चुका था। १ सितम्बर १६३६ को नात्सी-सेना ने पोलैंड पर आक्रमण कर दिया। दो दिन पश्चात् ही ब्रिटिश सरकार ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। उसी दिन फ्राँस ने भी इंग्लैंड का अनुसरण किया। संसार अपनी सम्पूर्ण भौतिक शक्ति से विनाश की ओर अग्रसर हो गया। मानव दानव बन गया, पर गांधी जी विचलित न हुए। वे भारत एवं संसार को मानवता अपनाने का अनुरोध करते रहे। अँग्रेजी सरकार ने भारतीय नेताओं और जनता की सम्मति लिये बिना ही भारत को युद्ध में घसीट लिया, भारत की ओर से भी युद्ध-घोषणा कर दी गई। भारत को यह बुरा लगा, सर्वत्र रोष प्रदर्शित किया जाने लगा। घोषणा के दूसरे दिन वाइसराय ने गांधी जी को शिमला बुलाया। गांधी जी रेल में सवार हुए। जनता ने 'हम कोई समझौता नहीं चाहते' के नारे लगाये। महात्मा जी मौन-दिवस के कारण केवल मुस्करा दिये। वाइसराय ने गांधी जी के साथ तत्कालीन परिस्थिति पर परामर्श किया। गांधी जी ने लोगों को बतलाया कि वे ब्रिटिश-सरकार के मार्ग में बाधा नहीं डालना चाहते। वे इंगलैंड और मित्र-देशों को नैतिक सहायता भी देंगे।···इससे आगे उनकी गति नहीं; वे युद्ध-संबंधी कार्यक्रम में कोई भाग लेने को तैयार नहीं थे। परन्तु उधर काँग्रेस ने कुछ शर्तें उपस्थित कीं, जिनके स्वीकृत होने पर इस शर्त पर युद्ध-सहायता में सक्रिय भाग लेने को तैयार थी। गांधी जी किसी भी शर्त के पक्ष में न थे। पहली बार गांधी जी और काँग्रेस में जम कर संघर्ष हुआ और उन्हें अपनी बात मनवाने में विफलता मिली। उनकी इच्छा के विरुद्ध काँग्रेस ने वक्तव्य निकाल दिया, जिसमें नात्सी-आक्रमण की

तो निन्दा की गई थी, परन्तु साथ ही प्रजातन्त्र-सरकारों को भी साम्राज्यवाद से मुक्त घोषित नहीं किया गया था। "स्वतन्त्र प्रजातन्त्र-सत्ता-सम्पन्न भारत अन्य स्वतन्त्र-सरकारों के साथ सहर्ष सहयोग देगा......" घोषित किया गया। गांधी जी ने विरोध तो किया, पर शान्ति के साथ अन्त में सहमत भी हो गये। ब्रिटिश-सरकार के प्रधान-मन्त्री चर्चिल थे। वे इस बात को कब स्वीकार करने वाले थे। सरकार ने कानून द्वारा युद्ध-कार्यों के विरुद्ध प्रचार करना जुर्म ठहरा दिया। काँग्रेस सत्ता छोड़ गांधी जी की शरण में पुनः आ गई। युद्ध-कार्यों में बाधा न पड़ने देने के विचार से गांधी जी ने सामूहिक सत्याग्रह के स्थान में अपने चुने हुए व्यक्तियों से व्यक्तिगत सत्याग्रह करने का मार्ग अपनाया। प्रचार बंद करने वाले कानून के विरुद्ध उपर्युक्त-पद्धति से सत्याग्रह आरंभ हो गया। सर्व-प्रथम विनोबा भावे ने युद्ध-विरोधी प्रचार का श्रीगणेश किया और पकड़े गये। इसके बाद गांधी जी ने पं० जवाहरलाल को आदेश दिया। वे भी गिरफ़्तार हुए। तदनन्तर सरदार पटेल की बारी आई। इतने में प्रान्तीय काँग्रेस-संस्थाओं से कर्मठ सत्याग्रहियों की सूचियाँ आने लगीं। वे सब बारी बारी जेल गये। इस प्रकार २३२२३ व्यक्ति जेलों में पहुँच गये। व्यक्तिगत सत्याग्रह चलता रहा। उधर युद्ध का रूप भी भयंकर होता जा रहा था। इधर जापान, उधर जर्मनी और इटली विजय-पर-विजय पाते जा रहे थे।

दिसम्बर १९४१ को सरकार ने काँग्रेस की कार्यकारिणी के सदस्यों को जेल से छोड़ दिया। काँग्रेस फिर भी सौदा करने की मनोवृत्ति पर अड़ी थी। युद्ध भारत के द्वार पर आ चुका था। गांधी जी इस मनोवृत्ति से असन्तुष्ट थे, अतः पुनः काँग्रेस से पृथक् हो गये। उधर अमरीका ने भारत का पक्ष लिया, पर चर्चिल टस से मस न हुए। उसने सर क्रिप्स को एक प्रस्ताव देकर भारत

भेजा। क्रिप्स समाजवादी लेखक थे और मजदूर-दलीय पार्लियामेंट के सदस्य। २२ मार्च, १९४२ को ये नई-दिल्ली पहुँचे। आते ही सरकारी अधिकारियों से बातचीत करके उन्होंने भारतीय प्रतिनिधियों से भेंट करना आरंभ कर दिया। महात्मा जी को निमन्त्रण गया। वे जाना तो नहीं चाहते थे पर शायद कुछ अच्छा फल निकल आवे, इस संभावना से वे २७ मार्च को दिल्ली में २-१५ बजे सर क्रिप्स से मिले और ४-२५ तक उनके पास ठहरे। क्रिप्स ने अपनी सरकार की अमुद्रित योजना महात्मा जी को दिखलाई। उसे थोड़ी देर देखकर महात्मा जी ने उन्हें कहा कि यदि तुम्हारी सम्पूर्ण योजना यह है तो आपने यहाँ पधारने का कष्ट क्यों उठाया। मैं आपको सम्मति दूँगा कि दूसरे हवाई जहाज से ही इंग्लैंड चले जावें। क्रिप्स ने 'विचार करूँगा' कहा, पर गया नहीं। महात्मा जी अपने सेवा-ग्राम लौट गये। इसके पश्चात् उन्होंने क्रिप्स से कोई सम्पर्क न रखा। भारत की किसी भी संस्था ने उस योजना को स्वीकार न किया। क्रिप्स असफल हो १२ अप्रैल को लौट गये। क्रिप्स-योजना के अनुसार भारत के हिन्दू-भारत, मुस्लिम-भारत, सिक्ख-भारत और रियासती भारत आदि अनेक टुकड़े हो जाते, पर गांधी जी भारत-विभाजन को पाप समझते थे। उनका लक्ष्य 'अखंड-भारत' था। परन्तु काँग्रेस के निर्णय में गांधी जी का हाथ बिल्कुल न था। उधर जापान बर्मा पर विजय पाकर भारत के द्वार पर आ लपका था। भारत में तनातनी बढ़ रही थी। विपत्ति सामने खड़ी थी। परन्तु भारत न कुछ कह सकता था और न कर सकता था। गांधी जी ने जनता को परामर्श दिया कि यदि जापानी भारत में आगये तो उनके साथ पूर्ण संबंध-विच्छेद और शान्तिपूर्ण असहयोग से प्रतिरोध किया जाय। 'हम जापानियों के आगे

नत-मस्तक होने की अपेक्षा मृत्यु को अच्छा समझेंगे।' उधर भारत के सभी नेताओं ने सरकार पर उनकी योजना को स्वीकार कराने के लिए ज़ोर डाला। नेहरू जी तथा अन्य नेताओं को प्रेसिडेण्ट रूज़वेल्ट से हस्तक्षेप की आशा थी, परन्तु सब व्यर्थ सिद्ध हुई। तत्कालीन परिस्थितियों का एक ही हल था कि भारत को स्वतन्त्र कर दिया जाय, और यदि सरकार न माने तो पुनः असहयोग-आन्दोलन चलाया जाय! 'क्या जनता इसके लिए तैयार है ?' कुछ नेताओं को इसमें सन्देह था और कुछ को भय था कि जनता अहिंसा पर उतर आयगी। गांधी जी को जनता में विश्वास था। 'राष्ट्र को बिना-सोचे-समझे ही अपनी आत्म-निर्भरता का प्रदर्शन करना चाहिए'—गांधी जी की ऐसी इच्छा थी। अन्त में १४ जुलाई को काँग्रेस की कार्यकारिणी-समिति ने वर्धा में प्रस्ताव स्वीकार किया कि भारत में अंग्रेज़ी-शासन तुरन्त समाप्त हो; विदेशी प्रभुता उत्तमोत्तम होते हुए भी बुराई है और उत्तरोत्तर हानिकारक। समिति का निश्चय है कि आक्रमण का प्रतिरोध किया जाना आवश्यक है......। ब्रिटिश के विरुद्ध फैलती हुई वर्त्तमान दुर्भावना को काँग्रेस सद्भावना में बदल देगी और भारत को संयुक्त कार्यवाही में (अंग्रेजों के साथ) समान भागीदार बना देगी।......यह तभी संभव है जब भारत स्वतन्त्रता के प्रकाश को अनुभव करे ।......काँग्रेस मित्र-शक्तियों को परेशानी में डालना नहीं चाहती और भारत में विदेशी-सेनाओं को रखने के पक्ष का समर्थन करती है।" प्रस्ताव के अन्त में कहा गया था कि यदि यह योजना सरकार को अमान्य रहेगी तो काँग्रेस असहयोग-आन्दोलन आरंभ कर देने को बाध्य होगी, जो कि महात्मा गांधी के अधिकारपूर्ण नेतृत्व में ही होगी। प्रस्ताव की स्वीकृति के लिए अगस्त मास में अखिलभारतीय काँग्रेस की

बैठक करने का निश्चय किया गया। अखिलभारतीय काँग्रेस कमेटी के अधिवेशन में ७ और ८ अगस्त के विचार-विमर्श के बाद वर्धा-प्रस्ताव कुछ परिवर्तन के साथ स्वीकार कर लिया गया। आधी रात तक गांधी जी ने काँग्रेस में भाषण दिया और तदनन्तर सब अपने-अपने स्थानों पर सो गये। यह प्रस्ताव 'Quit India—'भारत छोड़ो' के नाम से प्रसिद्ध है। अभी प्रतिनिधिगण सोये ही थे कि ब्रह्म-मुहूर्त्त में पुलिस ने उन्हें जगाया और गांधी जी, नेहरू जी आदि बीसियों नेताओं को गिरफ़्तार कर जेल भेज दिया गया। महात्मा जी को यरवदा में आग़ाख़ान महल में बंद कर दिया गया। दूसरे दिन माता कस्तूरबा को भी वहीं भेज दिया गया। अँग्रेज़ी-सरकार ने बातचीत करने की अपेक्षा दमन करने की नीति को ग्रहण किया। गांधी जी के जेल में बंद होते ही भारत में हिंसात्मक कार्यवाही आरंभ हो गई। सरकारी भवन तथा पुलिसथाने जलाये जाने लगे, तार काटे जाने लगे, रेल की पटरियाँ तोड़ी जाने लगीं, अँग्रेज़-अधिकारी पीटे और मारे भी जाने लगे। विनाशकारी दल उच्छृंखल हो दौड़-धूप में लग गये। समाजवादी दल ने ज़बरदस्त गुप्त आंदोलन आरंभ कर दिया। श्री जयप्रकाश नारायण, श्रीमती अरुणा आसफ़अली और अनेक अन्य नेता आन्दोलन में उत्तेजना पैदा करने के लिए गुप्त रूप से मैदान में उतर आये। लोगों ने उनका साथ दिया और छिपने के लिए स्थान। क्रान्ति का बोलबाला था, अँग्रेज़ी राज्य की धूल उड़ने लगी। अनेक गाँवों, नगरों एवं ज़िलों में समानान्तर सरकारें बन गईं। महाराष्ट्र में तो १९४४ तक अँग्रेज़ी-शासन का नाम न था। महात्मा जी के प्रार्थना करने पर भी उन्हें पठनार्थ समाचार-पत्र मिलने बंद कर दिये गये। सरकार ने सारा दोष गांधी जी एवं काँग्रेस के मत्थे मढ़ना चाहा, जिसके

फलस्वरूप जेल से ही महात्मा जी और वाइसराय लिनलिथगो में परस्पर पत्र-व्यवहार हुआ और महात्मा जी ने इस दोषारोपण का उपयुक्त उत्तर उन्हें दिया—"वाइसराय की सरकार ने इस दोषारोपण से निर्दोष लोगों के साथ उन्हें बंद करके अन्याय किया है। मैंने शरीर का बलिदान करने के लिए उपवास का निर्णय कर लिया है। यदि सरकार मुझे मेरी ग़लती का विश्वास दिला दे तो मैं पर्याप्त सुधार कर लूँगा।" उपवासारंभ के दो दिन पूर्व सरकार ने उपवास की अवधि के लिए गांधी जी को छोड़ देना चाहा पर गांधी जी ने अस्वीकार कर दिया। इस पर सरकार ने इसके परिणाम का उन्हें ही उत्तरदायी ठहराया। उपवास १० फ़रवरी १९४२ को आरंभ हुआ। गांधी जी की दशा बिगड़ती गई। उधर सातवें दिन ऐग्जिक्यूटिव कौंसिल के तीन भारतीय सदस्यों ने विरोध प्रकट करते हुए त्याग-पत्र दे दिये। असेम्बली में उपवास पर खूब चर्चा हुई, भारतीय सदस्यों ने गांधी जी को छोड़ देने का आग्रह किया, पर वाइसराय न माने। तेरहवें दिन उनकी नाड़ी बंद हो गई और शरीर ठंडा पड़ गया। उन्हें मौसुम्मी का रस मिला कर फलों का रस दिया गया। वे अच्छे होते गये। २ मार्च को उन्होंने फलों के रस का एक गिलास २० मिनटों में धीरे-धीरे पिया। उनका स्वास्थ्य अच्छा होने लगा। वाइसराय लिनलिथगो ने उनके साथ कठोर व्यवहार किया। किसी को भी उनसे मिलने की अनुज्ञा न दी, यहाँ तक कि प्रेज़िडेंट रूज़वैल्ट के निजी संदेशवाहक विलियम फ़िलिप्स की भी प्रार्थना अस्वीकार कर दी। जब लार्ड लिनलिथगो २७ सितम्बर १९४३ को वापस इंग्लैंड जा रहे थे, महात्मा जी ने विदाई के पत्र में लिखा कि जितनी व्यथा मुझे आपसे मिली, उतनी किसी भी अन्य उच्चाधिकारी से नहीं मिली थी......

मैं आशा करता हूँ कि भगवान् एक दिन तुम्हारे हृदय में यह अनुभूति पैदा करेगा कि एक राष्ट्र के प्रतिनिधि होते हुए भी तुमने इतनी भारी भूल की है।.........."

लॉर्ड वेवल ने भारत आकर १४ जून को नई योजना की घोषणा कर दी। इस योजना पर विचार-विमर्श के लिए भारत के सभी राजनीतिक दलों के प्रमुख नेताओं को वाइसराय ने निमन्त्रित किया और तत्कारण काँग्रेस के अध्यक्ष मौलाना आज़ाद, पं० जवाहरलाल तथा अन्य काँग्रेस-नेताओं को जेल से मुक्त भी कर दिया। काँग्रेस-नेताओं ने अपने दीर्घ कारावास से जनित कटुता को न दिखलाते हुए इस निमन्त्रण को स्वीकार कर लिया। मुस्लिम-लीग से मुहम्मद अली जिन्ना और लियाक़त अली, सिक्खों में से मास्टर तारासिंह और हरिजनों में से श्री शिवराज प्रतिनिधि के रूप में निमन्त्रित किये गये। गांधी जी किसी दल के प्रतिनिधि न होते हुए भी सम्मिलित किये गये। यद्यपि काँग्रेस भारत की सर्वतोमुखी असाम्प्रदायिक संस्था थी जिसका सारा इतिहास स्वतन्त्रता-युद्ध का इतिहास रहा, तो भी उसने योजना की उस धारा को भी स्वीकार कर लिया जिसके अनुसार मुस्लिम-सदस्यों और हिन्दू-सदस्यों को कौंसिल में समान स्थान दिया गया था। परन्तु जिन्ना के सिवा अन्य सब नेता योजना को स्वीकार करने के लिए सहमत हो गये। काँफ्रेंस विफल हो गई। विफलता का सारा दोष वाइसराय ने श्री जिन्ना पर थोपा। जिन्ना चाहते थे कि समस्त मुस्लिम सदस्यों की नामावली बनाने का एकमात्र अधिकार उसे ही हो; क्योंकि वह अखिल भारतीय मुस्लिम-लीग का प्रधान है। काँग्रेस आरंभ से असाम्प्रदायिक संस्था रही थी, अतः उसके हिन्दू-संस्था के रूप में प्रतिनिधित्व पाने का अर्थ तो उसके समस्त इतिहास के उज्ज्वल स्वरूप को

विकृत करने के समान था। फलतः काँग्रेस असफल हो गई।

इन्हीं दिनों विश्व-युद्ध की समाप्ति हो गई और इंग्लैंड में मजदूर-दल ने अनुदार दल को पराजित कर तुरन्त घोषणा कर दी कि वे भारत को शीघ्रातिशीघ्र स्वराज्य दे देना चाहते हैं तथा इस हेतु लॉर्ड वेवल को इंग्लैंड बुलाया गया। १६ सितम्बर १६४५ को दिल्ली और लन्दन से एक साथ उनके निर्णयों की घोषणा की गई, जिसके अनुसार भारत की केन्द्रीय और प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं के लिए तुरन्त चुनाव करना 'स्वतन्त्रता की पहली सीढ़ी' निश्चित हुई। सभी दलों ने चुनाव लड़ना स्वीकार कर लिया। अमुस्लिम स्थानों में से काँग्रेस ने और मुस्लिम-स्थानों में से मुस्लिम लीग ने विशिष्ट बहुमत प्राप्त किया। संघर्ष बना ही रहा।

दिसम्बर १६४५ को लॉ० वेवल ने भारतीयों से संघर्ष न करने की अपील की। उधर महात्मा जी भी उन दिनों कलकत्ता में ही थे। लॉर्ड वेवल से उनकी एक घंटा बातचीत हुई। उसी दिन बम्बई से श्री जिन्ना ने वक्तव्य निकाला कि हम भारत की समस्या का हल दस मिनट में कर सकते हैं, यदि गांधी जी पाकिस्तान मानने को तैयार हो जायँ और सिन्ध, बलोचिस्तान, बंगाल, आसाम, पंजाब और उत्तर-पश्चिमी प्रान्त के क्षेत्रों को पाकिस्तान-राज्य स्वीकार कर लें। परन्तु गांधी जी न तो कुछ कह सकने की स्थिति में थे और न ही उन्होंने कुछ कहा। उनके मतानुसार भारत-विभाजन एक पाप था।

उधर भारत को दुर्भिक्ष की विपत्ति ने आ घेरा। खाद्य पदार्थों और कपड़े का विशेष अभाव हो गया। बंगाल, आसाम और मद्रास इसके विशेष शिकार हुए। गांधी जी ने धनवानों को 'अनाज और कपड़े को गोदामों में बंद न करने और सट्टा न

खेलने' का अनुरोध किया और 'अधिक अनाज उत्पन्न करो' आन्दोलन आरंभ कर दिया। परन्तु दुःखी और भूखी जनता ने दुकानें लूटना तथा हिंसात्मक कार्यवाही करना आरंभ कर दिया। बम्बई तथा अन्य स्थानों में दंगे हुए। बड़े-बड़े नगरों में गुंडा-गर्दी और अन्य प्रकार के विप्लव आदि होने लगे, आगें लगाई जाने लगीं। उसी समय ब्रिटिश नौ-सेना के भारतीय सैनिकों ने बम्बई बंदर में क्रान्ति कर दी। बड़ी कठिनाई से काँग्रेस नेताओं ने उन्हें रोका। गांधी जी ने १० फ़रवरी १९४६ को लिखा कि इस समय जब कि हम अपने पाँओं पर खड़े होने जा रहे हैं, अनुशासन-हीनता और गुण्डा-गर्दी बंद हो जानी चाहिए और इनके स्थान पर धैर्य, अनुशासन, सहयोग और सद्भावना को हमें अपनाना चाहिये।......मुझे आशा है कि जब भारत को वास्तविक उत्तरदायित्व मिल जायगा और विदेशी सेना का भारी बोझ उसके कन्धों से उतर जायगा तो लोग अपनी प्रकृति में आ जायँगे, आत्म-सम्मान और आत्म-संयम को धारण कर लेंगे। इन्हीं दिनों प्रधान-मन्त्री एटली ने वक्तव्य निकाला कि भारतीय स्वतन्त्रता की शर्तों का निर्णय करने के लिए लार्ड पैथिक लॉरेंस, सर क्रिप्स और वी० अलबर्ट का सरकारी नियोग भारत आ रहा है। यह नियोग २३ मार्च को नई दिल्ली पहुँचा और भारतीय नेताओं से परामर्श करने में तुरन्त संलग्न हो गया। गांधी जी भी दिल्ली आ गये और अछूतों की बस्ती में ठहरे, जहाँ उक्त सरकारी प्रतिनिधि नियम-पूर्वक उनसे भेंट करते रहे। कई सप्ताह के विचार-विमर्श के पश्चात् मिशन ने काँग्रेस और मुस्लिम-लीग को अपने चार-चार प्रतिनिधि शिमला में होने वाली कॉन्फ्रेंस के लिए भेजने को कहा। गांधी जी किसी के प्रतिनिधि न होते हुए भी कॉन्फ्रेंस में निमन्त्रित किये गये

जब दोनों दलों में कोई समझौता न हो सका तो गांधी जी ने नियोग से कोई विशिष्ट योजना उनके सामने रखने की प्रार्थना की । १६ मई १९४६ को नियोग ने भारत में अँग्रेजी-सत्ता की समाप्ति की योजना की घोषणा कर दी। गांधी जी ने नियोग की प्रशंसा की। २६ मई के हरिजन-अंक में गांधी जी ने लिखा—"काँग्रेस और मुस्लिम-लीग में समझौता नहीं हो सकता और न हुआ है। इस समय यदि हम मूर्खता से यह कहें कि यह भेद ब्रिटिश-कृत है तो हमारी महान् भूल होगी। ब्रिटिश सरकार का एकमात्र उद्देश्य अँग्रेजी शासन को भारत में शीघ्रातिशीघ्र समाप्त कर देना है।"

सुदीर्घ सोच-विचार के पश्चात् नियोग ने लम्बे आवेदन में यह कहा कि हम ब्रिटिश सरकार को यह सुझाने में असमर्थ हैं कि जो सत्ता इस समय ब्रिटिश सरकार के हाथों में है उसे दो नितान्त पृथक् प्रभुत्व-सम्पन्न राष्ट्रों को दे दिया जाय। अन्त में उन्होंने प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं के चुनाव का सुझाव दिया, जो राष्ट्रीय-विधान-सभा का चुनाव करें और यह सभा भारतीय विधान निर्माण करे। फलतः १६ मई १९४६ को क्रिप्स, पैथिक लारेंस तथा वेवल ने रेडियो द्वारा भारत को सन्देश दिये। २१ मई को जिन्ना ने पाकिस्तान-निर्माण का आग्रह करते हुए नियोग की आलोचना की। अन्त में मुस्लिम-लीग ने ४ जून को नियोग की योजना को स्वीकार कर लिया। मसूरी में काँग्रेस-कार्यकारिणी समिति इस पर विमर्श करने में संलग्न हुई। कोई निश्चय न हो सका। १६ जून को वाइसराय ने घोषणा कर दी कि चूँकि काँग्रेस और मुस्लिम-लीग में समझौता नहीं हो सका, अतः वे चौदह भारतीयों को अपनी सरकार में नियुक्त कर रहे हैं। अब सम्मिलित होने या न होने का प्रश्न काँग्रेस के समक्ष था। काँग्रेस-नेता रात-दिन

परामर्श में व्यस्त थे। अन्त में कार्यकारिणी ने सरकार की विधान-परिषद् संबंधी योजना को तो स्वीकार कर लिया परन्तु अन्तरिम सरकार वाली वाइसराय की योजना को न माना। जिन्ना काँग्रेस में से एक भी मुस्लिम सदस्य को अन्तरिम सरकार में सम्मिलित करने के प्रश्न पर सहमत न हुए। काँग्रेस जिन्ना के प्रस्ताव से इस कारण सहमत न हो सकती थी कि उन्हें भय था कि यह भविष्य के लिए एक उदाहरण हो जायगा। अन्त में वेवल महोदय ने दोनों दलों से प्रतिनिधियों की सूची माँगी और यह कह दिया कि कोई दल दूसरे दल के प्रतिनिधि की प्रस्तावित नामावली में बाधक नहीं होगा। यह जिन्ना को स्वीकार न था। वाइसराय ने पं० नेहरू को सरकार बनाने की आज्ञा दे दी और मुस्लिम-लीग को पाँच प्रतिनिधि भेजने का आदेश दिया। मुस्लिम-लीग ने असहमत होकर १६ अगस्त का दिन 'सीधी कार्यवाही' के लिए नियत कर दिया। फलस्वरूप कलकत्ता में पाशविक दंगे चार दिन तक होते रहे, जिनमें हजारों व्यक्ति मौत के घाट उतरे, हजारों आहत हुए। नेहरू की अन्तरिम सरकार के एक मुस्लिम सदस्य डा० शफ़ात अहमदखान पर २४ अगस्त को सात बार छुरे मारने की दुर्घटना शिमला में हुई। २ सितम्बर को पं० जवाहरलाल भारत के प्रधान मन्त्री बना दिये गये।

उस दिन गांधी जी दिल्ली की अछूत-बस्ती में थे। उसी दिन उन्होंने जवाहरलाल जी को उनके और उनकी सरकार के कर्त्तव्यों के संबंध में एक पत्र भेजा और सायंकाल की प्रार्थना-सभा में प्रवचन देते हुए कहा कि यदि आपके बेताज बादशाह प्रधान मन्त्री पं० नेहरू तथा उनके सहयोगियों ने अपना कर्त्तव्य-पालन किया तो शीघ्र ही सम्पूर्ण सत्ता आप लोगों के हाथ में आ जायगी। आज का दिन भारत के इतिहास में एक ऐतिहासिक

दिन है। परन्तु जिन्ना ने २ सितम्बर के दिन को शोक-दिवस घोषित कर काले झण्डों से वह दिन मनाने का आदेश दिया। उधर फ़िरोज़खां नून ने मुसलमानों को रूस की ओर देखने का सुझाव दिया। यह सब देख ६ सितम्बर को गांधी जी ने कहा, "हम राजनैतिक गृह-युद्ध के समीप जाते हुए प्रतीत हो रहे हैं।" उधर मुसलमानों ने बम्बई में मार-धाड़ शुरू कर दी। बंगाल और बिहार हिंसात्मक कार्यवाहियों से हिल उठे। पंजाब में भी दंगे आरंभ हो गये। वेवल साहब घबरा कर मुस्लिम लीग के सहयोग के लिए प्रयत्न करने लगे। जिन्ना ने इस आग्रह के कारण चार मुसलमानों और एक गांधी-विरोधी हरिजन को अन्तरिम सरकार में भेज दिया। यह सरकार एक सम्मिलित सरकार न होकर दो विरोधी तत्त्वों की सरकार थी, जिसमें उत्तरदायित्व भी विभाजित ही रहा। उधर हिन्दू-मुस्लिम कलह की आग बढ़ती जा रही थी। महात्मा जी प्रातः सायं इस संबंध में प्रवचन दिया करते, लोगों को समझाते पर कोई न सुनता। आग दिन-प्रति-दिन बढ़ती ही गई। ये दंगे गाँवों में भी पहुँच गये। गांधी जी को अब अधिक चिन्ता हुई, क्योंकि यदि ग्राम इस रोग से पीड़ित हो गये तो विनाश समीप था। गांधी जी ने किसी ऐसे स्थान में जाने का निश्चय किया जहाँ ये दंगे अधिक हो रहे थे। बंगाल में नोआखली और त्रिपुरा ज़िलों में मुसलमानों ने प्रलय मचा दी थी। गांधी जी ने वहीं जाने की ठानी और स्पेशल ट्रेन द्वारा वे कलकत्ता के लिए चल दिये।

२६ अक्तूबर को जैसे-तैसे वे कलकत्ता पहुँचे और तुरन्त गवर्नर तथा मुख्य-मन्त्री (बंगाल) के साथ बातचीत में जुट गये। मुख्य-मन्त्री सुहरावर्दी और गांधी जी ने कलकत्ता में घूमते हुए मृत व्यक्तियों के ढेर और अग्निसात् होते भवनों को देखा। गांधी

जी इस सामूहिक पाशविक संहार को देख कर सन्न रह गये, तो भी उन्हें सुधार की आशा थी। उन्होंने नोआखली में हिन्दू-स्त्रियों पर किये गये अत्याचारों की घोर निन्दा की और कहा कि मैं नोआखली से उस समय तक न लौटूँगा जब तक यह आग शान्त नहीं हो जायगी। यदि आवश्यक हुआ तो मेरे प्राण यहीं जायँगे। इन दृश्यों से महात्मा जी का वात्सल्यपूर्ण हृदय व्यथित और विदीर्ण होता जा रहा था। उन्होंने कहा—"इन दृश्यों को देखने से तो अच्छा यही है कि उनके नेत्र सदा के लिए मुँद जायँ।" नोआखली में न केवल हत्याकाण्ड ही हो रहे थे वरन् हिन्दुओं को धर्म-परिवर्तन के लिए बलात् बाध्य किया जा रहा था। हिन्दू-महिलाओं पर बलात्कार, बाल-बच्चों का संहार एवं निवास-स्थानों और देवस्थानों को अग्निसात् किया जा रहा था। महात्मा जी ने एक प्रार्थना-प्रवचन में कहा कि यह बलात्कार-प्रपीड़ित हिन्दू-महिलाओं का चीत्कार ही है, जिसने नोआखली में मेरा आना अनिवार्य कर दिया। जब तक इस आपत्ति के अन्तिम चिह्न यहाँ विद्यमान रहेंगे, मैं बंगाल छोड़कर अन्यत्र नहीं जाऊँगा। वास्तव में इन अभूतपूर्व सामूहिक अत्याचारों से महात्मा जी का हृदय विह्वल हो रहा था, उनकी अन्तरात्मा विचलित हो गई थी और उन्होंने इससे जनता की रक्षा के लिए अपनी आहुति देने का प्रण कर लिया था। उधर बंगाल की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप बहुसंख्यक हिन्दुओं ने बिहार प्रान्त में 'नोआखली दिवस' घोषित कर २५ अक्तूबर को उत्तेजनात्मक भाषण दे देकर खून का बदला खून से लेने के लिए जनता को उत्तेजित किया। फलतः दूसरे सप्ताह में हिन्दुओं ने वही पाशविक कृत्य बिहार में दोहराये जो बंगाल में हो रहे थे। गोहाटी में यह सूचना पाकर गांधी जी ने बिहारियों के नाम एक लंबा वक्तव्य निकाल कर अल्पाति-अल्प भोजन लेते

हुए आमरण व्रत धारण करने की प्रतिज्ञा ली। नेहरू, पटेल, लियाक़तअली और निश्तर साहब दिल्ली से कलकत्ता भागे। वेवल साहब भी साथ थे। ईद के दिन जिस घोर प्रलय का मुसलमानों की ओर से भय था, उसके लिए जनता को शान्त रहने की सरकारी अपील निकली। नगर और उसके आस पास पुलिस तथा फ़ौज चक्कर लगाने लगी। नेहरू जी और सरदार पटेल ने गांधी जी को आमरण-उपवास से विरत करने का प्रयत्न किया क्योंकि राष्ट्र को उनके नेतृत्व की आवश्यकता थी। कलकत्ता से चारों मन्त्री बिहार पहुँचे। पण्डित जी ने बिहार पर हवाई बमबारी करने की धमकी दी और उन्हें हत्याकाण्ड बंद करने की आज्ञा दी; परन्तु गांधी जी ने प्रेम से समझाया कि यह प्रक्रिया तो अँग्रेज़ी राज्य की प्रक्रिया है। फ़ौज के बल पर दंगों का दमन करने से भारत की स्वतन्त्रता का दमन होगा। अन्त में नेहरू जी ने बिहार प्रान्त में उस समय तक जब तक दंगे बंद नहीं हो जाते, ठहरने का निश्चय किया। कलकत्ता तथा अन्य स्थानों में ईद शान्तिपूर्वक हो गई। बिहार में अब शान्ति थी। परन्तु नोआखली से आतंकित हिन्दू-जाति भाग रही थी। महात्मा जी ने वहाँ ठहरना अपना कर्त्तव्य समझा। वे हिन्दुओं को वीरता सिखाना चाहते थे परन्तु साथ ही वे मुसलमानों को भी उतना ही वीर बनाना चाहते थे। सच्चा वीर हिंसात्मक वृत्ति का अनुगामी नहीं हो सकता। बदला न लेने, भ्रातृत्व का व्यवहार करने एवं हिंसात्मक कर्म न करने की उदारता में ही सच्ची वीरता है। ६ नवम्बर को वे नोआखली में थे। वहाँ कैम्प लगाकर वे पैदल यात्रा करने लगे। महीनों उन्होंने गाँव-गाँव की यात्रा की।

बंगाल सरकार के कुछ मन्त्री भी उनके साथ थे। महात्मा जी ने अपने शिष्यों को गाँव-गाँव में भेज दिया। प्रत्येक गाँव में उनके एक-न-एक विश्वस्त शिष्य का डेरा था। महात्मा जी ने अपने आपको

तथा अपने साथियों को घोर यातनाओं एवं कठोर अनुशासन में रखा। यह उनके लिए तीर्थ-यात्रा थी। एक-एक करके वे ४६ गाँवों में ठहरे। वे नंगे पाँव घूम रहे थे। अनेक स्थानों पर विरोधियों ने इनके मार्ग में शीशों के बारीक टुकड़े, काँटे और मैला तक भी बिछाया। पर वाह रे महात्मा! इसमें उनका दोष न माना! और यही कहा—"वे तो पथ-भ्रष्ट किये गये हैं"।

धीरे-धीरे उनकी स्वाभाविक आकर्षण-शक्ति ने लोगों को उनकी ओर खींच लिया। उन्होंने धीरे-धीरे अपने उद्देश्य में कुछ सफलता के चिह्न देखे। ६ मार्च १९४७ तक वे वहीं रहे और यद्यपि अभी तक वे पूर्ण भ्रातृत्व स्थापित न कर पाये थे तो भी पर्याप्त सीमा तक उन्हें सफलता मिल गई थी। उनकी यह धारणा हो गई कि यदि बाहर से उत्तेजित न किया गया तो ये लोग शान्ति से रह सकेंगे। उनकी नोआखली-यात्रा उनके जीवन की कठोरतम, यातनामय एवं असुविधापूर्ण यात्रा थी, जिसमें उन्हें शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक—सभी प्रकार की तपस्या करनी पड़ी। उन्होंने अपना हृदय खोल कर लोगों के सामने रख दिया। दीन और धर्म के तथ्यों को समझाना, समाज में रहने के साथ-साथ आवश्यक तत्वों को सरलातिसरल रूप में उपस्थित करना और उन्हें जीवन में कार्यान्वित करने के उपायों को बतलाना ही उनका तथा उनके साथियों का उद्देश्य था। दिव्य गांधी इस समय आसुरी वृत्तियों से खुले संघर्ष में जुटे थे। यद्यपि पूर्ण विजय उन्हें न मिल सकी तो भी अस्थायी शान्ति स्थापित करने में उन्हें सफलता अवश्य मिल गई।

गांधी जी व्यक्तिगत रूप से सरकारी योजना को स्वीकार करने के पक्ष में नहीं थे और उन्होंने सदा इसका विरोध किया, परन्तु स्वतन्त्रता के लिए उत्सुक कांग्रेस-संस्था ने उनकी चेतावनी से आँख-कान बंद करके ६ जनवरी १९४७ को प्रस्तावित विधान-

परिषद्-योजना को स्वीकार कर लिया। मौ० आज़ाद, पं० नेहरू तथा अन्य काँग्रेस-नेताओं ने जो परिणय मुस्लिम-लीग के साथ किया, उसका फल उन्होंने खूब चखा। मुस्लिम लीग के साथ मिलकर सरकार बनाने का जो फल काँग्रेस को मिला, उस पर उन्हें सदा के लिए कठोर पश्चात्ताप करना पड़ा। उन्हें यह प्रयोग इतना महँगा पड़ा कि आँकना कठिन है। इसके पश्चात् २० फ़रवरी १६४७ को इंग्लैंड के प्रधान मन्त्री एटली ने कामन्स-सभा में यह वक्तव्य दिया कि जून १६४८ से पूर्व इंग्लैंड भारत को छोड़ देगा। इसी समय लार्ड मॉउँटबेटन को भारत का अन्तिम वाइसराय बनाकर भेजा गया। "इंग्लैंड यह सत्ता किसे अर्पण करेगा ?" यह उलझन-भरी समस्या थी, जिसे उस समय कोई भी स्पष्ट करने में असमर्थ था। स्वयं प्रधान मन्त्री एटली तथा उनकी सरकार भी उलझन में थी। उधर पंजाब प्रान्त प्रलय-क्षेत्र बना हुआ था। सम्पूर्ण प्रान्त में अभूतपूर्व रुधिर-प्रवाह हो रहा था; उसकी पाँचों पवित्र नदियाँ निरीह तटवासी स्त्री-पुरुष एवं बालवर्ग के रुधिर से आरंजित हो प्रवहमान हो रही थीं। पर अभी रंग गहरा न हो पाया था, गहरा करने का प्रयास किया ही जाने वाला था। 'सत्ता को हस्तगत' करने की चरम उत्सुकता में काँग्रेस ने गांधी जी की चेतावनी की ओर उचित ध्यान न दिया। एटली के वक्तव्य का स्वागत कर तुरन्त मुस्लिम-लीग को समझौते के लिए आमन्त्रित कर लिया। इन दिनों महात्मा जी बिहार में शान्ति-स्थापना के प्रयत्नों में संलग्न थे। बंगाल और पंजाब के मुसलमानों के समान बिहारी क्रोध और मोह में फँसे मनुष्यता खो बैठे थे। वहाँ सामान्य-स्थिति का कोई व्यक्ति उन्हें विश्वास न दिला सकता था। गांधी जी वहाँ की हिन्दू जनता को पश्चात्ताप करने और पूर्वावस्था को पुनः स्थापित करने का अनुरोध कर रहे थे। "अपहृत महिलाओं

को लौटा देना चाहिए; लूटी हुई एवं नष्ट कर दी गई सम्पत्ति का हरजाना दे दो; और मुसलमानों को भाई समझो" इत्यादिक अनुरोध गांधी जी कर रहे थे, परन्तु उस समय की उत्तेजनापूर्ण परिस्थिति में वे अपने भक्त हिन्दुओं को भी प्रभावित न कर सके। गांधी जी अनन्त धैर्य के व्यक्ति थे; धीरे-धीरे उन्होंने जनता को सुमति की ओर प्रेरित कर लिया और निर्वासित मुसलमानों के लिए अगणित धन इकट्ठा कर लिया। गांधी जी एक मास विहार प्रान्त में घूमे और अन्त में उन्होंने विहारियों से यह अनुरोध किया कि यदि आपको फिर उत्तेजना के वशीभूत होना पड़े, तो पहले मेरी हत्या करनी होगी। इधर २२ मार्च १९४७ को लार्ड माउँटवेटन भारत पहुँचे। उनके आने के २४ घंटे वाद जिन्ना ने वक्तव्य दिया कि भारत-विभाजन ही एकमात्र उपाय है; अन्यथा भयंकर विनाश होगा। चार दिन के भीतर वाइसराय ने गांधी जी और जिन्ना को बुलाया। महात्मा जी विहार से दिल्ली आये। ३१ मार्च को सवा दो घंटे वाइसराय से विचार-विमर्श हुआ। वाइसराय ने ३१ मार्च और १२ अप्रैल के वीच छः वार गांधी जी से वातचीत की। वाइसराय को १९४७ के अन्त तक भारतीय समस्या का सुलझाव ब्रिटिश सरकार को देना था। वाइसराय ने दोनों के दृष्टिकोण से परिचय प्राप्त कर लिया। गांधी जी भारत-विभाजन से कदापि सहमत न हो सके और न अन्तिम दिन तक सहमत हुए ही। जिन्ना तथा काँग्रेस-नेताओं से वाइसराय का विचार-विमर्श चलता रहा। गांधी जी इन दिनों अछूत वस्ती में रहते थे। वहाँ प्रतिदिन सायंकालीन सार्वजनिक प्रार्थना-सभा होती थी। उन्होंने प्रथम दिन उपस्थित लोगों से कुरान में से प्रार्थना करने की सम्मति माँगी; अनेकों ने आपत्ति की; सभा विसर्जित की गई। दूसरे और तीसरे दिन भी ऐसा ही हुआ।

चौथे दिन विरोधी कोई न था, अतः कुरान में से भी प्रार्थना की गई। उधर गांधी जी को कई विरोधियों के पत्र आने लगे जिनमें उन्हें कभी भ्रष्ट हिन्दू, कभी हिन्दुओं में मुसलमान भेदिया और कभी कुछ तथा कभी कुछ कहकर धमकियां दी जातीं। १२ अप्रैल को गांधी जी विहार लौट गये। जिन्ना के विभाजन को रद्द करवाने का एकमात्र उपाय यही था कि हिन्दू और मुसलमानों में शान्ति स्थापित की जाय और यह व्यवहार में करके दिखाया जाय। मॉउँटवेटन भाषणों से नहीं वरन् वास्तविक जीवन-व्यापार में हिन्दू-मुसलमानों को एक दूसरे के निकट देखने से ही विश्वास कर सकते थे, अतः गांधी जी का अहिंसा का आग्रह और घृणा की निन्दा उस समय एकमात्र अर्थपूर्ण राजनीतिक कार्य हो गया। कॉंग्रेस-नेताओं का संयुक्त-भारत में विश्वास नहीं रहा था; वे एक प्रकार से विभाजन स्वीकार कर चुके थे। द्विविधा को दूर करने का एकमात्र साधन उस समय विहार, बंगाल और पंजाब में अहिंसा-आन्दोलन की सफलता दिखलाना था। अब निर्णय मतों पर न होकर लोगों के व्यवहार पर आधारित था। गांधी जी इस प्रयत्न में आरंभ से ही संलग्न रहे थे और इस समय भी। जिन्ना की शक्ति गृह-युद्ध की धमकी में थी। अतः भारत की एकता बनाये रखने की एकमात्र आशा इसी में थी कि जनता को शान्त किया जाय और जिन्ना की धमकी को निरर्थक सिद्ध किया जाय। प्रश्न यह था—'क्या भारत एक राष्ट्र है ?' गांधी जी ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति इसी में लगा दी।

अप्रैल का महीना, उस पर विहार की तेज गर्मी और हिन्दुओं से पश्चात्ताप करवाने और भागे हुए मुसलमानों को वापस लौटाने के कार्यक्रम में वृद्ध गांधी का गाँव-गाँव घूमना, महान् तपस्या थी। गांधी जी ने लोगों को बहुत समझाया। संभव था यदि उन्हें कुछ

और समय मिलता तो वे अकेले ही भारत के दुर्भाग्य को बचा सकते किन्तु काल किस की प्रतीक्षा करता है ? नोआखली में पुनः कुछ हलचल हुई। बिहार के हिन्दुओं में कुछ सुमति आने लगी थी और मुसलमान अपने गाँवों को लौटने लगे थे। भ्रातृत्व की झलक दृष्टिगोचर हो रही थी। पहली मई को काँग्रेस कार्यकारिणी ऐतिहासिक निर्णय के लिए दिल्ली में बैठक कर रही थी। पं० जवाहरलाल ने महात्मा जी को तार द्वारा बुलाया। वे शीघ्र ग्रीष्म ऋतु में दीर्घ यात्रा कर दिल्ली पहुँचे। उन्हें यह निश्चय हो गया कि पाकिस्तान अवश्यंभावी है। फलतः उन्होंने काँग्रेस के समक्ष सीधा प्रश्न रखा—"क्या वे भारत-विभाजन को स्वीकार करते हैं ?" गांधी जी इसके नितान्त विरुद्ध थे। सरदार पटेल कुछ अधमने-से थे; उनके दिल में जिन्ना की धमकी की परीक्षा करने का विचार हो रहा था, पर अन्त में वे भी सहमत हो गये। जवाहरलाल जी पहले ही इसे मान चुके थे। फलतः कार्यकारिणी ने भारत-विभाजन स्वीकार कर दुर्भाग्य की छाप लगा दी। भारत ने पाकिस्तान देकर स्वतन्त्रता मोल ली !

गांधी जी तिलमिलाये और ७ मई के प्रार्थना-प्रवचन में उन्होंने साफ़ कह दिया कि काँग्रेस ने पाकिस्तान स्वीकार किया है, और पंजाब तथा बंगाल के विभाजन की माँग की है। मैं भारत के विभाजन के विरुद्ध था जैसे कि सदा रहा हूँ, किन्तु मैं क्या कर सकता हूँ ? मैं तो केवल इतना ही कर सकता हूँ कि ऐसी योजना से अपने आपको पृथक् कर लूँ। ईश्वर के सिवा और कोई मुझे इसे स्वीकार करने को बाध्य नहीं कर सकता।

गांधी जी के लिए भारत-विभाजन उतना ही आपत्तिपूर्ण था जितना कि १९४० में ब्रिटेन का हिटलर के सामने घुटने टेक देना। गांधी जी विभाजन के आगे नत-मस्तक होने की अपेक्षा भारी-से-

भारी क्षति को सह लेना अच्छा समझते थे। काँग्रेस को भी इन दिनों उन्होंने शासन न ग्रहण करने की सलाह दी, पर उस समय उनकी कौन सुनता था? वे फिर कलकत्ता चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने बंगालियों से अनुरोध किया कि वे बंगाल का विभाजन न होने दें। बंगाल की एक संस्कृति और एक भाषा है। इसे संयुक्त ही रहने दें! कर्ज़न के विभाजन कर देने के बाद उन्होंने बंगाल को एक किया है। क्या वे लोग जिन्ना को इसे पुनः विभाजित करने से नहीं रोक सकते? इस प्रकार छः दिन कलकत्ता में ठहर कर वे बिहार चले गये। तीव्र गर्मी में भी वे गाँव-गाँव घूम कर यही रट लगाते रहे कि यदि बिहार के हिन्दू भ्रातृत्व-भावना प्रदर्शित करें तो यह बिहार ही नहीं, भारत और विश्व-भर के लिए हितकर होगा।

नेहरू जी के निमन्त्रण पर २५ मई को वे फिर दिल्ली आये। वाइसराय लन्दन चले गये थे। गांधी जी ने कहा कि मुझे अब भी आशा है कि अँग्रेज़ी सरकार १६ मई १९४६ की सरकारी नियोग (Cabinet Mission) के वक्तव्य की भावना और शब्दों से एक बाल भी इधर उधर न होगी। पर डा० सुशीला नायर ने कहा कि गांधी जी बत्ती के दोनों सिरों को जला रहे हैं। गांधी जी विभाजन की ओर प्रवाहित लहरों को अब भी लौटाने के प्रयत्न में संलग्न थे। भावुकता से लड़खड़ाते हुए स्वर में उन्होंने कहा, "मेरे लिए इस नूतन भारत में कोई स्थान नहीं। मैंने १२५ वर्ष जीवित रहने की आशा छोड़ दी है। अब मैं एक दो वर्ष जीता रह सकूँगा।...... मुझे जीने की लेशमात्र भी इच्छा नहीं यदि भारत को उस प्रलय-प्रवाह में निमन्त्रित होना है, जिसकी ओर वह बढ़ रहा है। तो उधर वाइसराय लन्दन में भारत-विभाजन-योजना के लिए सक्रिय थे। उनकी योजना ब्रिटिश-सरकार द्वारा स्वीकृत हुई। भारत के साथ बंगाल और पंजाब का भी विभाजन

किया गया। वाइसराय सफल हो भारत लौटे। २ जून १९४७ को लन्दन में प्रधान मन्त्री एटली ने कामन्स-सभा में और वाइसराय ने दिल्ली में नव-योजना की घोषणा कर दी। अखिल भारतीय काँग्रेस-सभा ने १५ जून को दिल्ली में बहुमत से योजना की स्वीकृति दे दी। काँग्रेस ने गांधी जी को अकेला छोड़ दिया। वे यह पहले से ही जानते थे। उन्होंने कहा, "यदि केवल अमुस्लिम भारत भी मेरे साथ हो सकता तो भी मैं प्रस्तावित विभाजन से लोहा लेने का मार्ग दर्शा सकता था।...."

गांधी जी ने इस विभाजन को एक 'आध्यात्मिक दुर्घटना' कहा है, "मेरे घनिष्ठ मित्रों ने जो कुछ किया अथवा कर रहे हैं, उनसे मैं नितान्त असहमत हूँ। ३२ वर्षों के काम का यह दुःखद परिणाम !......यह एक दुःखान्त विजय है, जिसमें सेना ने अपने ही सेनानायक को पराजित किया है।......मैं १५ अगस्त के समारोह में सम्मिलित नहीं हो सकता !" १५ अगस्त को गांधी जी कलकत्ता में दंगों से संघर्ष कर रहे थे। उस दिन दिन भर उपवास किया और भगवान् से प्रार्थना की। इन स्वतन्त्रता-समारोहों में गांधी जी की अन्तरात्मा अशान्त थी, वे खिन्न थे। भारत स्वराज्य पा रहा था; गांधी व्याकुल और अशान्त थे। "मैं संतुलन की अवस्था से बहुत दूर हूँ" वे कहने लगे। मनुष्य में उनका विश्वास स्थिर रहा, ईश्वर में श्रद्धा अटल रही; अतएव आत्मविश्वास भी अविचलित रहा। गांधी जी अपने प्रयत्न में संलग्न रहे, वैरागी वन कन्दरा में न भागे। भ्रातृत्व उनका लक्ष्य था, स्वतन्त्रता को भ्रातृत्व पर बलिदान करने को वे उद्यत थे।

अँग्रेजी-राज्य का भारत में अन्त हो गया। ला० माउँटबेटन को भारतीयों ने अपना प्रथम गवर्नर-जनरल बनाये रखा। पाकिस्तान ने जिन्ना को प्रथम गवर्नर-जनरल चुना। संयुक्त भारत

का सब कुछ विभाजित हो गया, सेना और खज़ाना बट रहा था, भूमि बट रही थी और बट रही थी उसकी प्रिय सन्तान !!! 'यदभावि न तद् भावि भावि चेन्न तदन्यथा'—दोनों ही नूतन राज्यों में एक जाति शासक और दूसरी शासित बनी। संघर्ष अवश्यंभावी हुआ ! शासकों की संख्या अधिक; शासित का आतंकित होना स्वाभाविक ! पाकिस्तान में हिन्दुओं और हिन्दुस्तान में मुसलमानों को भय और चिन्ता हुई। परिणामस्वरूप दोनों ओर स्वराज्य-समारोहों की दीपावली ने असंख्य घरों की होली कर दी। जिधर देखो उधर अल्प-संख्यक जाति की हत्या, संहार, अत्याचार और पूरी तरह अग्नि-दाह दिखाई देने लगा। जब सिंध और पंजाब में प्रलय-दृश्य घटित हो रहे थे, कलकत्ता में गांधी जी ने आमरण-व्रत करके कुछ शान्ति बनाये रखी, दोनों बंगालों ने व्रत के समय गांधी जी को दिये हुए वचन निभाये। गांधी जी पंजाब पहुँचने के उद्देश्य से ७ अगस्त को दिल्ली चल दिये। रेलवे स्टेशन पर विषादपूर्ण मुख-मुद्राओं से सरदार पटेल आदि नेताओं ने गांधी जी का अभिनन्दन किया। नूतन भारत की राजधानी में स्वतन्त्रता-महारानी का निरीह प्राणियों के रुधिर से अभिषेक हो रहा था; चारों ओर हाहाकार था; स्वतन्त्रता के अंग-रक्षक स्तब्ध-चकित नेत्रों से नई महारानी का अद्भुत अभिषेक निहार रहे थे; कुछ आवेशयुक्त, कुछ लज्जाभिभूत ! पंजाब की प्रलयाग्नि में से आधे-जले, आधे भुने, आधे नंगे, आधे ढके, असहाय, निराश्रय प्राणों को बचाकर पलायन कर आये हुए हिन्दू और सिक्खों के असंख्य नर-नारी दिल्ली नगर में सड़कों और बाज़ारों की पटरियों पर, बाग़-बगीचों के खुले मैदानों में डेरे डाले इस प्रकार पड़े थे मानों किसी वन में अग्नि-प्रकोप से जान बचा कर पशु-समुदाय कहीं अग्नि-रहित स्थान में आकर अनेक झुण्डों में बिखरा पड़ा हो;

आश्रय-हीन, गृह-हीन ! वर्त्तमान अंधकारमय और भविष्य तिमिराच्छन्न ! हृदय और शरीर दोनों ही शोक-दग्ध ! निरपराध सताये हुए और निर्दोष-निर्वासित ! आहत भेड़ियों के समान प्रतिकार-भावना से अभिभूत हो वे शिकारी-समूह पर तो नहीं, उनके समान-जाति भाई-बंधुओं पर टूट पड़े ! कौन सोचे और विचारे ! स्वतन्त्रता के जिस मधुर फल का आस्वादन हिन्दुओं ने पाकिस्तानियों के हाथों किया, वही हिन्दुस्तान में मुसलमानों को करना पड़ा ! दिल्ली में अग्निकाण्ड और नर-हत्याएँ आरंभ हो गईं। मुसलमानों का बलिदान किया जाने लगा ! मानव मानवता को भूल गया, बावला हो गया, उन्मत्त हो गया। गांधी जी ने सारे शहर में उसी दिन भ्रमण किया; जामिया मिलिया पहुँचे, धीरज बँधाया और घिरे हुए मुस्लिम विद्यार्थियों और शिक्षकों की रक्षा की। शरणार्थियों के डेरों में पहुँचे बिना रक्षकों के, बिना पुलिस के। दिन-भर नगर के एक कोने से दूसरे कोने तक पहुँचते, मुसलमानों को तसल्ली देते, शरणार्थियों को धीरज बँधाते। उत्तेजित और उन्मूलित सहस्रों व्यक्तियों में भाषण करते; सब के साथ सहानुभूति और सद्भावना दिखाते, सान्त्वना देते और सहनशीलता सिखाते। इस प्रकार कितने ही दिन वे दिल्ली नगर में भाषणों पर भाषण देते रहे। एक भाषण में उन्होंने कहा—

"आज जब वर्षा हो रही है, पूर्वी पंजाब, पश्चिमी पंजाब तथा दिल्ली के गरीब असहाय शरणार्थियों के बारे में मैं सोचता हूँ। मुझे सूचना मिली है कि पश्चिमी पंजाब से सत्तावन मील लम्बा हिन्दू-सिक्खों का एक काफ़ला भारत-भूमि में प्रवेश कर रहा है। इसका विचार आते ही मेरा मस्तिष्क घूमने लगता है, यह कैसे संभव हुआ। ऐसी दुर्घटना संसार के इतिहास में अभूतपूर्व है। यह देख मेरा मस्तक आप सबके साथ लज्जा से झुका जा रहा है।

ऐसी ही दशा भारतीय मुसलमानों के साथ भी हो रही थी। इस प्रकार गांधी जी प्रतिदिन लोगों की सभाओं में भाषण करते और हिन्दू एवं सिक्खों को हत्याकाण्डों से विरत होने का उपदेश देते। "अहिंसा और शान्ति ही सब धर्मों का सार है; मानवता का स्थान साम्प्रदायिकता से कहीं ऊँचा है; बदले की भावना मानव को नीचे गिराती है और इस भावना से की गई हत्या तो नितान्त अनुचित और अमानवीय है।" इत्यादिक नैतिक उद्गारों द्वारा वे नवभारत की जनता को नैतिक उत्थान की ओर अग्रसर करते थे। महात्मा जी के अनुरोधों के फलस्वरूप हिन्दू जनता ने दिल्ली में एक प्रकार से शान्ति स्थापित कर दी।

इधर वे सरकार की भर्त्सना करते और उनके सामने रचनात्मक सुझाव रखते रहे। सरकार को सचेत किये रखना भी उनके कार्य-क्रम का एक अंग था; क्योंकि वे मनुष्य की प्रकृति से पूर्णतया अभिज्ञ थे। अतः मनोवैज्ञानिक त्रुटियों के स्वाभाविक परिणामों से परिचित थे। महात्मा जी सरकार पर जनता का अंकुश रखने के पक्ष में थे, अन्यथा उसके भ्रष्ट हो जाने की सर्वथा संभावना थी।

महात्मा जी ने अपना नया मार्ग 'समाज-सुधार' अपनाया और उस क्षेत्र में कार्य करना ही अपना ध्येय बनाया, जिसमें हिन्दू-मुस्लिम-एकता, अछूतोद्धार, चर्खा-संघ आदि ही उनके लक्ष्य हो गये। यद्यपि दिल्ली में नाम-मात्र की शान्ति थी, परन्तु लोगों के अन्तर्मनों में एक दूसरे के लिए सच्चा प्रेम एवं सद्भावना का अभाव स्पष्ट दिखाई देता था। मुसलमान अब भी निर्भय हो स्वेच्छा से विचरण न कर सकते थे। अतः गांधी जी को आन्तरिक व्यथा हुई। उनमें लोगों के अन्तर तक पहुँचने की तीव्र शक्ति थी। इन दिनों गांधी जी अध्यात्म के अत्युच्च शिखर पर विराजमान थे, वे सच्चे महात्मा के प्रतीक हो गये थे। घृणा, द्वेष, संकीर्णता यहाँ

तक फैल चुकी थी कि लौकिकता को वे तिलाञ्जलि देने में सक्षम थे। फलतः उन्होंने हिंसा और प्रतिकार एवं भ्रातृत्वहीनता को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए फिर प्राणों की बाजी लगा दी और किसी को सूचित किये बिना ही मन-ही-मन अहिंसा और भ्रातृत्व के लिए आमरण व्रत का कठोर निश्चय कर लिया। उन्होंने उपवास के पहले दिन यह वक्तव्य दिया—"यह उपवास भारतीय हिन्दुओं और मुसलमानों तथा पाकिस्तानी मुसलमानों—सब की आत्माओं एवं जमीरों के प्रति आदेश है। यदि सब अथवा उनमें से एक वर्ग भी इस उपवास की चेतना के अनुकूल उत्तर देगा तो मैं जानता हूँ कि चमत्कार (miracle) हो जायगा।"

१३ जनवरी १६४८ को यह उपवास आरंभ किया गया। उसी दिन से दिल्ली की अगणित जातियों, संस्थाओं एवं शरणार्थियों के दलों के प्रतिनिधि डा० राजेन्द्रप्रसाद के भवन पर बैठकें होने लगीं। इस समय केवल हस्ताक्षरों से काम नहीं बनने का था; उससे गांधी जी को सन्तोष नहीं हो सकता था। विचार-विमर्श होता रहा। उपवास का छठा दिन था। गांधी जी की दशा उत्तरोत्तर बिगड़ रही थी। वे प्रार्थना-प्रवचनों को भी लिखकर भेजते थे।

डा० राजेन्द्रप्रसाद ने प्रतिज्ञा-पत्र के संबंध में महात्मा जी से बात आरंभ की और कहा—"यह एक प्रण है तथा उसे क्रियान्वित करने का कार्यक्रम है। धारणाएँ निश्चित हैं।" पत्र यह था—"हम प्रतिज्ञा करते हैं कि हम मुसलमानों के धर्म, प्राण एवं सम्पत्ति की रक्षा करेंगे और जो घटनाएँ दिल्ली में हो चुकी हैं उन्हें फिर न होने देंगे। हम गांधी जी को विश्वास दिलाना चाहते हैं कि ख्वाजा साहब का उर्स इस साल भी पहले की तरह मनाया जायगा। अथच सब्जीमंडी, करोलबाग, पहाड़गंज तथा

अन्य मुस्लिम मुहल्लों में मुसलमान वैसे ही स्वतन्त्रतापूर्वक घूम-फिर सकेंगे जैसे कि पहले घूमा-फिरा करते थे। जो मस्जिदें हिन्दू और सिक्खों के अधिकार में इस समय हैं, वे मुसलमानों को लौटा दी जायँगी। जो मुसलमान दिल्ली से बाहर चले गये हैं, वे लौट सकते हैं और अपना काम कर सकते हैं। ये सब कार्य हम लोग बिना पुलिस अथवा सेना की सहायता के स्वयं करेंगे।" तदनन्तर डा० राजेंद्रप्रसाद ने महात्मा जी से उपवास भंग कर देने की अभ्यर्थना की। सब उपस्थित प्रतिनिधियों एवं नेताओं ने विह्वल-हृदय से उनसे विनय की। अन्त में महात्मा जी ने उपवास समाप्त कर देने की स्वीकृति दे दी। तदनन्तर मौलाना आज़ाद के हाथ से महात्माजी ने नारंगी के रस का एक गिलास पिया। "यदि यह प्रतिज्ञा-पत्र क्रियान्वित होता रहा तो शायद मैं १२५ वर्ष तक जीता रह सकूँ"—प्रसन्न हो महात्मा जी ने कहा।

बलिदान—

महात्मा जी के चमत्कार से तथाकथित शान्ति हो गई। उपवास-उपारण के प्रथम दिवस गांधी जी को सायं कुर्सी में बिठलाकर प्रार्थना-सभा में लाया गया। वे अत्यन्त दुर्बल और क्षीण हो चुके थे। दूसरे दिन भी उन्हें प्रार्थना-सभा में सहारा देकर लाया गया। उसमें उन्होंने शीघ्र स्वास्थ्य-लाभ की आशा प्रकट करते हुए कहा कि ठीक होकर वे इसी उद्देश्य के लिए पाकिस्तान जायँगे। इतने में समीपवर्ती बाग़ की दीवार से गांधी जी पर एक बम (हथगोला) फेंका गया। एक अशिक्षित स्त्री ने हाथापाई करते हुए बम फेंकने वाले को तब तक पकड़े रखा जब तक कि पुलिस न आ गई और उसने उसे गिरफ्तार नहीं कर लिया। गांधी जी शान्त रहे और लेशमात्र भी विचलित न हुए। उन्होंने पुलिस के उच्चाधिकारी को आदेश दिया कि उस नवयुवक के साथ दुर्व्यवहार

न किया जाय, बल्कि उन्हें उसे सद्-विचार और सत्कार्य की ओर प्रेरित करना चाहिए। सबको उस पर दया करनी चाहिए। यह युवक मदनलाल एक पंजाबी शरणार्थी था, जिसे पुलिस ने गांधी जी की इच्छा के अनुरोध से मस्जिद में रहने से वंचित कर दिया था। उत्तेजित होकर मदनलाल एक ऐसे समूह में सम्मिलित हो गया था जो गांधी जी की हत्या का षड्यन्त्र रच रहा था। जब बम विफल रहा और मदनलाल पकड़ा गया तो उसका षड्यन्त्रकारी साथी नाथूराम विनायक गॉडसे पूना से दिल्ली पहुँचा। यह युवक पूना के एक हिन्दू-महासभा के साप्ताहिक पत्र का सम्पादक और प्रकाशक था और महाराष्ट्रीय ब्राह्मण था।

गॉडसे तथा उसके पथभ्रष्ट साथी गांधी जी के उपवास से उत्तेजित हो उठे थे। शरणार्थियों को मस्जिदों से निकाल देने के गांधी जी के आग्रह से वे रोष में आ गये थे, विशेषतया इस कारण कि महात्मा जी ने मुसलमानों से कोई माँग नहीं की थी।

गॉडसे एक खाकी जाकेट पहने बिड़ला-भवन का चक्कर काटता रहा। उसकी जेब में पिस्तौल रखा था। २५ जनवरी की प्रार्थना-सभा में विशेष भीड़ थी। गांधी जी प्रसन्न थे। महात्मा जी ने कहा कि वे यह सुनकर अति प्रसन्न हुए जब हिन्दू और मुसलमान मित्रों ने उनसे यह कहा कि दिल्ली अब हृदयों के पुनर्मिलन का अनुभव कर रही है। हरेक हिन्दू और सिक्ख प्रार्थना में आते समय अपने साथ कम-से-कम क्या एक मुसलमान को नहीं ला सकता? यह भ्रातृत्व का पक्का प्रमाण होगा। गॉडसे का दल इन बातों को पसंद नहीं कर सकता था। उन्होंने सोचा कि मुसलमानों के इस सहायक को ही दूर कर दिया जाय जिससे मुसलमान असहाय हो जायँ, पर उन्हें क्या पता था कि उनके ऐसा करने से उलटा मुसलमानों की स्थिति दृढ़ हो जायगी।

३० जनवरी १६४८ को सायंकालीन प्रार्थना के लिए कारणवश महात्मा जी को कुछ विलम्ब हो गया। सभा में लगभग पाँच सौ व्यक्ति उपस्थित थे। पहुँचते ही महात्मा जी ने विलम्ब हो जाने के लिए खेद प्रकट किया। वे दस मिनट विलंब से पहुँचे थे। अभी वे सभा-मंच से दूर ही थे कि उपस्थित जनता सम्मान में खड़ी हो गई। कुछ आगे को सरके, कुछ ने उन्हें मार्ग दिया और जो अत्यन्त समीप थे महात्मा जी के चरणों पर नतमस्तक हुए। आभा और मनु के कन्धों पर से बाजू उठा कर महात्मा जी ने हाथ जोड़ जनता के अभिवादन का उत्तर दिया। इतने में एक युवक, जो सब से आगे की पंक्ति में पहले से बैठा था, भीड़ को हटाता हुआ गांधी जी के समीप आने का प्रयत्न करने लगा। पहले ही विलम्ब हो चुका था, अतः मनु ने उसे रोका और उसने उन्हें धक्का दे अलग कर दिया। गांधी जी से दो कदम दूरी पर खड़ा हो कुछ झुका और तुरन्त दोनों हाथों को पास-पास लाया मानों नमस्कार करने के लिए जोड़ना चाहता हो। महात्मा जी हाथ जोड़ मुस्कराते हुए सभा को आशीर्वाद दे रहे थे। उस युवक ने सीधे खड़े हो तत्क्षण पिस्तौल से एक एक करके तीन गोलियां महात्मा जी पर दाग़ दीं। पहली गोली उनके उठे हुए एक चरण पर पड़ी, दूसरी हृदय पर जिससे उनके स्वच्छ श्वेत वस्त्र रक्तरंजित होते दिखाई पड़े। जनता के अभिवादन में बँधे दोनों हाथ झटके से अलग हो गये और 'हे राम' की पावन ध्वनि पवित्र होठों में से निकली ही थी कि तीसरी गोली भी आ लगी। शरीर लड़खड़ाता हुआ मंच पर जा गिरा, नेत्रों पर से चश्मा और चरणों में से चप्पल भूमि पर गिर पड़े। सभा में कोलाहल मचा। सब स्तब्ध-से मंच की ओर देखने लगे। आभा और मनु महात्मा जी के पवित्र

शरीर को उठा कर भीतर ले गई। मस्तक पर वही तेज और चेहरे पर स्वाभाविक मुस्कान अब भी विद्यमान थी, पर प्राण-पक्षी प्रयाण कर चुके थे। चारों ओर हाहाकार मच गया—भारत के 'बापू' को निर्वाण मिल गया। पं० जवाहरलाल तुरन्त बिड़ला-भवन पहुँचे, पर अब क्या था, 'बापू' सदा के लिए प्रस्थान कर चुके थे, भारत की ज्योति बुझ चुकी थी, सब ओर घोर गहन अंधकार छा गया। पण्डित जी ने आजानु नत हो प्रणाम किया और उनके रक्त-रंजित वस्त्रों में मुँह देकर बालक के समान रोने-चिल्लाने लगे। देवदास जी पहुँचे, पिता के चरणों पर नतमस्तक हो प्रणाम किया और पास बैठ गये—शोक से अवसन्न-हृदय! शोकसंवाद नगर भर में तुरन्त फैल गया। मन्त्रि-गण तथा अन्य नेतागण तुरन्त वहाँ पहुँच गये। रोने-धोने के सिवा और करना ही क्या था! विदेशी राजदूत भी पहुँच गये, अनेकों ने आँसू बहाये। भवन के बाहर अगणित जन-समूह एकत्र हो गया, सब ने 'बापू' के अन्तिम दर्शनों के लिए अनुरोध किया। सर्च-लाइट के प्रकाश में बिड़ला-भवन की छत पर मृत शरीर रखा गया जहाँ सहस्रों व्यक्तियों ने रोते और हाथ मलते हुए अन्तिम दर्शन किये और अन्तिम प्रणाम अर्पण किया। आधी रात तक इस प्रकार दर्शनार्थ आई हुई जनता का ताँता बँधा रहा। उसके बाद मृत शरीर नीचे कमरे में लाया गया—विलाप-ध्वनि में रात्रि भर गीता-आदि धर्म-ग्रन्थों का पाठ होता रहा। शोक-समाचार मिलने के कुछ समय पश्चात् पण्डित नेहरू ने रेडियो-स्टेशन पर पहुँच कर निरन्तर प्रवहमान अश्रु-धारा के बीच रुँधे गले और दु:ख-दग्ध हृदय से राष्ट्र के नाम शोक-समाचार प्रसारित करते हुए कहा कि हमारे जीवन में से ज्योति जाती रही है और सर्वत्र अंधकार ही अंधकार है। मैं समझ नहीं सकता कि मैं आपसे क्या और कैसे कहूँ! हमारा

प्रिय-नेता, राष्ट्र-पिता, जिसे हम 'बापू' कहते हैं आज नहीं रहा। शायद यह कहना ग़लत है तो भी हम उसे उस रूप में अब न देख सकेंगे जिसमें वर्षों से देखते आये हैं। अब हम सम्मति लेने और सान्त्वना पाने के लिए भाग कर उनके चरणों में न जा सकेंगे। यह दुःखपूर्ण आघात न केवल मेरे ही लिए है बल्कि करोड़ों देशवासियों के लिए है। आपके दुःख को हल्का करने के लिए न तो मैं और न कोई अन्य आपको सान्त्वना देने में समर्थ हो सकता है। मैंने कहा कि ज्योति जाती रही है, तो भी मैं ग़लती पर हूँ; क्योंकि जो ज्योति इस देश में चमकी वह कोई साधारण ज्योति नहीं थी। जिस ज्योति ने इस देश को इतने वर्षों तक प्रकाशमान् रखा, उसका प्रकाश सहस्रों वर्षों तक इस देश में विद्यमान रहेगा और हमें सुदीर्घ भविष्य तक प्रकाश दिखाता रहेगा। संसार उसे देखेगा और यह असंख्य हृदयों को सन्तोष प्रदान करेगा; क्योंकि वह ज्योति जीवित सत्य का प्रतिरूप थी। वह नित्य पुरुष अपने इस पुरातन देश को स्वतन्त्रता की ओर ले जाता हुआ, हमारी भूलों से हमें दूर करता हुआ और सच्चे मार्ग की याद दिलाता हुआ अपने नित्य-सत्य के साथ हमारे मध्य सदा रहेगा। यह सब कुछ तो हो चुका। अभी बहुत कुछ करना शेष है। बहुत कुछ करना उनके लिए भी शेष था। हम यह कभी भी सोच नहीं सकते थे कि उनकी अब हमें आवश्यकता नहीं रही अथवा उनका काम पूरा हो चुका लेकिन इस समय जब कि हमें विशेषकर इतना अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है उनका हमारे बीच न रहना एक ऐसा आघात है जिसे सहन करना अत्यन्त कठिन है। एक पागल ने उनके जीवन का अन्त कर दिया है......

सन्देश सुनते ही देश का कोना-कोना शोक-विह्वल हो उठा, दुःख की काली घटाएँ देश भर में छा गईं। 'बापू' चल बसे;

देश पितृ-हीन हो गया; मातृ-हीन हो गया—'बापू' में पिता की रक्षा-भावना और माता का वात्सल्य दोनों ही एक साथ मिलते रहे थे। शोक-विह्वल जनता अन्तिम श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने के लिए दिल्ली की ओर टूट पड़ी। रेलगाड़ी, मोटर, बस एवं हवाई जहाज, जो भी साधन जिसे उपलब्ध हो सका, लेकर रातों-रात दिल्ली पहुँचा। दिल्ली की सड़कें, बाजार, गली-कूचे, जहाँ भी दृष्टि पड़ती, शोकार्त्त जन-समूह से आपूर्ण दृष्टिगत होते थे और जनता अपने प्रिय पिता के अन्तिम दर्शनों के लिए लालायित बिड़ला-भवन की ओर जल-प्रवाह के समान भागी जा रही थी। लोगों का दिल्ली आना निरन्तर जारी था।

काली रात बीती; प्रभात हुआ; सूर्य की किरणों ने प्राकृतिक अंधकार को तो दूर कर दिया परन्तु हृदयस्थित अंधकार (शोक-तमिस्र) को और भी प्रगाढ़ कर दिया। जनता के रूप में दिल्ली शहर में शोक घनीभूत होता जा रहा था। बिड़ला-भवन में 'बापू' के प्रिय पुत्र, विनीत शिष्य तथा घनिष्ठ मित्र उनके मृत शरीर को अन्तिम स्नान कराने में व्यस्त हुए; 'बापू' का शरीर भी अब कुछ ही घण्टों बाद उनके समीप नहीं रहेगा—इस विचार ने उनके धैर्य को मिटा दिया, सब के सब अधीर हो फूट-फूट कर विलाप करने लगे, मृत शरीर से लिपट-लिपट कर उन लोगों ने पहले आँसुओं के गरम-गरम जल से उसे स्नान कराया, तदनन्तर पावन जल से। हिन्दू-संस्कार-विधि से 'बापू' का अन्तिम स्नान हुआ और हाथ-कते सूत की गुच्छियों की माला उनके गले में डाली गई; रुद्राक्ष-मालाएँ भी पहिनाई गईं; हाथ-कते सूत की स्वच्छ चादर से सारा शरीर ढक दिया गया। देवदास जी के अनुरोध से उनका वक्षःस्थल और मुँह अनावृत रखे गये—बापू से बढ़कर सुन्दर वक्षःस्थल स्यात् ही किसी सैनिक को मिल सका हो ! जनता

के दर्शनार्थ शरीर को पुनः बिड़ला-भवन की छत पर अवस्थित किया गया। ११ बजे फिर नीचे लाया गया और एक पुष्प-सज्जित सुन्दर विमान पर रख दिया गया। राष्ट्रपिता के उपयुक्त सम्मान के साथ अरथी का जलूस तैयार हुआ और विमान अन्तिम संस्कार हेतु यमुना-तट की ओर मन्थर गति से प्रयाण करने लगा। दो मील लंबा जुलूस ११ बजकर ४५ मिनट पर बिड़ला-भवन से चलना आरंभ हुआ। पण्डित नेहरू, सरदार पटेल इत्यादि नेता एवं महात्मा जी के घनिष्ठ शिष्य-वर्ग विमान पर शव के इधर-उधर आसीन थे। भारतीय जल-स्थल एवं हवाई सेना के दो सौ सैनिक चार मोटे रस्सों से विमान को खेंच रहे थे। सहस्रों सैनिक विमान के आगे पीछे चल रहे थे। इंच-इंच करके रथ आगे बढ़ रहा था। पन्द्रह लाख मनुष्य रथ के साथ-साथ चल रहे थे और असंख्य जन रथ को चलते देख रहे थे। नई-दिल्ली के प्रशस्त मार्ग दर्शकों से भरे पड़े थे, सर्वत्र नर-मुण्ड ही नर-मुण्ड दृष्टिगोचर होते थे। अनेकों व्यक्ति मार्गों के समीपवर्त्ती वृक्षों की शाखाओं पर, अनेकों ही आसपास की ऊँची दीवारों पर, असंख्य राजा पंचम जार्ज के बुर्ज पर दर्शनों के लिए अवस्थित थे। वृक्षों की अनेकों शाखाएँ भार से टूट पड़ीं और गिरने वाले चोट की परवा न कर पुनः वृक्षों पर चढ़ रहे थे। 'महात्मा गांधी की जय' की तुमुल ध्वनि से वातावरण गुंजायमान था। बीच-बीच मन्त्रों और श्लोकों का उच्चारण भी सुनाई दे रहा था। जुलूस साढ़े पाँच मील की यात्रा करके ४ बज कर २० मिनट पर यमुना-तट पर पहुँचा। यमुना-तट के समीप लाखों की संख्या में जनता प्रातःकाल से ही प्रतीक्षा में विद्यमान थी। राजघाट पर अग्नि-संस्कार के लिए चन्दनादि से युक्त चिता तैयार की गई थी। अनेकों प्रकार के सुगन्धित द्रव्य चिता पर विकीर्ण थे। विकम्पित हाथों से शव को उठा कर

चिता पर धरा गया और चारों ओर से शोक-विह्वल ध्वनि में 'महात्मा जी की जय' से आकाश गूँज उठा। ४ बजकर ४५ मिनट पर श्री रामदास गांधी ने अपने, नहीं, नहीं, भारत राष्ट्र के पूज्य बापू की चिता को पवित्र अग्निदान दिया। चारों ओर से विलाप-चीत्कार हो उठा, आबाल-वृद्ध जनता के नेत्रों से स्वतः अश्रु-धारा प्रवाहित हुई और हाहाकार मच गया। जनता का प्रवाह सब ओर से चिता की ओर बढ़ा और सेना की रक्षा-पंक्ति को तोड़ता हुआ चिता के समीप पहुँचा, पर शीघ्र ही अपनी भूल समझ कर रुक गया। चिता अग्निसात् हो उठी, जनता ने शोकाभिभूत हो मौन धारण किया। नतमस्तक हो राष्ट्र-पिता को अश्रु-जलाञ्जलि भेंट की और भीतर-बाहर अंधकारावृत हो धीरे धीरे लौटने लगी। चौदह घण्टे तक चिता जलती रही। गीता का अखण्ड पाठ होता रहा, प्रार्थनाएँ होती रहीं। सारा देश शोक-सागर में निमग्न था। २७ घण्टे पश्चात् जब चिता ठंडी पड़ गई तो धर्माचार्यों, बन्धुओं, मित्रों तथा अधिकारियों ने विशेष संस्कारों के साथ पवित्र भस्म को इकट्ठा किया। पवित्र जल से अभिसिञ्चित कर महात्मा जी के पावन अवशेषों को चुना। पवित्र भस्म को स्वच्छ खादी में बाँधा और अस्थि-पुष्पों को एक ताम्र-पात्र में रखा। पुष्पमालाओं से आवृत ताम्रपात्र को सुगन्धित फूलों से भरी एक डलिया में रख श्री रामदास हृदय पर धारण किये बिड़ला-भवन ले आये। तदनन्तर घनिष्ठ मित्रों ने अभ्यर्थना कर पवित्र भस्म का कुछ अंश प्राप्त किया। विश्व-भर के राष्ट्रों से भस्म की माँग हुई परन्तु यह माँग कहाँ तक पूरी की जाती ? बर्मा, तिब्बत, लंका और मलाया को कुछ भस्म दे दी गई। पवित्र भस्म का कुछ अंश प्रान्तों के मुख्य मन्त्रियों तथा विशिष्ट व्यक्तियों में वितरण किया गया जिसे उन्होंने अधिकतर ग्रामीण केन्द्रों में बाँट

दिया और कुछ अंश प्रान्तीय राजधानियों के लिए रख लिया।

पवित्र भस्म एवं अस्थि-पुष्पों के प्रधान भाग को प्रयाग-तीर्थ पर त्रिवेणी की पवित्र धारा में प्रवाहित करने का निश्चय हुआ। अतः ११ फ़रवरी को तीसरे दर्जे के पाँच डिब्बों की एक स्पेशल ट्रेन महात्मा जी के पवित्र अवशेषों को लेकर दिल्ली से चली और १२ फ़रवरी को प्रयाग पहुँची। मार्ग में जिन ग्यारह स्टेशनों पर ट्रेन ठहरी, वहाँ जनता ने लाखों की संख्या में इकट्ठे होकर भक्ति-भाव से भस्म को नमस्कार किया, प्रार्थनाएँ कीं और पुष्पों एवं पुष्प-मालाओं की भेंट चढ़ाई। प्रयाग में विशेष सम्मान के साथ अस्थि-पुष्पों को एक पालकी में रखकर एक ऊँचे ट्रक पर अवस्थित कर जलूस निकाला गया, जो मन्थर गति से कोई पन्द्रह लाख भक्त नर-नारियों के साथ प्रयाग-तीर्थ की ओर चला। यह विमान क्या था, मानों चलती-फिरती पुष्प-वाटिका थी। विमान में संयुक्त-प्रान्त की गवर्नर श्रीमती नायडू, मौ० आज़ाद, सरदार पटेल तथा श्री रामदास आसीन थे और शोकावनत मुख पंडित नेहरू साथ साथ पैदल चल रहे थे। तट पर पहुँच कर नौका रूपी हंस-विमान द्वारा त्रिवेणी-संगम में बड़े समारोह के साथ अस्थि-पुष्प मध्य-धारा में पहुँचाये गये और इलाहाबाद के गढ़ से तोपों की सलामी के बीच भस्म तथा अस्थि-पुष्पों को पवित्र-मन्त्रोच्चारण के साथ जल के अर्पण कर दिया गया। त्रिवेणी के पावन जल ने उन्हें अपने हृदय में तत्काल विलीन कर लिया। इसी समय समस्त भारत में सहस्रों नदियों, जलाशयों एवं तीर्थ-स्थानों में भी इसी प्रकार अस्थि-प्रवाह रीत्यनुसार किया गया। जिस प्रकार 'बापू' की आत्मा ने देशवासियों की आत्माओं में प्रविष्ट हो सर्वव्यापक स्वरूप धारण किया उसी प्रकार उनके अस्थि-पुष्पों ने पावन जल में घुल-मिल कर इस धर्मनिष्ठ पुरातन

भारत की पवित्र रज के कठार में प्रवेश कर उसे और भी पावन कर दिया। 'बापू' घट-घटवासी हो गये, भारत का वह मोक्षदाता इस प्रकार मोक्ष को प्राप्त हुआ। देश-देशान्तर की सरकारों, जनता, संस्थाओं एवं समाजों की ओर से प्रधान मन्त्री पंडित नेहरू के पास सहानुभूति एवं समवेदना के सन्देश आये। अगणित व्यक्ति-विशेषों ने व्यक्तिगत शोकपूर्ण संदेश भेजे। सभी छोटे-बड़े राज्यों ने सम्मान-प्रदर्शन एवं समवेदना-स्वरूप अपनी राजकीय ध्वजाओं को नीचे झुकाये रखा। भारत के इस असह्य शोक में विश्व की मानवता ने शोक मनाया। भारत ने अब जाना कि उसके महात्मा जी विश्व के महात्मा थे, संसार के एकमात्र महापुरुष थे। ऐसे महापुरुष का ऐसा अन्त !

राजघाट पर महात्मा जी का स्मारक बनाया गया जो उतना ही साधारण है जितने कि वे स्वयं अपने जीवन में थे। वह आज भारत का सर्वश्रेष्ठ तीर्थ है, और जब तक भारत है, ऐसा ही रहेगा, यह हमें पूर्ण विश्वास है।

राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद

महापुरुष भूमि के सभी भागों में जन्म लेते हैं। सभी देशों के लोग अपने-अपने महापुरुषों का आदर-सम्मान करते हैं। भारतभूमि भी अनेक पवित्रात्माओं की जननी है। इसी कारण इसे 'पुण्य-भूमि' कहते हैं। 'देवभूमि' नाम भी इसे इसी हेतु से दिया गया है। प्राचीन काल में राम और कृष्ण-से कर्मयोगी, वाल्मीकि और व्यास-से महर्षि, बुद्ध व महावीर-से धर्म-प्रचारक, चन्द्रगुप्त व अशोक-से सम्राट्, शंकर व गदाधर-से विद्वान्, कालिदास व तुलसी-से कवि, सूरदास और नानक-से भक्त, सीता व सावित्री-सी सती स्त्रियाँ इसी धरा-धाम पर अवतीर्ण हुईं, जिनके सुकृत्यों से भारत का भाल उज्ज्वल हुआ। अर्वाचीन युग में राममोहन राय और दयानन्द-से सुधारकों, तिलक और गांधी-से देशभक्तों, टैगोर और गोखले-से विद्वानों, बोस और नेहरू-से नीतिज्ञों ने भी अपने महान् कार्यों से भारत के यश का जगत् भर में प्रसार किया। परन्तु जिस दिव्य पुरुष की संक्षिप्त जीवनी लिख कर आज हम अपनी लेखनी व हृदयों को पवित्र करना चाहते हैं, वे हैं हमारे पूज्य राष्ट्रपति देशरत्न डाक्टर राजेन्द्र-प्रसाद।

प्राचीन तथा नवीन युग में आकाश-पाताल का अन्तर है, दिन-रात का भेद है। पहले राजा वंशानुक्रम से बनते थे; राजा की संतति ही सिंहासन की अधिकारी मानी जाती थी। परन्तु समय के साथ आदर्श परिवर्तित हो गये। सिंहासन जन्म-सिद्ध

अधिकार न रह गया। राजतंत्र का स्थान प्रजातंत्र ने ले लिया। अब जिसे प्रजा सब से अधिक योग्य, गुणी और देश-सेवक समझती है, उसे ही अपना शासक चुनती है। वह भी सदा के लिए नहीं, कुछ वर्षों के लिए। स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद भारतवासियों ने प्रथम बार गत कुछ मासों में निर्वाचन किया। अठारह करोड़ वयस्क भारतवासियों ने इस चुनाव में भाग लिया। उन्होंने प्रान्तों की विधान-सभाओं तथा संसद् के लिए अपने प्रतिनिधि चुन कर भेजे। उन प्रतिनिधियों को भारत के लिए राष्ट्रपति चुनना था। यह कार्य ६ मई १९५२ ई० को संपन्न हुआ। डा० राजेन्द्रप्रसाद ८६ प्रतिशत मत (वोट) प्राप्त कर देश के राष्ट्रपति घोषित किये गये। स्वराज्य मिलने से पूर्व काँग्रेस का प्रधान ही देश का सर्वोच्च व्यक्ति माना जाता था। अब, स्वराज्य-प्राप्ति के पश्चात्, राष्ट्रपति ही देश का सर्वोच्च व्यक्ति माना जाता है। डा० राजेन्द्रप्रसाद ने जिन गुणों से इस पद को प्राप्त किया, उनका ज्ञान हम सबके लिए रोचक भी है और शिक्षाप्रद भी। कारण, उन्हीं के समान योग्यता व आचरण से युक्त होकर प्रत्येक व्यक्ति बड़ा होने पर राष्ट्रपति बन सकता है। देश-विदेश में अपना नाम उज्ज्वल कर अपना जन्म सफल कर सकता है। आइये, उनके जीवन की मुख्य-मुख्य बातों से परिचय प्राप्त करें।

वंश-परिचय—

भारत के जिस बिहार प्रान्त ने महात्मा बुद्ध और महात्मा महावीर स्वामी को, चन्द्रगुप्त तथा अशोक सदृश सम्राटों को जन्म दिया, उसी प्रान्त के सारन जिले के जोरादेई नामक गाँव में हमारे राष्ट्रपति का जन्म ३ दिसम्बर १८८४ ई० के शुभ दिन हुआ था। उस समय कौन जानता था कि यह नन्हा-सा बालक ६६ वर्ष बाद स्वतंत्र भारत के राष्ट्रपति के सिंहासन को अलंकृत करेगा?

कौन कह सकता था, यह देश के प्रत्येक व्यक्ति का श्रद्धेय व पूज्य बनेगा ?

भले ही राजन बाबू बिहारी हों, परन्तु उनके पूर्वज बिहारी न थे। वे उत्तर-प्रदेश के अमोढ़ा ग्राम के निवासी थे। वे व्यवसाय-धंधे की खोज में अमोढ़ा से बलिया (उत्तरप्रदेश) और बलिया से जीरादेई में जा बसे थे। वे जाति के कायस्थ थे और अन्य कायस्थों के समान ही सरस्वती के उपासक। उन दिनों मुसलमान शासकों की सभाओं में राज-काज प्रायः कायस्थ ही किया करते थे।

राजेन्द्र बाबू के पूर्वज श्री चौधुरलाल जी अपनी विद्वत्ता, बुद्धिमत्ता तथा कार्यकुशलता से हथुआ राज्य के दीवान बन गये थे। उनके छोटे भाई राजन बाबू के पितामह श्री मिश्रीलाल शीघ्र ही स्वर्ग सिधार गये थे। अतएव चौधुरलाल जी अपने भतीजे राजन बाबू के पिता श्री महादेवसहाय पर विशेष स्नेह रखते थे। महादेवसहाय जी बहुत गुणी और भद्र व्यक्ति थे। व्यायाम, घुड़सवारी तथा रोगि-सेवा में उनकी विशेष रुचि थी। वे अपनी संपत्ति, शक्ति, समय और बुद्धि का उपयोग लोक-सेवा में कर आत्मिक प्रसन्नता प्राप्त किया करते थे। अपने अनेक सद्गुणों के लिए हमारे राष्ट्रपति अपने पिता के ही ऋणी हैं।

राजन बाबू के एक बड़े भाई श्री महेन्द्रप्रसाद थे और तीन बड़ी बहिनें। परिवार में सबसे छोटे होने के कारण इन्हें निज दादी-दादा, माता-पिता तथा भाई-बहिनों से प्रचुर प्रेम व लाड-प्यार प्राप्त हुआ। राष्ट्रपति के हृदय में मानव-मात्र के प्रति अपार प्रेम पाया जाता है। संभव है, यह प्रेम उसी प्रभूत प्रेम का सुपरिणाम हो जो उन्हें सौभाग्य से बाल्यकाल में प्राप्त हुआ।

इन्हें बचपन में ही शीघ्र सोने की टेव पड़ गई थी। उधर

सूर्य अस्त होता, इधर इनके नेत्र मुँद जाते। घर में भोजन देर में पकाने-खाने की रीति थी। अतः इन्हें प्रायः रात को जगाकर भोजन खिलाया जाता था। ये ऊँघते-ऊँघते खा जाते और कई बार प्रातः उठने पर रात का खाया भूल जाते।

ये रात को शीघ्र ही सो जाते थे और प्रातः उठते भी शीघ्र ही थे। प्रायः बच्चे रात को कथा-कहानियाँ सुनते-सुनते सो जाते हैं, परन्तु ये ब्रह्ममुहूर्त में चार बजे उठ पड़ते और माता को जगाकर गीत व कथाएँ सुनने का आग्रह किया करते। स्नेहमयी माता भी अपनी नींद की परवा न कर इन्हें भजन व कथाएँ सुनातीं। उन्हें सुनकर ये बहुत आनन्दित होते। रामायण व महाभारत की कथाओं में इनकी विशेष रुचि थी। राम की पितृ-भक्ति तथा वीरता, भरत के भ्रातृ-स्नेह तथा विनम्रता, सीता के पातिव्रत और सहिष्णुता आदि से ये विशेष प्रभावित और गद्गद् हो जाते थे। महाभारत में से श्रीकृष्ण की कर्मवीरता व युधिष्ठिर की सत्यवादिता का इनके कोमल अन्तःकरण पर विशेष प्रभाव पड़ता था। ये उक्त महात्माओं के चरण-चिह्नों पर चलने का मन-ही-मन संकल्प किया करते थे। भगवान् ने इनकी मनोकामना पूर्ण की और ये आज ऐसे बन चुके हैं कि लोग इनके पद-चिह्नों पर चलना अपना गौरव समझते हैं।

जीरादेई ग्राम में हिन्दू-मुसलमान, जमींदार-किसान, कायस्थ-राजपूत आदि अनेक जातियों व व्यवसायों के लोग प्रेमपूर्वक रहते थे। अब के समान तब फूट वा वैमनस्य न था। रामनवमी, जन्माष्टमी, दशहरा, दीवाली, ईद, मुहर्रम आदि पर्वों पर हिन्दू और मुसलमान सब इकट्ठे होते थे। वे मिलकर रंगरलियाँ मनाते तथा बधाइयाँ देते थे। बालक राजेन्द्र इन उत्सवों में बहुत उत्साह से सम्मिलित होते थे। गाँव में ढोलक, झाँझ आदि के साथ

तुलसी रामायण की कथा हुआ करती थी। उसका इन पर जो प्रभाव पड़ता, वैसा अन्य किसी का नहीं।

शिक्षा—

पाँच-छः वर्ष की अवस्था में राजन बाबू की शिक्षा आरंभ हुई। कायस्थ परिवारों में फ़ारसी-उर्दू की शिक्षा पर बहुत बल दिया जाता था। इसीलिए पहले इन्हें एक मौलवी साहब के मकतब (विद्यालय) में बैठाया गया। मौलवी साहब को रुपये भेंट किये गये। जात-बिरादरी के लोगों में मिठाई बाँटी गई। राजन बाबू ने अक्षरों का अभ्यास आरंभ किया। वे मौलवी साहब डींगें मारने में जितने आगे थे, योग्यता और गुणों में उतने ही पीछे। इसलिए आठ मास बाद दूसरे मौलवी जी आये। वे गंभीर भी थे और योग्य भी। राजन बाबू ने उनसे तीन वर्षों में फ़ारसी का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। इस बीच में इन्होंने उनसे करीमा, मामकीना, खालिकबारी, खुशहाल सीमिया, गुलिस्ताँ, बोस्ताँ आदि अनेक ग्रंथ पढ़े। उन्हीं से इन्होंने पहाड़े भी सीखे और गिनती भी। मौलवी जी का पढ़ाने का ढंग वर्तमान ढंग से भिन्न था। वे सूर्य के उदय से पहले पढ़ाना आरंभ करते थे और रात दिये जले तक पढ़ाते थे। हाँ, यह बात अवश्य है कि बीच-बीच में नहाने-धोने, खाने-पीने, खेलने-कूदने और विश्राम का अवकाश दे दिया करते थे। परिश्रमी, स्नेही व सदाचारी अध्यापक के कार्य व चरित्र का प्रभाव राजन बाबू पर पर्याप्त पड़ा। ये भी उनसे प्रेम करने लगे। इसलिए जब दो-तीन वर्ष बाद राजन बाबू को अँग्रेजी आदि पढ़ने के लिए छपरे जाना पड़ा तो दोनों ऐसे दुःखी हुए जैसे पारिवारिक जन एक-दूसरे से बिछुड़ने पर।

१८९३ ई० में राजन बाबू छपरे पहुँचे और अपने बड़े भाई के साथ किराये के मकान में रहने लगे। बड़े भाई सफल होकर दूसरे

से पहले दर्जे में अर्थात् एंट्रेंस क्लास में पहुँचे थे। राजन बाबू आठवीं कक्षा में प्रविष्ट हुए। यह बात आज अचम्भे की सी लगती है परन्तु उन दिनों श्रेणियाँ आठवीं से पहली की ओर जाती थीं, वर्तमान के समान पहली से दसवीं की ओर नहीं।

राजन बाबू के लिए निवास-स्थान पर पढ़ाने के लिए कोई शिक्षक नियुक्त नहीं किया गया। ये अपनी कठिनाइयाँ बड़े भाई से पूछ लिया करते। इस प्रकार विद्यालय में ही पूरे ध्यान से पढ़ने की इन्हें अच्छी टेव पड़ गई। अपने परिश्रम व योग्यता पर विश्वास उत्पन्न होने लगा। वहीं इन्होंने अँग्रेज़ी का ए-बी-सी और हिन्दी का अ-आ पहले-पहल सीखा। वर्ष व्यतीत हुआ। परीक्षा-परिणाम घोषित किया गया। राजनबाबू को आशा से बढ़-चढ़ कर सफलता मिली। ये उत्तीर्ण ही न हुए थे, श्रेणी में प्रथम भी आये थे। मुख्याध्यापक ने प्रसन्न होकर इन्हें दो श्रेणियाँ चढ़ाने का विचार किया। उन्होंने इन्हें बुलाकर पूछा—तुम सातवीं के स्थान पर छठी में जाना चाहते हो? आज कोई अध्यापक किसी छात्र से यह बात पूछे तो वह उन्मत्त माना जायगा और छात्र सिर धुनने लगेगा। राजनबाबू को इस प्रश्न से कुछ विस्मय, कुछ हर्ष और कुछ भय हुआ। विस्मय इस कारण कि वह अपने को उतना योग्य न समझते थे। हर्ष इस कारण कि एक वर्ष में दो वर्ष की पढ़ाई करनी थी। भय इस कारण कि छठी श्रेणी में कहीं अन्य छात्रों से पिछड़ न जायँ। दस-ग्यारह बरस के बच्चे ने बड़े भाई से परामर्श करने की अनुमति माँगी। बड़े भाई राजन बाबू के सहित मुख्याध्यापक के पास पहुँचे। मुख्याध्यापक ने राजन बाबू को आठवीं से छठी में कर ही दिया। बच्चे का बरस भर बच गया। छात्र हों तो राजन बाबू जैसे, गुरु हों तो इन मुख्याध्यापक जैसे।

जब इनके बड़े भाई एंट्रेंस परीक्षा में उत्तीर्ण होकर छपरा से पटना में जाकर पटना कालेज में प्रविष्ट हो गये तब इन्हें भी वहीं जाना पड़ा। ये टी० के० घोष एकेडेमी में पढ़ने लगे। इन्हें अनुभव हुआ कि ये दूसरे छात्रों से पिछड़े हुए हैं। इसलिए अपनी न्यूनता पूरी करने के लिए इन्होंने विशेष परिश्रम आरंभ कर दिया। जो पूछना होता भाई से अथवा अपने साथियों से पूछते। वहाँ भी निवास-स्थान पर पढ़ाने के लिए कोई शिक्षक नियुक्त करने की आवश्यकता न समझी गई।

जब राजन बाबू के बड़े भाई एफ० ए० की परीक्षा में सफल होकर कलकत्ता चले गये तब इन्हें हथुआ-स्कूल में प्रविष्ट कराया गया। वहाँ की पढ़ाई विचित्र थी। इतिहास के पन्ने अक्षरशः कंठस्थ कराये जाते थे। जो न कर पाता उसे डाँट-डपट पड़ती थी। यह काम राजन बाबू के बस का न था। एक छात्र ने इनसे कहा—जो बात १२० बार दुहरा ली जाती है, वह अवश्य कंठस्थ हो जाती है। रात को शीघ्र सो जाने की इन्हें पुरानी बान थी तो भी रात को एक-दो बजे तक जाग कर पाठ की १२० बार आवृत्ति करते परन्तु सफल न हो पाते। अध्यापक धमका कर कहता—तुम चौथी श्रेणी के योग्य नहीं हो, तुम्हें फिर पाँचवीं में भेज दिया जायगा। अन्त में अपने भाई से परामर्श कर ये छपरे के स्कूल में चौथी श्रेणी में प्रविष्ट हो गये।

छपरा के विद्यालय में इनकी बुद्धि मानों फिर चमक उठी। शीघ्र ही ये योग्य छात्रों में गिने जाने लगे। उस विद्यालय के बंगाली अध्यापक श्री रसिकलाल राय छात्रों से विशेष प्रेम करते थे और पढ़ाते भी बहुत अच्छे ढंग से थे। राजन बाबू उनके विशेष कृपा-पात्र थे। एक दिन उन्होंने राजन बाबू से कहा—तुम परिश्रम करोगे तो सब छात्रों को मात कर जाओगे। उनकी बात क्रमशः

सच सिद्ध हुई। वार्षिक परीक्षा में राजन बाबू ने चतुर्थ स्थान पाया। इसी प्रकार तीसरी से दूसरी और दूसरी से प्रथम श्रेणी में पहुँचते समय वार्षिक परीक्षाओं में इनका स्थान क्रमशः तीसरा और पहला रहा। रसिक बाबू पढ़ाते-लिखाते ही न थे, छात्रों को सच्चरित्र तथा महत्त्वाकांक्षी बनाने का भी यत्न करते थे। वे छात्रों को निज की बातें भी बताते थे। उनकी योग्यता व चरित्र से राजन बाबू विशेष रूप से प्रभावित हुए। जब राजन बाबू एंट्रेंस कक्षा में पढ़ते थे तब श्री रसिकलाल राय ने इनसे कहा—"तुम विशेष परिश्रम करोगे तो तुम्हें विश्वविद्यालय में उच्च स्थान प्राप्त हो जायगा।"

जिन दिनों राजन बाबू दूसरी श्रेणी की वार्षिक परीक्षा दे रहे थे, छपरा में प्लेग का प्रकोप था। सैंकड़ों लोग प्रतिदिन काल के गाल में घुसे चले जाते थे। राजन बाबू ने दो ही दिन परीक्षा दी थी कि गले पर गिलटी निकल आई और जोर का ज्वर चढ़ गया। इनके पिता समाचार पाते ही आ पहुँचे। उन्होंने पुत्र को गाँव ले जाकर अपनी ही चिकित्सा से स्वस्थ कर दिया। राजन बाबू ने दो ही विषयों की परीक्षा दी थी। दोनों में ही प्रथम आये थे और अंक भी इतने अधिक आये थे कि अन्य विषयों में परीक्षा लिये बिना ही इन्हें प्रथम श्रेणी में चढ़ा दिया गया।

विद्यालय में तो राजन बाबू फ़ारसी पढ़ा करते थे परन्तु हिन्दी-संस्कृत का प्रेम भी इनमें पर्याप्त उत्पन्न हो गया था। विद्यालय में संस्कृत के प्रधानाध्यापक थे—रघुनंदन त्रिपाठी। राजन बाबू उनके घर पर जा पहुँचते और संस्कृत सीखा करते। 'लघुकौमुदी' संस्कृत का एक छोटा-सा व्याकरण है जिसमें पाणिनि ऋषि की 'अष्टाध्यायी' (संस्कृत के व्याकरण का अपूर्व ग्रंथ) के सूत्र विशेष सुबोध क्रम से दिये हुए हैं। राजन बाबू ने 'लघुकौमुदी'

से अनेक सूत्र भी कंठस्थ कर लिये।

राजन बाबू पढ़ाई-लिखाई में ही चतुर न थे, खेल-कूद में भी विशेष रुचि रखते थे। वे हाकी, क्रिकेट, फुटबाल, कबड्डी, छिक्का आदि बड़े चाव से खेला करते थे।

एक संध्या को वे अपने अग्रज के साथ भ्रमण को जा रहे थे कि एक व्यक्ति ने आकर हाथ में तार दे दिया। बड़े भाई तार पढ़ कर फूले न समाये। उसमें लिखा था—'राजेन्द्रप्रसाद एंट्रेंस परीक्षा में विश्वविद्यालय भर में प्रथम आये हैं।' राजन बाबू भी प्रसन्न हुए। दोनों भाई भागते-भागते घर पहुँचे। जब घर वालों को सफलता का महत्त्व विदित हुआ तो वे जामे में फूले न समाये।

उस दिन श्री रसिकलाल राय की भविष्य-वाणी सत्य सिद्ध हुई। उस दिन राजन बाबू के परिवार का नाम उज्ज्वल हो गया। उस दिन विहार प्रान्त का मस्तक ऊँचा हो गया। यह प्रथम अवसर था जब कि एक विहारी बालक ने विश्वविद्यालय में प्रथम स्थान प्राप्त किया था। इससे पहले यह गौरव बंगालियों को ही मिला करता था। पाठकों को यह महत्त्वपूर्ण बात भूलनी न चाहिए कि उन दिनों विहार, उड़ीसा, बंगाल, आसाम और बर्मा के विद्यार्थी कलकत्ता विश्वविद्यालय में ही परीक्षाएँ देते हैं। शेष प्रान्तों में अभी विश्वविद्यालय बने ही न थे। इसलिए समग्र पूर्वी भारत में इस सफलता के कारण राजन बाबू का नाम सूर्य के समान चमक उठा। वस्तुतः यह एक बहुत बड़ी और स्तुत्य सफलता थी।

परीक्षा-परिणाम घोषित होने के तुरन्त बाद राजन बाबू अपने सच्चे हितैषी अध्यापक रसिक बाबू के चरणों में पहुँचे। राजन बाबू ने कलकत्ते के प्रेसिडेंसी कालेज में पढ़ने का निश्चय किया हुआ था। इसलिए रसिक बाबू ने इनको बड़े नगरों के खेल-तमाशों

और अनेक प्रकार की बुराइयों से बचे रहने तथा आगामी परीक्षाओं में भी प्रथम पद प्राप्त करने की प्रबल प्रेरणा की।

राजन बाबू उनके चरणों में सीस झुका और असीस पा प्रेसिडेंसी कालेज में प्रविष्ट हो गये। इनके बड़े भाई भी वहीं थे। दुर्भाग्य से इन्हें वहाँ कई मास तक विषम ज्वर (Malaria) होता रहा और इन्हें वर्ष भर निरन्तर कुनैन खानी पड़ी। तभी से इन्हें श्वासरोग भी हो गया। कुछ काल पश्चात् एक होम्योपैथ ने बताया कि आपके श्वास-रोग का कारण वही कुनैन का अत्यधिक सेवन है।

कई मास तक कालेज न जा सकने के कारण ये पढ़ाई में पिछड़ गये, तो भी इन्होंने साहस न छोड़ा। श्री रसिक बाबू के उपदेश इनके कानों में गूँजा करते थे। इन्होंने नियमपूर्वक मनोयोग से अध्ययन आरंभ किया। मन के सामने सदा यही लक्ष्य रहता कि परीक्षा में प्रथम पद पाना है। कक्षा में जो पुस्तकें पढ़ाई जाती थीं, उसी विषय की तीन-चार पुस्तकें और पढ़ लेते थे। जिन विषयों में निज को शिथिल अनुभव करते थे, उन पर अधिक ध्यान देते थे। विश्वविद्यालय के गत वर्षों के प्रश्न-पत्रों के उत्तर भी भली-भाँति तैयार कर लिये थे। इस सज्जा का सुपरिणाम यह निकला कि ये एफ़. ए. में भी प्रथम आये। राजन बाबू के इष्ट मित्रों और सगे-सम्बन्धियों को परम हर्ष हुआ। १९०२ में मैट्रिक परीक्षा में प्रशंसनीय सफलता पाने पर तीस रुपये मासिक छात्रवृत्ति मिली थी, अब १९०४ में एफ़० ए० में सर्वप्रथम रहने पर पचास रुपये मासिक छात्रवृत्ति निश्चित हो गई। उन दिनों के पचास रुपये आज के तीन सौ से न्यून न थे। उन दिनों राजन बाबू अपने अध्यापकों में से डाक्डर जे० सी० बोस, डॉ० पी० सी० राय और प्रोफ़ेसर विनयेन्द्रनाथ सेन की योग्यता व सज्जनता पर

बहुत मुग्ध थे।

एफ़० ए० में राजन बाबू विज्ञान विषय में विशेष रुचि रखते थे। उसी की तैयारी इन्होंने विशेष परिश्रम से की थी। परन्तु संयोग से, इन्हें वार्षिक परीक्षा में विज्ञान में अधिक अंक प्राप्त न हुए थे। यदि ये अपने विज्ञान के अध्ययन को चालू रखते तो न जाने भारत का नाम किन-किन अद्भुत आविष्कारों से प्रख्यात करते परन्तु उक्त घटना से हतोत्साह होकर इन्होंने बी० ए० में अंग्रेजी, इतिहास और अर्थशास्त्र में आनर्स लेने का निश्चय किया। बी० ए० की परीक्षा में प्रथम रह कर इन्होंने एक बार फिर अपनी प्रतिभा की धाक जनता के हृदयों पर बैठा दी। इस अवसर पर इन्हें नब्बे रुपये मासिक की छात्रवृत्ति प्राप्त हुई।

इसके पश्चात् इन्होंने अंग्रेजी में एम० ए० किया और वकालत की बी० एल० परीक्षा दी। यद्यपि इन दोनों परीक्षाओं में ये प्रथम कक्षा में उत्तीर्ण हुए, तो भी पूर्व के समान प्रथम स्थान पाने से वंचित रहे। पाठक चकित होंगे कि ऐसा सुयोग्य युवक इन परीक्षाओं में सहपाठियों को मात क्यों न दे सका। सच पूछिये तो इसके कई कारण थे। पहला यह कि इनके पूज्य पिता जी का स्वर्गवास हो गया था और इनके भाई के कन्धों पर गृहस्थी का भार आ पड़ा था। भाई पर अधिक भार डालना अनुचित जान ये अपनी पढ़ाई के साथ-साथ दूसरों को पढ़ाने का कार्य भी करने लगे थे। इसी प्रकार जिन दिनों ये बी० एल० की तैयारी में व्यस्त थे, उन्हीं दिनों निज व्यय पूरा करने के लिए कलकत्ते के सिटी-कालेज में प्रोफ़ेसर भी हो गये थे। अन्त में इन्होंने निश्चय किया कि एम० एल० की परीक्षा देनी चाहिए और पिछली कमी को पूरा करना चाहिए। यह निश्चय कर इन्होंने उग्र तपस्या आरंभ की और एम० एल० की परीक्षा में विश्वविद्यालय का

रिकार्ड तोड़ दिया। यह उपाधि कलकत्ता विश्वविद्यालय उन्हीं गिने-चुने विद्यार्थियों को दिया करता था जो विधान की सूक्ष्मताओं से प्रगाढ़ परिचय का प्रमाण देते थे। इस परीक्षा में अपूर्व सफलता प्राप्त करने से राजन बाबू का यश दूर-दूर तक फैल गया।

कार्य-क्षेत्र में—

ब्रह्मचर्य की अवस्था में विद्या प्राप्त की जाती है और उसकी समाप्ति पर मनुष्य गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है। परन्तु राजन बाबू के साथ बात और ढंग से बनी। इनके माता-पिता ने इनका विवाह तभी कर दिया था, जब ये केवल १२ वर्ष के थे और पाँचवीं कक्षा के विद्यार्थी थे। आज राजन बाबू बाल-विवाह के सर्वथा विरुद्ध हैं परन्तु उन दिनों बचपन था। न ये विवाह का तात्पर्य समझते थे, न माता-पिता का विरोध कर सकते थे।

एम० ए० में उत्तीर्ण होने पर उन्होंने गृहस्थी का भार अपने कंधे पर लेने का निश्चय किया। यश तो इनका परीक्षा-परिणामों से ही प्रसृत हो चुका था। ये झट मुज़फ़्फ़रपुर के एक कालेज में प्रोफ़ेसर हो गये। इन्होंने वह काम लगभग वर्ष-भर सफलता-पूर्वक किया परन्तु पारिवारिक जनों के विरोध से इन्होंने वह व्यवसाय छोड़ दिया। इन्होंने वकील बनने का संकल्प किया और कलकत्ते पहुँच कर बी० एल० की उपाधि प्राप्त की। सन् १९११ ई० से इन्होंने वकालत आरंभ कर दी। यह व्यवसाय इन्होंने बहुत परिश्रम से किया। इस कारण इन्हें लार्ड सिन्हा, श्री हसन इमाम, श्री रासबिहारी घोष तथा श्री शमसुलहुदा नामक नामी वकीलों के साथ काम करने का अवसर मिला। शीघ्र ही इनकी वकालत दिन-दूनी रात-चौगुनी चमकने लगी तथा ये न्याया-धीशों एवं वादि-प्रतिवादियों के प्यारे बन गये। सरस्वती के उपासक पर लक्ष्मी भी कृपालु हो गईं और इन्हें धन-संपदा की

न्यूनता न रही। इनकी वैधानिक योग्यता से कलकत्ता विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री आशुतोष मुखर्जी बहुत संतुष्ट हुए और उन्होंने इन्हें कलकत्ता के विधान-महाविद्यालय (Law College) में उपाध्याय नियुक्त करा दिया।

१६११ से १६१६ ई० तक राजन बाबू कलकत्ते में ही वकालत करते रहे। १६१६ में पटने में उच्च न्यायालय की स्थापना हो गई। तब अन्य बिहारी वकीलों के समान इन्होंने भी कलकत्ते से प्रस्थान किया और पटना में काम करने लगे। उन दिनों महात्मा गांधी अपने उद्योग से देश में नई स्फूर्ति उत्पन्न कर रहे थे। राजन बाबू भी राजनीतिक जागृति से रहित न थे। इसलिए जब गांधी जी ने १६२१ में असहयोग का बिगुल बजाया तो राजन बाबू भी सहस्रों रुपयों की मासिक आय को कानी कौड़ी की तरह ठुकरा कर राजनीतिक क्षेत्र में कूद पड़े।

देश-सेवा—

देश-सेवा तथा समाज-सेवा के बीज राजन बाबू के हृदय में इनके पिता तथा अग्रज ही बो चुके थे। इनके पिता पास-पड़ोस के दुखियों को निःशुल्क दवा-दारू दिया करते। इनके भाई जब कलकत्ते तथा प्रयाग से लौटते तब इनके संमुख नगरों की राजनीतिक जागृति तथा स्वदेशी वस्तुओं की चर्चा करते। १८६६ में जब वे प्रयाग से लौटे थे, तब वे अपने साथ स्वदेशी वस्त्र ले आये थे। उन्हीं के समान राजन बाबू ने भी तब से स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग का व्रत ले लिया। यहाँ तक कि १६०२ में मैट्रिक परीक्षा देते समय इन्होंने लेखनी व निब भी स्वदेशी ही खरीदी थी। हाँ यह बात अवश्य है कि कभी-कभी सरल राजन बाबू कपटी दुकानदारों की बातों में आकर विदेशी वस्तुओं को भी स्वदेशी समझ कर खरीद लिया करते थे।

उक्त घटना से सिद्ध होता है कि राजन बाबू की राजनीतिक चेतना उनके स्कूली जीवन से ही आरंभ हो गई थी। परन्तु वे स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग से ही संतुष्ट हो जाने वाले व्यक्ति न थे। उनमें देश-सेवा करने की उत्कट उत्कंठा तब जगी जब वे कलकत्ते के प्रेसिडेंसी कालेज में अध्ययन किया करते थे। बात यों हुई कि उन दिनों कलकत्ते में श्री सतीशचंद्र मुखर्जी ने 'डॉन सोसाइटी' नामक एक संस्था की स्थापना की थी। वह सभा निःशुल्क रूप से छात्रों को अध्ययन में सहायता देती थी और उन्हें चरित्रवान् तथा देश-प्रेमी बनाने का भी उद्योग करती थी। राजन बाबू इस संस्था के सक्रिय सदस्य बन गये। यहाँ प्रेरणा पाकर राजन बाबू ने, जो अभी छात्र ही थे, बिहार में जागृति उत्पन्न करने के लिए बिहारी छात्र-संमेलन नामक संस्था की नींव रखी। इस संस्था को इन्होंने बड़ी कुशलता से संगठित किया और बिहार के प्रत्येक नगर व उपनगर में इसकी शाखाएँ स्थापित कीं। यह संसद् १६०६ से १६२० तक बिहारी छात्रों में राजनीतिक सेवा के भाव भरती रही। इसके वार्षिक अधिवेशनों की अध्यक्षता देश के गण्य-मान्य नेता किया करते थे। इस संस्था से स्फूर्ति पाकर कई नवयुवक ऐसे निकले जिन्होंने आगामी वर्षों में भारत को स्वतंत्र कराने के लिए सहर्ष अनेक कष्ट सहे, और प्रसन्नतापूर्वक अनेक त्याग किये।

सन् १६०५ में कॉंग्रेस ने बंगाल के विभाजन का विरोध उग्ररूप से आरंभ किया था। स्थान-स्थान पर सभाएँ होती थीं, जिनमें सुरेन्द्र बाबू, विपिनचंद्र पाल, अरविन्द घोष के भाषण होते थे। राजन बाबू उन सार्वजनिक सभाओं में उपस्थित हुआ ही करते थे। वे ७ अगस्त १६०५ की उस सभा में भी संमिलित हुए थे जिसमें स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग तथा विदेशी वस्तुओं के

बहिष्कार का निश्चय हुआ था। इन सभाओं से राजन बाबू के हृदय में देश-प्रेम की जोत दिन-दिन अधिक प्रदीप्त होती गई। १६०६ में कॉंग्रेस का वार्षिक अधिवेशन कलकत्ता में हुआ। युवक राजेन्द्र के मन में कॉंग्रेस की सेवा का भाव उदित हुआ। इन्होंने अपना नाम स्वयंसेवकों में लिखा दिया। सौभाग्य से इनकी नियुक्ति पंडाल में हुई। इससे इन्हें लोकमान्य तिलक, सरोजिनी नायडू, पं० मालवीय तथा श्री जिन्ना जैसे प्रभावशाली वक्ताओं और मान्य नेताओं के ओजस्वी भाषण सुनने का सुनहरा अवसर मिला। वह अधिवेशन बहुत आवेशपूर्ण था। कारण, कॉंग्रेस में गरमदल व नरमदल का आविर्भाव हो चुका था। दोनों दलों में समझौता कराने के उद्देश्य से दादा भाई नौरोजी को इंगलैंड से सभाध्यक्ष बनने के लिए आमंत्रित किया गया था। इस अधिवेशन से राजन बाबू इतने अधिक प्रभावित हुए कि इन्होंने कॉंग्रेस का सदस्य बनने का विचार स्थिर कर लिया। अन्तत: १६०६ में ये कॉंग्रेस के सदस्य बन ही गये। तब से अब तक इनका सम्बन्ध कॉंग्रेस से अविच्छिन्न रूप से चला आ रहा है।

पहले बिहार बंगाल का ही एक भाग था। जब वह बंगाल से पृथक् कर दिया गया तब पटना में विश्वविद्यालय स्थापित करने की योजना बनाई गई। राजन बाबू तब कलकत्ते से पटना आ चुके थे। अध्ययन करने पर उन्हें वह योजना अनेक त्रुटियों से पूर्ण प्रतीत हुई। न उससे निर्धन विद्यार्थियों को कोई लाभ पहुँचने की संभावना थी, न ग्रामीण छात्रों को। उसमें आवश्यक सुधार करने के उद्देश्य से इन्होंने छात्र-संमेलन के अध्यक्ष बन कर उसका तीव्र विरोध किया। इन्होंने बिहार-प्रान्तीय एसोसिएशन के एक विशेष अधिवेशन में उसके दोष दिखाये। परिणाम यह हुआ कि सरकार को लाचार होकर इनका मत स्वीकार करना

पड़ा। विद्या के प्रसार में विशेष रुचि रखने के कारण ये १६१७ ई० में नये विश्वविद्यालय की सीनेट के सदस्य निर्वाचित हुए। विश्वविद्यालय की अनेक समितियों के सदस्य के रूप में इन्होंने शिक्षा के प्रचार व सुधार में प्रशंसनीय सहयोग दिया। इन्होंने इस बात का विशेष उद्योग किया कि शिक्षा सस्ती और सुलभ हो। निर्धन छात्रों तथा छात्राओं को अध्ययन में विशेष सुविधाएँ प्रदान की जायँ। और सब से बड़ी बात यह कि उसका माध्यम अँग्रेजी के बदले हिन्दी बनाया जाय।

राजन बाबू काँग्रेस के सदस्य तो १६०६ ई० में बन चुके थे परन्तु इन्होंने उसमें सक्रिय भाग लेना तब आरंभ किया जब गांधी जी ने १६१७ में चम्पारन में सत्याग्रह का बिगुल बजाया और जब बिहार के सारन जिले के किसान गोरों के अत्याचारों से बहुत पीड़ित थे। नील के व्यापारी गोरे किसानों से प्रति बीघा तीन कठे नील की खेती करवाते थे। उनसे बेगार भी लेते थे और उनका शोषण भी करते थे। निर्बल, अशिक्षित किसानों की पुकार गांधी जी के कानों में पहुँची। जैसे ग्राह से ग्रस्त गज की टेर सुनकर भगवान् उसका कष्ट निवारण करने के लिए आ पहुँचे थे, वैसे ही गांधी जी चंपारन जा पहुँचे। उन्होंने व्यथित किसानों द्वारा कथित अत्याचारों को सुनना और लिखना आरंभ कर दिया। राजेन्द्र बाबू तथा अन्य कुछ बिहारी नेता गांधी जी के साथ थे। सरकार ने गांधी जी को यह जाँच बंद करने तथा बिहार से बाहर हो जाने की आज्ञा दी। बात स्पष्ट थी। यदि वे किसानों के कष्ट नष्ट करना चाहते तो उन्हें सरकार से युद्ध छेड़ना ही पड़ता, कारागार की यातनाएँ सहनी ही पड़तीं। उन्होंने राजन बाबू तथा अन्य साथियों से परामर्श किया। सब साथी 'स्वराज्य-मंदिर' जाने पर तुल गये। सरकार की आज्ञा की

अवज्ञा की गई। गांधी जी जिस पुण्य कार्य में लगे थे, लगे रहे। विवश होकर सरकार को अपना आदेश लौटाना पड़ा। बिहार के ग्रामों की इस यात्रा और कार्य में राजन बाबू ने गांधी जी का ऐसी प्रसन्नता से साथ दिया जैसी प्रसन्नता से एक सैनिक अपने सेनापति को देता है। उस ग्राम-यात्रा में राजन बाबू को अनेक बार अपना संभार स्वयं उठाना पड़ा, बर्तन स्वयं माँजने पड़े, झाड़ू स्वयं लगाना पड़ा। ये सब कार्य करते हुए उन्हें वही प्रसन्नता प्राप्त हुई, जो बच्चों को खेल-कूद द्वारा प्राप्त होती है। चंपारन के सत्याग्रह में भाग लेने से राजन बाबू को एक शिक्षा भी मिली। वह यह कि देश की सेवा करने के लिए ठाट-बाट के जीवन को ठुकरा कर ग्रामवासियों के समान सादगी से रहना होगा। तब से इन्होंने अपने को इसी मार्ग पर चलाना आरंभ कर दिया।

राजन बाबू में एक विशेष गुण यह है कि ये मार्ग का निश्चय कर लेने और चलना आरंभ कर देने पर न रुकते हैं, न पीछे मुड़ते हैं। राजपूतों के समान सदा इनका पग आगे ही पड़ता है। एक बार काँग्रेस का सदस्य बन चुकने पर ये नियमपूर्वक उसके अधिवेशनों में संमिलित होने लगे। १९१२ ई० में ये अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी के सदस्य निर्वाचित हुए। खेड़ा में सत्याग्रह करने के लिए ये गुजरात भी गये। अनेक वर्षों तक काँग्रेस के संयुक्त मंत्री भी रहे।

प्रथम महायुद्ध में गांधी जी ने अँग्रेजों को बहुत सहायता दी थी। कारण, उन्हें विश्वास दिलाया गया था कि युद्ध में विजय के बाद भारतीयों को अनेक राजनीतिक अधिकार दिये जायँगे। परन्तु विजयी होने पर उन्होंने तोते की तरह आँखें फेर लीं। अधिकार देना तो दूर, अत्याचारों का ताँता बँध गया। रौलट एक्ट लगाकर जनता को दुःखी किया गया। जलियाँवाला बाग

(अमृतसर) में सहस्रों निहत्थे, शान्तिमय लोगों को मशीनगनों की गोलियों से भून डाला गया।

इस अँधेरगर्दी और अमानुषिक अत्याचार से देश की जनता जाग उठी। उसने गांधी जी के नेतृत्व में स्वराज्य लेने का निश्चय कर लिया। गांधी जी ने असहयोग तथा सत्याग्रह के आन्दोलन छेड़ दिये। उन्होंने जनता को यह प्रेरणा दी कि वह सरकार को सहयोग न दे, उसके आदेशों को न माने, सरकारी नौकरियाँ छोड़ दे, न्यायालयों तथा कौंसिलों में न जाय, सरकारी स्कूलों तथा कालिजों से बच्चों को उठाकर राष्ट्रीय संस्थाओं में पढ़ाये। राजन बाबू उच्च कोटि के वकील थे। सहस्रों रुपयों की मासिक आय थी। परन्तु जब नेता की आज्ञा मिली तो तुरन्त वकालत पर लात मार दी। क्षण भर भी तो न सोचा कि भविष्य में निर्वाह कैसे होगा। भगवान् पर विश्वास कर, निज काम-काज छोड़ कर देश-सेवा को निकल पड़े। इनके भाई ऑनरेरी मजिस्ट्रेट थे और सरकारी उपाधिधारी भी। उन्होंने मजिस्ट्रेट का पद त्याग दिया, और उपाधि लौटा दी। इन्होंने अपने बच्चों को भी राजकीय विद्यालयों से उठा लिया। इस प्रकार गांधी जी के आदेशों पर पहले स्वयं अक्षरशः आचरण कर ये दूसरों को भी उसी मार्ग पर अग्रसर होने की प्रेरणा देने को निकल पड़े। यह प्रथम बार थी जब इन्होंने सारे बिहार प्रान्त में भ्रमण किया। प्रत्येक गाँव, उपनगर तथा नगर में जाकर भाषण दिये। राजेन्द्र बाबू के भाषणों तथा उनके सद् आचरण से प्रभावित होकर जनता ने पूरा सहयोग दिया। कारागार बस गये। सरकारी विद्यालयों तथा न्यायालयों में उल्लू और गीदड़ बोलने लगे। राजेन्द्र बाबू ने भगीरथ उद्यम से बिहार भर में शराब और विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का, स्वदेशी वस्तुओं के प्रचार का तथा पंचायतें और

राष्ट्रीय विद्यालय खोलने का महान् कार्य किया। उन दिनों इनके उद्योग से बिहार में ६४१ स्कूल, एक कालेज और एक विद्यापीठ की स्थापना हुई जिसके कुलपति यही नियुक्त किये गये।

उन्हीं दिनों बैजवाड़ा कांग्रेस ने देश में कांग्रेस के एक करोड़ सदस्य बनाने, एक करोड़ रुपया संगृहीत करने तथा बीस लाख चर्खे चलवाने का निश्चय किया। राजेन्द्र बाबू ने बिहार में इस कार्य को इतनी सच्ची लगन से किया कि उन्हें आशा से बढ़कर सफलता मिली। कांग्रेस के अन्य नेता उनकी योग्यता, शक्ति व सच्ची लगन पर मुग्ध हो गये। परिणाम यह हुआ कि १९२१ में अहमदाबाद कांग्रेस में वे कार्य-समिति के सदस्य बनाये गये।

जिन दिनों यह आन्दोलन चल रहा था, उन्हीं दिनों उत्तर प्रदेश के चौरीचौरा नामक ग्राम में पुलिस ने ग्रामीणों पर बहुत अधिक अत्याचार किया। उससे ग्रामवासी भी गरम हो उठे। वे भूखे भेड़ियों की भाँति पुलिस पर टूट पड़े। कुछ सिपाही मारे गये। थाना राख बन कर उड़ गया। यह सुन कर गांधी जी ने सत्याग्रह स्थगित कर दिया। देशबन्धुदास तथा मोतीलाल नेहरू को यह बात एक आँख न भाई और उन्होंने स्वराज्य-पार्टी अलग बना ली। परन्तु राजन बाबू अहिंसा के महत्त्व को भली भाँति जान चुके थे। इन्होंने गांधी जी से मुख न मोड़ा। इस कारण ये गांधी जी के परम प्रिय तथा विशेष विश्वसनीय हो गये।

१९११ के बाद १९२२ में बिहार में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। पहले अधिवेशन का प्रबन्ध भी संतोषजनक न हुआ था और आर्थिक घाटा भी पड़ा था। राजन बाबू ने इस अधिवेशन को सर्वथा सफल बनाने का दृढ़ संकल्प कर लिया। इस कार्य के लिए इन्होंने स्थान-स्थान पर जाकर भाषण दिये और धन-संग्रह किया। इन्होंने अधिवेशन की व्यवस्था इतनी उत्तम की कि उसकी

सादगी व स्वच्छता पर नेता व दर्शक इन्हें 'धन्य-धन्य' कहने लगे।

इस अधिवेशन में नेता दो दलों में विभक्त हो गये। एक दल विधान-सभाओं में जाने का पक्षपाती था; दूसरा ग्रामों आदि में रचनात्मक कार्य करने का। पहले दल के नेता देशबन्धुदास व मोतीलाल थे और दूसरे के राजा जी, पटेल और जमनालाल बजाज। राजेन्द्र बाबू को दूसरे दल की कार्य-प्रणाली से प्रेम था। इन्होंने उसी का समर्थन किया और उसी की विजय हुई। गांधी जी ने कारागार से मुक्त होकर दोनों दलों को अपने-अपने ढंग से कार्य करने की अनुमति दे दी। राजन बाबू राष्ट्रीय शिक्षा व ग्रामोद्योगों के कार्य में जुट गये। दोनों दलों वाले प्रायः एक दूसरे को बुरा-भला कहते और दोष दिखाते रहते थे। परन्तु राजन बाबू का व्यक्तित्व इतना ऊँचा था कि विपक्षी भी उन पर विश्वास करते तथा उनसे सम्मति लिया करते थे।

१९२४ में ये पटना की नगर-पालिका के प्रधान निर्वाचित हुए। उन दिनों उसकी व्यवस्था ठीक ढंग की न थी। आय न्यून थी, व्यय अधिक। घूँसखोरी का बाजार गरम था। नगर की स्वच्छता व मार्गों आदि में उचित सुधार के उद्देश्य से इन्होंने चुंगी की चर्चा चलाई परन्तु सदस्यों का सहयोग न मिलने के कारण इन्होंने लगभग सवा वर्ष बाद त्याग-पत्र दे दिया। अपने कार्य-काल में इन्होंने मेहतरों की दशा सुधारने का तथा उनसे सुरा न पीने की प्रतिज्ञा लेने का प्रशस्य कार्य किया।

१९२४ से १९२६ तक इन्होंने अपना समय प्रायः खादी के प्रचार में बिताया। इन्होंने पटना में एक विराट् प्रदर्शिनी का आयोजन किया। उसमें राजकीय अधिकारियों तक को निमंत्रित कर इन्होंने दिखाया कि खादी देश से दरिद्रता को दूर भगाने में कहाँ तक लाभदायक हो सकती है।

विदेश-यात्रा—

राजन बाबू १६२७ में मद्रास की काँग्रेस में सपरिवार संमिलित हुए। अधिवेशन की समाप्ति पर इन्होंने दक्षिण भारत तथा लंका के प्रसिद्ध तीर्थ-स्थानों को देखने का निश्चय किया। इस उद्देश्य से इन्होंने मदुरा, रामेश्वर तथा लंका की यात्रा की। लंका में इन्होंने सीतापूलिया नामक स्थान के दर्शन किये, जहाँ रावण ने सती सीता को बन्दी बना कर रखा था। इन्होंने अनुराधापुर में वह बोधिवृक्ष देखा, जिसकी शाखा अशोक के पुत्र महेन्द्र ने गया से ले जाकर वहाँ पर आरोपित की थी। साथ ही उस २२०० वर्ष से निरन्तर प्रदीप्त दीप के दर्शन किये, जिसे सर्वप्रथम महेन्द्र ने प्रदीप्त किया था।

वकालत का त्याग करने से पहले ही राजन बाबू से एक मुवक्किल श्री बाबू हरि जी ने अपने पुराने अभियोग में सहायता करने की प्रतिज्ञा ले रखी थी। जब डुमराँव के महाराज ने प्रिवी कौंसिल में उस अभियोग की अपील कर दी तब राजन बाबू को अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार उनकी सहायता के लिए इंग्लैंड जाना पड़ा। इन्होंने विचार किया—'वचन भी पूरा कर आयँगे और योरुप भी देख आयँगे।' इस प्रकार एक पंथ दो काज हो जायँगे।

इस निश्चय के अनुसार वे साबरमती में गांधी जी से विदा लेकर कैसरहिंद जहाज पर बैठ कर हिन्द से चल दिये। इन्होंने काहिरा में उतर कर मिश्र के पिरामिड, स्फिंक्स तथा अद्भुतालय देखे। इसके पश्चात ये मार्सेल्स, पेरिस और केले को देख कर लंदन पहुँचे।

इंग्लैंड में इन्होंने अभियोग में ऐसे मनोयोग से अंग्रेज बैरिस्टरों को सहयोग दिया कि वे इनकी वैधानिक योग्यता से चकित रह गये। कुछ दिनों बाद वादी-प्रतिवादियों में समझौता

हो गया और राजन बाबू योरुप का भ्रमण करने चल पड़े। आस्ट्रिया के सन्तासवर्ग नामक ग्राम में उन दिनों एक युद्ध-विरोधी संमेलन होने वाला था। उसमें सब देशों, जातियों और धर्मों के लोग भाग लेने वाले थे। राजन बाबू स्वयं शान्त तथा सर्वत्र शान्ति के इच्छुक व्यक्ति हैं। ये भी उस संमेलन में सम्मिलित हुए। जब सम्मेलन के संचालकों को विदित हुआ कि राजन बाबू गांधी जी के साथी हैं, तब उन्होंने इनसे सभा में भाषण देने की प्रार्थना की। राजन बाबू ने अपने व्याख्यान में अहिंसा, सत्य और सत्याग्रह का महत्त्व इतनी विशदता व कुशलता से वर्णित किया कि श्रोता अत्यन्त प्रसन्न हुए। वियना की एक सभा में भी राजन बाबू ने युद्ध से दूर रहने के लिए सुन्दर भाषण दिया। ग्राट्ज में जब वे युद्ध के विरोध में व्याख्यान देने को सभा-स्थल पर पहुँचे तो युद्ध के समर्थक लोगों ने इन पर हल्ला बोल कर इन्हें घायल कर दिया। समाचार-पत्रों ने अगले दिन आक्रमण करने वालों के कुकृत्य की तीव्र निन्दा की और राजन बाबू के सौजन्य की भूरि प्रशंसा की। इसके अनन्तर राजन बाबू स्विटजरलैंड में रोम्याँ रोलाँ नामक प्रख्यात विद्वान् से मिल कर तथा हालैंड, जर्मनी, इटली, फ्राँस आदि देशों को देख कर स्वदेश लौट आये।

उन दिनों भारत में 'साइमन कमीशन' देश की राजनीतिक स्थिति का अध्ययन करने के लिए स्थान-स्थान पर जा रहा था। काँग्रेस ने काले झंडों तथा "साइमन! वापिस जाओ" के नादों से ही उसके 'स्वागत' का निश्चय किया। पंजाब व उत्तर प्रदेश में कमीशन के पहुँचने पर महान् प्रदर्शन किये गये। पुलिस ने लाठी बरसाई। लाला लाजपतराय उन्हीं लाठियों की चोटों से स्वर्ग सिधार गये और पंडित नेहरू घायल हो गये। बिहार में राजन बाबू ने प्रदर्शनों की व्यवस्था ऐसी उत्तमता से की कि कहीं

मार-पीट की नौबत न आई।

जब १६२६ का समस्त वर्ष व्यतीत हो गया और अँग्रेजों ने भारत को स्वराज्य न दिया तब लाहौर-काँग्रेस ने पूर्ण-स्वराज्य का प्रस्ताव स्वीकृत कर लिया। गांधी जी ने देश-भर में नमक का विधान भंग करने का आदेश दिया। स्थान-स्थान पर अवैध रूप से नमक बनाया जाने लगा। बिहार में इस सत्याग्रह का संचालन राजन बाबू ने किया। स्थान-स्थान पर भाषण दिये। सहस्रों सत्याग्रही बंदी बनाये गये। राजन बाबू को भी छः मास का कारावास मिला। जेल में इन्होंने दो सौ गज निवार और कई गज खादी बुनी। वहीं पर इन्होंने अहिंसा, स्वराज्य, खादी आदि पर एक पाठ्य पुस्तक की रचना की परन्तु विदेशी शासकों की कृपा से वह सदा के लिए लुप्त हो गई, कभी प्रकाशित न हुई।

१६३२ में जब गांधी जी गोलमेज़ काँफ्रेंस से निराश लौटे तब देश में फिर से सत्याग्रह छेड़ने की चर्चा चली। सरकार ने काँग्रेस की कार्यकारिणी समिति के सभी सदस्यों को कारागार में डाल दिया। राजन बाबू अब दूसरी बार छः मास के लिए बन्दी बना दिये गये।

गांधी जी के समान राजन बाबू भी छुआछूत के कट्टर विरोधी और हरिजनों के उद्धारक हैं। छूत-छात का भूत जितनी भयंकरता से मद्रास प्रान्त के वासियों को चिपटा हुआ है, उतनी भयंकरता से अन्य प्रान्तों के वासियों को नहीं। इसीलिए राजन बाबू ने जेल से मुक्त होने पर पहले मद्रास प्रान्त में और पश्चात् उत्तर भारत में भ्रमण किया।

१६३३ में देश में वैयक्तिक सत्याग्रह की धूम मची हुई थी। राजन बाबू ने भी इसमें भाग लिया। इन्हें सवा वर्ष का कारावास

मिला। इस बार कारागार में ये इतनी बुरी तरह बीमार पड़े कि सरकार को इन्हें आतुरालय में भेजना पड़ा। वहाँ इनकी दशा अधिक चिन्ताजनक हो गई और कारावास की अवधि समाप्त होने से एक-दो मास पहले ही ये २५ जनवरी १९३४ को मुक्त कर दिये गये।

पीड़ितों की सहायता—

राजन बाबू को दयानिधि ने अत्यन्त सदय हृदय प्रदान किया हुआ है। इनका कोमल हृदय दूसरों के दुःख देख कर तुरन्त द्रवित हो जाता है। ये अपने कष्ट सहर्ष सह लेते हैं परन्तु पराई पीड़ा से झट तड़प उठते हैं। १९१४ में पुनपुन नदी में प्रलयंकर बाढ़ आई थी। राजन बाबू उन दिनों कलकत्ते में काम करते थे। समाचार पाते ही इन्होंने तुरन्त स्वयंसेवक बन अन्न और ओषधियाँ इकट्ठी कीं तथा पीड़ितों की सहायता के लिए गाँव-गाँव में नौकाओं द्वारा घूमने लगे। १९२३ में छपरा, सारन और पटना जिलों में फिर जल-सावन हुआ। राजन बाबू ने अपनी सच्ची सेवा से सहस्रों मनुष्यों और पशुओं के प्राण बचा लिये।

१५ जनवरी १९३४ को राजन बाबू अस्पताल में थे। उनकी चारपाई और आतुरालय का भवन, पवन से प्रेरित पीपल के पत्र के समान हिलने लगा। वह भयंकर भूचाल बिहार के इतिहास में अनुपम था। सहस्रों घर गिर गये। लाखों मनुष्य व पशु पिस गये। घायलों की तो गणना करना ही असंभव था। जो बचे, वे शरणार्थी बन कर भूखों मरने लगे। राजन बाबू ने चारपाई पर पड़े-पड़े ही पीड़ितों की सहायता के लिए सहायक समिति बनाई और धन, अन्न, वस्त्रादि के लिए भारतवासियों से प्रार्थना की। इनकी प्रार्थना पर गांधी जी, नेहरू जी तथा दीनबन्धु,

एंड्रयूज विहार में आ पहुँचे। लाखों बेघरों को घर, भूखों को भोजन, नंगों को वस्त्र तथा आतुरों को ओषधियाँ आदि दी गईं। राजन बाबू भी कारामुक्त और कुछ रोगमुक्त होने पर उस पुण्य कार्य में जुट गये। अभी यह विकट संकट पूर्णतया कटा न था कि विहार में एक बाढ़ और आ गई। राजन बाबू सदा के समान गाँव-गाँव में जाकर एक-एक व्यक्ति की सेवा में लीन हो गये।

इन्हीं दिनों इन पर एक भारी पारिवारिक विपत्ति आ पड़ी। इनके भाई का स्वर्गवास हो गया। उनके जीवित रहते ये सब घरेलू झंझटों से मुक्त थे और निश्चिन्त होकर देश-सेवा में मग्न थे। अब घर की दशा की जाँच की तो विदित हुआ कि ६०-६५ हजार का ऋण सिर पर है। इन्होंने अपनी भूमि का कुछ भाग बेच डाला। सेठ घनश्यामदास तथा जमनालाल बजाज ने भी इनका भार हलका किया और इस प्रकार यह ऋण से मुक्त हो गये।

राजन बाबू ने देश की इतनी निष्काम सेवा की थी कि जनता की जिह्वा पर इनका नाम नाचने लगा। बम्बई में काँग्रेस का अधिवेशन होने को था। राष्ट्र ने उसके प्रधान-पद के लिए इन्हीं का नाम प्रस्तुत किया और यही प्रधान बनाये गये। इनका वहाँ भव्य स्वागत-संमान किया गया और इन्होंने काँग्रेस के संगठन को दृढ़तर बनाने के लिए देश-भर में पर्यटन किया।

नये विधान के अनुसार १९३७ में समग्र भारत में चुनाव होने को थे। काँग्रेस ने चुनाव में भाग लेने का निश्चय किया। चुनाव जीतने का भारी भार इन्हीं के कन्धों पर डाला गया और उसमें इनके अपार उद्योग के कारण काँग्रेस को अपूर्व सफलता मिली। अनेक प्रान्तों में शासन की बागडोर काँग्रेस के हाथ में आ गई।

यह महान् कार्य समाप्त करने के पश्चात् इन्होंने अपना समय मजदूरों की दशा सुधारने तथा किसानों व जमींदारों के झगड़े निपटाने में लगाना आरंभ कर दिया। अधिक परिश्रम के कारण इनका श्वास-रोग बहुत बढ़ गया और ये निज ग्राम में विश्राम करने चले गये।

काँग्रेसी मंत्रि-मंडल बन तो गये परन्तु प्रान्त-पालों को उनकी नीति एक आँख न भाई। नित्य की खटखट से तंग आकर काँग्रेसी मंत्रि-मंडलों ने त्याग-पत्र दे दिये। उधर दूसरा महायुद्ध आरंभ हो गया था। काँग्रेस तब तक उसमें सहयोग न देना चाहती थी जब तक कि ब्रिटिश सरकार भारत को युद्ध के उपरान्त मुक्त करने की प्रतिज्ञा न करे और अन्तरिम समय के लिए भी विशेष अधिकार न दे। सरकार यह प्रस्ताव स्वीकार न करती थी। राजन बाबू ने इस गुत्थी को सुलझाने के लिए दो बार लार्ड लिनलिथगो से पत्र-व्यवहार किया परन्तु राजप्रतिनिधि टस से मस न हुए। १९४२ में गांधी जी ने 'भारत छोड़ो' का नाद लगाया और देश में अशान्ति फैल गई। राजन बाबू को भी अन्य नेताओं के साथ जेल में धकेल दिया गया। लगभग तीन वर्ष कारा में काटने के पश्चात् राजन बाबू १५ जून १९४५ को मुक्त किये गये। इस कारावास-काल में इन्होंने 'खंडित भारत' (India Divided) नामक ग्रंथ अँग्रेजी भाषा में लिखा, जो देश के बँटवारे के विषय में अद्वितीय है।

पाठक पूछ सकते हैं, जीवन भर इन अपार कष्ट-क्लेशों को सहने से राजन बाबू को क्या लाभ हुआ? संभवतः कोई यह उत्तर देगा—असीम संमान और उच्चतम पदवी। निस्संदेह यह उत्तर कुछ सीमा तक सत्य है। अपनी अनुपम सेवाओं के लिए देश ने उन्हें चार बार काँग्रेस का प्रधान बनाया। अन्तरिम सरकार में कृषि व खाद्य का मंत्री बनाया और १९५० से अब तक और

अब से आगामी पाँच वर्षों तक अपना राष्ट्रपति बनाया। सचमुच प्रतिष्ठा व पदवियों के लोभियों के लिए ये बातें अत्यन्त लुभावनी हैं। वे इनकी प्राप्ति के लिए प्रत्येक उचित-अनुचित कार्य करने पर तुल जाते हैं। परन्तु राजन बाबू ने उक्त सेवाएँ इन मान-पदवियों के लिए नहीं कीं। उन्होंने कीं—अपनी आत्मा के सच्चे संतोष के लिए जो उन्हें दुःखी भारत को सुखी बना कर और परतंत्र भारत को स्वतंत्र बना कर ही मिल सकता था। इन पदों से उनका तनिक भी लगाव नहीं है और अवसर आने पर उन्हें तुरन्त त्यागते हुए तनिक भी रंज नहीं हो सकता।

राष्ट्रपति का व्यक्तित्व—

अपने पूज्य राष्ट्रपति के जीवन की मुख्य-मुख्य बातों का उल्लेख ऊपर हो चुका है। परन्तु जब तक उनके व्यक्तित्व की गिनी-चुनी बातों की ओर संकेत न होगा, हमारे विचार में जीवनी अपूर्ण रहेगी। आइए देखें, उनका रंग-रूप, वेश-भूषा, रहन-सहन, खान-पान, बात-चीत, आचार-विचार कैसे हैं?

राजन बाबू का रंग साँवला और कद ऊँचा है। उनका मस्तक चौड़ा, आँखें गहरी व बैठी हुई, कन्धे प्रबल, वक्षःस्थल विशाल और बाजू तथा टांगें लंबी हैं। आकार देख कर यह भान नहीं होता कि ये उन अनेक महान् गुणों के भंडार होंगे जो इन में पाये जाते हैं।

इनकी वेश-भूषा अत्यन्त सादा होती है। सिर पर गांधी टोपी, बंद गले का कोट, चूड़ीदार पाजामा और बूट—बस यही इनका पहरावा है। शुद्ध खादी का प्रयोग करते हैं। जिन दिनों योरुप की यात्रा पर गये थे उन दिनों भी आपने विदेशी वेश धारण नहीं किया था।

इनका रहन-सहन अब भी वैसा ही सादा है जैसा राष्ट्रपति बनने से पूर्व था। कहीं दिखावे या आडंबर का चिह्न-मात्र भी नहीं। विदेशी राज-प्रतिनिधि के ठाट-बाट का स्थान स्तुत्य सादगी ने ले लिया है।

राजन बाबू का खान-पान भी अति सादा है। वे मांस, मछली, सुरा, सिगरेट आदि वस्तुओं का सेवन नहीं करते। वे मिर्च-मसाले भी अधिक नहीं खाते, वे खाते हैं केवल रोटी, चावल, साग, फल और दूध। एक शब्द में हम कह सकते हैं कि उनका भोजन सात्त्विक होता है। साग-तरकारी में नमक अधिक पड़ जाय या न्यून, वे बिना कुछ कहे शान्तिपूर्वक खा लेते हैं।

उनकी बातचीत सदा शान्त व निश्छल होती है। जो उनके मन में होता है, वही जिह्वा से प्रकट होता है। मिलने वालों से वे ऐसे प्रेमपूर्ण वार्तालाप करते हैं कि दर्शक पहली ही भेंट में उनके श्रद्धालु बन जाते हैं।

ये अत्यन्त नम्र, शान्त और गंभीर व्यक्ति हैं। श्री सत्यनारायण सिनहा ने इनके विषय में लिखा है कि हम दोनों अनेक वर्ष इकट्ठे रहे परन्तु मैंने उन्हें कभी क्रोध करते नहीं देखा। १६२४ में जब वे बिहार प्रान्तीय कांग्रेस के मुख्य मंत्री थे तब एक उद्दण्ड कार्यकर्ता ने आकर उन्हें घंटा भर बुरा-भला कहा था। राजन बाबू समुद्र के समान गंभीर रहे और वह चला गया। कुछ क्षण बाद जब वह फिर लौट कर आया तब राजन बाबू ने पूछा—"आप क्या अपना कार्य पूरा नहीं कर चुके ?" यह सुन वह व्यक्ति लज्जित हो उनके चरणों पर गिर पड़ा।

राजन बाबू बहुत कर्मशील व्यक्ति हैं और अपना जीवन नियम-पूर्वक व्यतीत करते हैं। रात को शीघ्र सो जाते हैं और प्रभात में ठीक चार बजे जग कर साढ़े चार बजे सरकारी काम में जुट

जाते हैं। आज भी वे प्रातः ७ बजे नियमपूर्वक चर्खा चलाते हैं और तत्पश्चात् स्नान, प्रार्थना, गीता-रामायण आदि का पाठ करते हैं। इसी प्रकार उनके दिन का प्रत्येक क्षण उपयोगी कार्यों में व्यतीत होता है और एक भी क्षण व्यर्थ नहीं जाता।

राष्ट्रपति धार्मिक व्यक्ति हैं। वे ईश्वर में दृढ़ विश्वास रखते हैं और उससे डरते हैं। वे हिन्दुत्व के प्रेमी होते हुए भी अन्य मतों को हीन नहीं मानते। वे आर्य संस्कृति के अनुयायी हैं। वे गो-ब्राह्मण तथा तीर्थ-स्थानों के प्रति आदर भाव रखते हैं। वे हिन्दुओं में विवाह-विच्छेद अर्थात् तलाक को चालू करना अच्छा नहीं समझते और हिन्दू कोड-बिल के विरोधी हैं।

प्राचीन संस्कृति के प्रेमी होते हुए भी वे अनेक अन्ध-परंपराओं को त्याज्य समझते हैं। वे छूत-छात के विरोधी हैं, हरिजनों के उद्धार के परम पक्षपाती तथा देश की उन्नति के लिए वैज्ञानिक साधनों के प्रयोग को अच्छा समझते हैं।

राष्ट्रपति एक सुयोग्य लेखक व कुशल वक्ता हैं। इन्होंने अँग्रेज़ी में "India divided" नामक महान् ग्रंथ की रचना की है और हिन्दी में १२०० पृष्ठों की 'आत्मकथा' लिखी है। 'आत्मकथा' लिखते समय इन्होंने किसी पुस्तक, दैनन्दिनी (Diary) आदि का उपयोग नहीं किया। इन्होंने अँग्रेजी के दैनिक 'सर्च-लाइट' और हिन्दी के साप्ताहिक पत्र 'देश' का संचालन किया था। सात भाषाएँ जानते हैं। और ये घंटों तक अँग्रेजी, हिन्दी या हिन्दुस्तानी में धारा-प्रवाह भाषण दे सकते हैं।

ये हिन्दी व संस्कृत-साहित्य के विशेष प्रेमी हैं और दो बार हिन्दी-साहित्य संमेलन के प्रधान बन चुके हैं। अपने राष्ट्रपति के गुणों का वर्णन करना आकाश के तारे गिनना है। कोई इन्हें 'बिहारी गांधी' कहता है तो कोई 'देशरत्न'। कोई 'राजर्षि' कहता

है तो कोई 'पुण्य पुरुष'। कोई 'अजातशत्रु' कहता है तो कोई 'विदेह जनक'। वस्तुतः ये सभी विशेषण इनके लिए उपयुक्त होते हुए भी इनके संपूर्ण गुणों पर पूरा प्रकाश नहीं डाल सकते। हमें तो विवश होकर यही कहना पड़ता है कि राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद के समान राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद ही हैं और गत मास राष्ट्र ने उन्हें पुनः राष्ट्रपति बनाकर उनका नहीं अपितु अपना ही संमान किया है।

जवाहरलाल नेहरू

हमारे चरित-नायक श्री जवाहरलाल नेहरू का जन्म काश्मीरी पंडितों के एक प्रसिद्ध परिवार में हुआ। उनके पूर्वज पंडित राजकौल सम्राट् फ़र्रुख़सियर के समय में काश्मीर छोड़कर दिल्ली आये, और नहर के किनारे पर बसने के कारण इस कुल का नाम 'नेहरू' वंश पड़ गया। राजकौल के पंडित लक्ष्मीनारायण, और उनके पंडित गंगाधर नामक पुत्र हुए। गंगाधर के श्री पंडित मोतीलाल जी नेहरू पुत्र उत्पन्न हुए। मोतीलाल जी के जन्म से तीन मास पूर्व ही इनके पिता जी स्वर्ग सिधार चुके थे। पंडित जी का जन्म ६ मई सन् १८६१ को हुआ। मोतीलाल जी का बचपन अपने चाचा पंडित वंशीधर और पंडित नंदलाल जी की देख-रेख में बीता। पंडित जी वकालत की परीक्षा में सर्वप्रथम उत्तीर्ण होकर पहले कानपुर में और फिर इलाहाबाद हाईकोर्ट में वकालत करने लगे। इसी वकालत के कार्य में पंडित जी ने इतना धन और यश कमाया कि सर्वत्र उनकी धाक जम गई।

१४ नवम्बर सन् १८८९ को पंडित मोतीलाल जी के घर माता स्वरूप रानी की कोख से पंडित जवाहरलाल जी का जन्म हुआ। बालक जवाहर सुख, विलास, ऐश्वर्य और वैभव की गोद में पलने लगा। साथ-ही-साथ इनकी शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध भी घर पर ही किया गया। माता स्वरूप रानी के द्वारा इनमें धार्मिक संस्कार भरे जाने लगे। मोतीलाल जी ने उन्हें बुरे बालकों के संसर्ग से बचाने के लिए एफ० टी० ब्रुक्स नामक एक यूरोपियन

विद्वान् को उन्हें पढ़ाने के लिए नियुक्त कर दिया। थियासोफ़िस्ट होने के कारण ब्रुक्स महाशय की हिन्दू धर्म में गहरी श्रद्धा थी। अतः उन्होंने शैशव में ही बालक जवाहर में धार्मिक और आध्यात्मिक संस्कार भर दिये। साथ ही विज्ञान की प्रयोगशाला खोलकर वैज्ञानिक चमत्कार भी समझा दिये। बचपन में जवाहर को उपन्यास पढ़ने का शौक भी पूरा था, उपन्यासों और कहानियों के प्रति बढ़ती हुई इस रुचि ने बालक के मानसिक विकास में पर्याप्त वृद्धि की। इस प्रकार घर पर विविध विज्ञान, कला, आचार, नीति आदि की शिक्षा प्राप्त करते हुए जवाहरलाल ने १५वें वर्ष में पदार्पण किया तो मोतीलाल जी ने उन्हें विलायत के 'हेरो' विद्यालय में प्रविष्ट करा दिया। सन् १६०७ में १८ वर्ष की अवस्था में पंडित जी कैम्ब्रिज में ट्रिनिटी कालेज में प्रविष्ट हो गये। यहीं रहते हुए आपने विपिनचन्द्रपाल, लाला लाजपतराय और गोपालकृष्ण गोखले के भाषण सुनकर राष्ट्रीय भावना को अपनाना आरम्भ कर दिया। बंग-भंग-आंदोलन का भी कैम्ब्रिज में पढ़ते हुए जवाहर के जीवन पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। जवाहरलाल तब तक बहुत शर्मीले स्वभाव के थे; कालेज के भारतीय छात्रों ने राजनैतिक विषयों पर वाद-विवाद करने के लिए एक 'मजलिस' बना रखी थी, जिसमें नियत अवधि तक भाषण न देने पर छात्रों को जुर्माना देना पड़ता था। जवाहरलाल को भी कई बार यह जुर्माना देना पड़ा।

सन् १६१२ में पंडित जी बैरिस्टरी पास कर भारत लौट आये और इलाहाबाद हाईकोर्ट में वकालत की प्रेक्टिस करने लगे। पर इस धन्धे में उनका मन आरंभ ही से नहीं लगा और उन्होंने निश्चय किया कि कचहरियों में एक-एक व्यक्ति की पैरवी करने की अपेक्षा काँग्रेस के रंगमंच पर आकर समग्र भारत की पैरवी

करना कहीं अधिक अच्छा है। और इसी उद्देश्य से वे सन् १९१२ के दिसम्बर मास में बांकीपुर के कांग्रेस-अधिवेशन में सम्मिलित हुए।

इस समय देश की दशा बड़ी दयनीय थी। लोकमान्य तिलक जेल की सीखचों में बन्द पड़े थे। बंग-भंग-आन्दोलन के समाप्त हो जाने के कारण बंगाल में सन्नाटा छाया हुआ था। कांग्रेस पर नरम दल वालों का पूर्णाधिकार हो रहा था। जनता के सामने कोई राजनैतिक कार्यक्रम था ही नहीं फलतः हमारे चरितनायक की मानसिक स्थिति भी इस समय अनिश्चित-सी रही।

योरुप से लौटने के कुछ समय पश्चात् सन् १९१६ में तरुण जवाहर का कमला के साथ विवाह हो गया। नवम्बर १९१७ में उनकी इकलौती पुत्री इन्दिरा का जन्म हुआ।

इधर सन् १९१४ में यूरोप में महायुद्ध के छिड़ जाने पर भारत के राजनैतिक जीवन में भी पुनः नव-चेतना का संचार हो गया। एक ओर गरमदल के विचारों का प्रतिनिधित्व करने वाली 'होमरूल लीग' की स्थापना तिलक ने की तो दूसरी ओर श्रीमती एनी बेसेंट ने नरमदल वालों के सहयोग से दूसरी 'होमरूल लीग' स्थापित कर दी। जवाहरलाल इन दोनों से सम्बन्ध बनाये हुए थे।

महायुद्ध में सक्रिय सहायता के विचार से सरकार ने 'डिफ़ेंस-फ़ोर्स' की स्थापना की, पर इस में भी भारतीयों के साथ भेद-भाव रखा जाता था। नेहरू जी ने इसमें सम्मिलित होकर इस भेद-भाव को मिटाना चाहा पर इसमें सफल न होने पाये। 'डिफ़ेंस-फ़ोर्स' से अलग हो गये। यहीं से पंडित जी ने सरकार के विरुद्ध सक्रिय विरोध-प्रदर्शन की नींव डाल दी। इतने ही में सरकार ने श्रीमती एनी बेसेंट को गिरफ़्तार कर लिया। इस पर पं० मोतीलाल नेहरू भी उदार दल को छोड़ सरकार के प्रत्यक्ष विरोधी हो गये।

महायुद्ध के समाप्त होने पर सन् १९१८ में 'मॉंटेग्यू चेम्स-फ़ोर्ड सुधार' योजना के साथ ही साथ रौलट एक्ट भी भारतीयों के सिर मढ़ दिया गया। इस एक्ट के अनुसार सरकार को दमन के असीम अधिकार मिल जाते थे। इसलिए गांधी जी ने इस एक्ट के विरुद्ध सत्याग्रह की घोषणा कर दी। और ६ अप्रैल सन् १९१९ को विरोध-दिवस मनाने का आयोजन किया गया। इस अवसर पर पंडित जी मारे खुशी के फूले नहीं समा रहे थे। वे सोचते थे कि गवर्नमेंट से लोहा लेने का यह अच्छा अवसर उपस्थित हुआ है। इसलिए वे भी सत्याग्रह करके जेल जाना चाहते थे पर पंडित मोतीलाल जी अभी इतना आगे नहीं बढ़ना चाहते थे। इसलिए गाँधी जी को बुलाकर जवाहरलाल जी को समझा दिया गया कि वह ऐसा कोई काम न करे जिससे उनके पिता को दुःख हो।

इधर ६ अप्रैल से देश-भर में निहत्थी जनता पर सरकार ने गोलियों की बौछार शुरु कर दी। १३ अप्रैल को अमृतसर के जलियाँवाला बाग़ में जनरल डायर ने गोलियों की वर्षा कर निरीह जनता को बुरी तरह भून डाला। अब तो पंडित जी से नहीं रहा गया और वे अपने पिता जी और गांधी जी के साथ जाँच-कमेटी के सदस्य बन कर पंजाब की दुःखी जनता को सान्त्वना देने के लिए अमृतसर जा पहुँचे। इसी वर्ष दिसम्बर में अमृतसर में काँग्रेस का अधिवेशन हुआ, जिसके सभापति पंडित मोतीलाल जी थे। इस अधिवेशन में जवाहरलाल जी गांधी जी के बहुत निकट आ गये, और तभी उन्हें पिता जी से देश-सेवा के लिए खुल कर खेलने की अनुमति मिल गई। और वे प्रतापगढ़ के दुःखी किसानों की दयनीय दशा देखने के लिए गाँवों की ओर चल पड़े। गाँव-गाँव में घूम कर उन्होंने किसानों को उत्साहित किया कि वे सरकार

के अत्याचारों को सहन न करें। सन् १९२१ में पंडित जी रायबरेली ज़िले में एक किसानों की सभा में भाषण देने जा रहे थे कि सरकार ने इन्हें वहाँ जाने से मार्ग में ही रोक दिया और उस सभा को फ़ौज ने गोलियों से भून डाला।

इस प्रकार सन् १९२१ में जहाँ पण्डित जी एक ओर किसानों में अभूतपूर्व क्रान्ति के बीज बो रहे थे, वहाँ सरकार भी इस क्रांति को कुचल देने के लिए कटिबद्ध हो गई थी। और उसने पाशविक बल-प्रयोग के द्वारा कुछ समय के लिए इस आन्दोलन को शान्त भी कर दिया।

किन्तु गांधी जी का असहयोग-आन्दोलन भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक प्रबलता के साथ पनपता जा रहा था। पंडित मोतीलाल जी जैसे वैधमार्गी भी असहयोग में पूरी शक्ति के साथ सम्मिलित हो गये थे। जवाहरलाल जी तो आरंभ से अन्त तक जोशीले और विद्रोही थे ही, वे असहयोग के कार्यों में भी जान से जुट गये। सन् १९२१ में इंग्लैंड के युवराज भारत में आये, जनता ने उनके स्वागत के स्थान पर विरोध-सभाएँ करनी आरंभ कर दीं। देश भर में असहयोग की धारा निम्न चार रूपों में वेग के साथ प्रवाहित होने लगी।

१ सरकारी उपाधियों को छोड़ दिया जाय।

२ सरकारी शिक्षा-संस्थाओं से सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया जाय।

३ कौंसिलों का बहिष्कार किया जाय।

४ सरकारी अदालतों का बहिष्कार किया जाय।

इन कार्यों को क्रियात्मक रूप देने के लिए और अन्यायपूर्ण कानून का विरोध करने के लिए काँग्रेस-सेवक-दल की स्थापना की गई। कुछ दिनों पूर्व लोकमान्य तिलक स्वर्ग सिधार गये थे, उनके स्मारक के लिए काँग्रेस ने यह निश्चय किया कि स्वराज्य के नाम

पर एक करोड़ रुपये एकत्रित किये जायँ। पंडित जी इन दोनों कार्यों में जी-जान से जुट गये। पिता और पुत्र दोनों ने काँग्रेस-स्वयंसेवक-दल में सर्वप्रथम अपना नाम लिखा दिया। पंडित जी की पति-परायणा पत्नी श्रीमती कमला नेहरू और बहिन विजयलक्ष्मी पंडित, यहाँ तक कि सारा नेहरू-परिवार स्वयंसेवकों की भरती के लिए सन्नद्ध हो गया। पंडित जी चौबीसों घंटे काँग्रेस के कार्य के लिए खून-पसीना एक करने लगे। एक दिन जब कि पंडित जी काँग्रेस-कार्यालय में देर तक बैठे कार्य कर रहे थे, पुलिस ने आकर कार्यालय की तलाशी लेनी आरंभ कर दी, वहाँ से आनंद-भवन में आते ही पुलिस दोनों पिता-पुत्रों को एक साथ गिरफ्तार करके ले गई। इनके साथ ही बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन, चन्द्रशेखर 'आज़ाद', बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', देवदास गांधी आदि यू० पी० के अनेक नेताओं तथा विद्रोही नवयुवकों को भी जेल में डाल दिया गया। पिता और पुत्र दोनों को छः छः मास की सज़ा दे दी गई, किन्तु तीन महीने के बाद ही उन्हें छोड़ दिया गया। गांधी जी ने सत्याग्रह करने का दृढ़ निश्चय कर लिया और विदेशी माल विशेषतः विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार का आन्दोलन उग्र रूप धारण करने लगा। चौराचौरी नामक एक गाँव में जनता ने पुलिसथाना जला डाला और कुछ पुलिस वालों को मार डाला। इस हिंसात्मक कार्यवाही के कारण गांधी जी ने यह कह कर, कि जनता अभी अहिंसा के लिए पूरी तरह तैयार नहीं हो पाई है, सत्याग्रह तो स्थगित कर दिया किन्तु विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार आदि यथापूर्व चालू रहे। विदेशी वस्त्रों की दुकानों पर धरने देने तक की नौबत आ पहुँची। इसी आन्दोलन में पंडित जी दुबारा गिरफ्तार किये जाकर एक साल नौ महीने के लिए जेल भेज दिये गये। मोतीलाल जी पहले से ही जेल में थे, किन्तु सरकार ने

पिता-पुत्रों को एक साथ न रख कर मोतीलाल जी को लखनऊ जेल से बदल नैनीताल जेल में भेज दिया। सरकार राजनैतिक कैदियों के साथ दूसरे अपराधी कैदियों के समान बड़ा कठोर व्यवहार करती और उन्हें नाना प्रकार की यातनाएँ देती थी, पर इन वीरों ने उन अमानुषिक यातनाओं की तिलमात्र भी परवा न की और अपने लक्ष्य को नहीं छोड़ा।

सरकार ने प्रमुख नेताओं और कार्यकर्ताओं को जेल में डाल कर, जनता के सिरों को लाठियों से कुचल कर तथा नरम-दल वालों को अपने पक्ष में मिलाकर काँग्रेस की शक्ति को कुचलने के लिए कोई कसर न उठा रखी। हिन्दू और मुसलमानों को आपस में भिड़ाकर काँग्रेस को कमजोर करने का प्रयत्न किया गया। सन् १६२३ में जेल से छूटने पर पंडित जी देश की दुर्दशा को देखकर बहुत दुःखी हुए और काँग्रेस की दोनों पार्टियों में समझौता कराने का प्रयत्न करने लगे। पंडित मोतीलाल जी और देशबन्धुदास ने सन् १६२३ के अन्त में होने वाले कौंसिलों के चुनाव में काँग्रेस को भाग लेने के लिए प्रेरित किया। पर काँग्रेस ने कौंसिलों का बहिष्कार कर रखा था अतः उक्त दोनों नेताओं ने 'स्वराज्य-पार्टी' नामक नई संस्था खड़ी कर दी। जवाहरलाल जी ने काँग्रेस के द्वारा कौंसिल-प्रवेश के प्रस्ताव को स्वीकार करवा कर आपस की फूट को दूर कर दिया। इसी वर्ष पंडित जी इलाहाबाद म्यूनिसिपल कमेटी के चेयरमैन भी चुन लिये गये और काँग्रेस कमेटी के मन्त्री भी बन गये। सरकार ने उन्हें यू० पी० का शिक्षा-मन्त्री बनाने का भी लालच दिया परन्तु पंडित जी ने इसे अस्वीकार कर दिया।

जेल से छूटने पर पंडित जी के सामने पारिवारिक खर्च चलाने के लिए आर्थिक प्रश्न विकट रूप में उपस्थित हो गया। उनकी इस

चिन्ता को देखकर मोतीलाल जी ने उन्हें कहा कि तुम्हारा साल भर का खर्चा मैं चन्द घंटों में कमा सकता हूँ। तुम अपना जीवन पैसा कमाने में मत खोओ। पिता के इन प्रेम-भरे वचनों ने जवाहरलाल के जीवन में एक अपूर्व उत्साह का संचार कर दिया। वे पूरी शक्ति के साथ राष्ट्रीय कार्यों में प्रवृत्त हो गये।

पंजाब में अकाली सिक्खों ने गुरुद्वारों पर अधिकार करने के लिए आंदोलन खड़ा कर रक्खा था। कई जत्थे जेल जा रहे थे। नाभा में चल रहे अकालियों के सत्याग्रह को देखने के लिए पंडित जी नाभा स्टेट में गये और वहाँ अकारण ही गिरफ्तार किये जाकर हवालात में डाल दिये गये। यहाँ तक कि पंडित जी और उनके साथी 'के० संतानम्' दोनों को एक ही हथकड़ी से बाँध दिया गया। दो तीन दिन बाद अदालत में उन पर मुकद्मा चलाया गया। जजों ने उन्हें ढाई साल की कैद की आज्ञा दे दी। यदि पं० मोतीलाल जी नेहरू अपनी संपूर्ण शक्ति को काम में लाकर वाइसराय आदि उच्चाधिकारियों को प्रभावित कर समय पर ही उन्हें छुड़ाने का प्रयत्न न करते तो इस प्रकार तमाशा देखने के लिए गये ये दर्शक ढाई साल के लिए जेल में पड़े सड़ते रहते। ये रियासतों की इस अंधेरगर्दी को देखकर बहुत चकित और दुःखित हुए। तभी से उनके हृदय में रियासती जनता के प्रति सहानुभूति और वहाँ के निरंकुश शासन को समाप्त करने की भावना प्रबल रूप से जागृत हो उठी।

सन् १९२३ के अन्त में काँग्रेस-अधिवेशन कोकोनाडा में मौलाना मोहम्मदअली के सभापतित्व में हुआ। इस वर्ष भी पंडित जी काँग्रेस के मंत्री चुन लिये गये।

१९२४ में गांधी जी अस्वस्थता के कारण यरवदा जेल से छोड़ दिये गये। इस पर पिता पुत्र दोनों तत्काल जुहू पर मिलने

के लिए पहुँचे । मोतीलाल जी चाहते थे कि गांधी जी स्वयं भी कौंसिल-प्रवेश को स्वीकार कर लें और जवाहरलाल जी को भी उसके लिए सहमत कर दें । पर गांधी जी ने स्पष्ट कह दिया—"जाओ कोशिश कर लो, पर आओगे मेरे ही रास्ते पर" और अन्त में वही हुआ । कौंसिलों में जाकर वे लोग देश का कुछ भी भला न कर पाये और अन्त में उन्हें कौंसिल-परित्याग के लिए बाध्य होना ही पड़ा ।

सन् १९२४ में गांधी जी के सभापतित्व में कॉंग्रेस का अधिवेशन हुआ । तीसरी बार फिर पंडित जी को मंत्री बनाया गया । इस समय हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष बड़े ज़ोरों पर चल रहा था । अँग्रेज़ ने काँग्रेस को कुचलने के लिए हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष का अमोघ शस्त्र छोड़ रखा था । वह जब भी चाहता हिन्दू-मुसलमानों को आपस में भिड़ाकर अपना उल्लू सीधा कर लिया करता । गांधी जी ने उस समय हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य को समाप्त करने के लिए २१ दिन का व्रत भी रखा । और नेहरू जी ने जब देखा कि प्रयाग म्युनिसिपल कमेटी में भी उनका प्रभाव कुछ विशेष सफलता प्राप्त नहीं कर पाता है तो उन्होंने सन् १९२५ में उसके प्रधानपद से त्यागपत्र दे दिया ।

सन् १९२६ के आरम्भ में कमला नेहरू का स्वास्थ्य बहुत गिर गया, इसलिए पंडित जी उन्हें योरुप में जेनेवा नामक नगर में ले गये । इस समय उनके साथ पुत्री इन्दिरा, बहन विजयलक्ष्मी और बहनोई रणजीत पंडित भी थे । इस समय योरुप में रह कर पंडित जी ने वहाँ की राजनैतिक स्थिति का अध्ययन करते हुए देखा कि योरुप अगले महायुद्ध की तैयारियों में व्यस्त है । उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि सारा योरुप बहुत शीघ्र फिर से युद्ध की ज्वालाओं से घिर जायगा । वे बर्लिन में श्यामजी कृष्ण वर्मा,

राजा महेन्द्रप्रताप, मौलवी उबेदुल्ला आदि ऐसे भारतीय देश-भक्तों से भी मिले जो विदेशों में रह कर सशस्त्र क्रांति के द्वारा देश को स्वतंत्र कराना चाहते थे।

१६२६ के अन्त में ब्रसेल्स में होने वाली पद-दलित कौमों की पंचायत में पंडित जी भारत के प्रतिनिधि के रूप में उपस्थित हुए। मजदूरों की संस्था का झुकाव रूसी कम्युनिज्म की ओर अधिक था। यहाँ से पंडित जी मास्को गये। वहाँ से लौट कर लंदन आ पहुँचे। लंदन से चल कर सन् १६२७ के अंत में भारत लौट आये।

काँग्रेस ने देश का विधान बनाने के लिए एक कमेटी नेहरू जी अध्यक्षता में बैठाई। पंडित जी और उनके साथियों ने मिलकर नये विधान की जो रूपरेखा बनाई वह 'नेहरू-रिपोर्ट' के नाम से प्रसिद्ध हुई। पंडित जी ने बड़े प्रयत्न से इस रूप-रेखा में भारत का राजनैतिक लक्ष्य 'औपनिवेशिक स्वराज्य' घोषित किया। इस पर नरम दल के नेता बहुत चिढ़ गये, पर पंडित जी और सुभाष बाबू दोनों इस लक्ष्य पर डटे रहे और "हिन्दुस्तान का आजादी संघ" नामक संस्था बना कर अपने विचारों का क्रियात्मक रूप में प्रचार करने लगे।

१६२० में निर्मित भारतीय विधान की एक धारा में कहा गया था कि दस वर्ष बाद पार्लियामेंट विधान को क्रियात्मक रूप देने आदि के संबंध में जाँच के लिए एक कमीशन बैठायेगी। तदनुसार दस वर्ष की अपेक्षा आठ ही वर्ष बाद सन् १६२८ में 'साइमन कमीशन' भारत भेजा गया। इस कमीशन के सदस्यों में एक भी भारतीय नहीं था। इसलिए काँग्रेस ने इसका बहिष्कार करने का निश्चय किया।

तदनुसार साइमन कमीशन जहाँ भी गया वहीं लाखों नर-नारियों ने "साइमन कमीशन, वापिस जाओ" के नारे लगाते

हुए उसका सर्वथा बहिष्कार किया। लाहौर में इस प्रकार का विरोध प्रदर्शन करने वाले जलूस का नेतृत्व करते हुए लाला लाजपतराय पर पुलिस ने लाठियाँ बरसाईं जिनकी भयंकर चोटों से वे कुछ ही दिन बाद स्वर्गवासी हो गये।

इसी प्रकार साइमन कमीशन जब लखनऊ पहुँचा तो वहाँ भी पं० गोविन्दवल्लभ पंत और जवाहरलाल जी के नेतृत्व में एक जलूस विरोध-प्रदर्शन करने के लिए जब चला आ रहा था तो पीछे से घुड़सवार पुलिस ने आकर अंधा-धुंध लाठी बरसानी आरंभ कर दी और पंडित जी पर बेतहाशा डंडों की मार पड़ने लगी। इस प्रकार ब्रिटिश सरकार ने एक ही साथ भारत के दो सिंहों (लाजपतराय और जवाहरलाल नेहरू) पर लाठियाँ चला कर अपने हाथों अपने शासन को समाप्त करने का उपक्रम बना लिया। इस वर्ष पंडित जी ही काँग्रेस के प्रधान मंत्री थे।

समाजवाद की विचारधारा को प्रचारित करने के लिए इस समय पंडित जी ने कई नगरों का दौरा किया। सन् १६२६ में कलकत्ता में काँग्रेस का अधिवेशन हुआ जिसके सभापति पंडित मोतीलाल नेहरू और प्रधान मंत्री हमारे जवाहरलाल थे। इस प्रकार पिता-पुत्र दोनों ने सभापति और मंत्री के रूप में काँग्रेस को आगे बढ़ाने में भगीरथ प्रयत्न आरम्भ कर दिया और उस अधिवेशन में यह प्रस्ताव स्वीकार कराया गया कि यदि ब्रिटिश सरकार नेहरू-रिपोर्ट के आधार पर एक वर्ष के अन्दर भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य न देगी तो काँग्रेस अपने पूर्ण स्वतन्त्रता के ध्येय पर डट जायगी। वास्तव में पंडित जवाहरलाल जी की प्रबल प्रेरणा और शक्ति के द्वारा ही यह प्रस्ताव स्वीकृत हो सका था। इसी समय पंडित जी ने देश में घूम-घूम कर मजदूरों को संगठित कर उनकी दशा सुधारने का प्रयत्न किया। यू० पी० और बिहार

के किसानों की जागृति में भी पंडित जी ने काफ़ी हाथ बँटाया।

सन् १९३० में लाहौर में काँग्रेस का अभूतपूर्व ऐतिहासिक अधिवेशन हुआ। इसका सभापति गांधी जी को निर्वाचित किया जाना था, पर गांधी जी ने अपनी विजयमाला उतार कर अपने योग्य सेनानी वीर जवाहर के गले में डाल दी। जवाहरलाल जैसे जोशीले परखे हुए कर्मठ नेता को राष्ट्रपति पद पर प्रतिष्ठित देख कर भारतीय युवकों के हृदय बड़े उत्साह से बल्लियों उछलने लगे। वे समझने लगे कि यह दृढ़व्रती वीर अब तो पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करके ही रहेगा और हुआ भी वैसा ही।

अस्तु, लाहौर काँग्रेस के अवसर पर पिता (मोतीलाल जी) ने राष्ट्रपति-पद के रूप में राष्ट्र की बागडोर अपने यशस्वी पुत्र के हाथों सौंपी। राष्ट्र अत्यन्त हर्ष-विभोर हो उठा। उस समय लाहौर नगर का आह्लाद और वैभव दर्शनीय था। पंडित जी ने राष्ट्रपति पद पर प्रतिष्ठित होते ही काँग्रेस का उद्देश्य 'पूर्ण स्वराज्य' घोषित कर दिया और कहा—

"हम आज भारत को पूर्ण स्वाधीनता के लिए खड़े हुए हैं और हम यह घोषणा करते हैं कि अब भविष्य में हम भारतवासी किसी भी विदेशी शासन के अधीन न रहेंगे।"

राष्ट्रपति की इस अदम्य सिंह-गर्जना को सुनकर देश की नस-नस में उत्साह की लहर दौड़ गई।

२६ जनवरी १९३० को राष्ट्रपति के आदेशानुसार सारे देश में स्वतंत्रता-दिवस बड़ी धूम-धाम से मनाया गया। करोड़ों नर-नारियों ने प्रतिज्ञा की कि जब तक भारत स्वतंत्र नहीं हो जायगा तब तक अपने स्वातंत्र्य-संघर्ष को जारी रखेंगे। गांधी जी ने इस स्वातंत्र्य-संग्राम को द्रुत गति देने के उद्देश्य से नमक-सत्याग्रह आरंभ कर दिया। ६ अप्रैल १९३० को गांधी जी ने डांडी नामक

स्थान पर नमक बनाकर अंग्रेज़ी सरकार के उस काले कानून को तोड़ डाला जिसके अनुसार नमक-जैसी सर्वसाधारण के लिए उपयोगी वस्तु के निर्माण पर भी प्रतिबन्ध और टैक्स लगा हुआ था। अब तो स्थान-स्थान पर नमक-सत्याग्रह-आन्दोलन पूरे वेग के साथ छिड़ गया। इस आन्दोलन से सरकार तिलमिला उठी। उसने कॉंग्रेस को ग़ैरकानूनी संस्था घोषित कर घोर काले कानूनों का दौर चला दिया।

१४ अप्रैल १६३० को राष्ट्रपति पंडित जवाहरलाल नेहरू को गिरफ़्तार कर लिया गया और जून के अन्त में पंडित मोतीलाल जी को भी गिरफ़्तार कर नैनीताल जेल में उनके पुत्र के पास पहुँचा दिया गया। गांधी जी भी ५ मई को गिरफ़्तार हो चुके थे। छः मास की निश्चित सज़ा पूरी होने पर पंडित जी छोड़ दिये गये; पर कुछ दिन बाद उन्हें दुबारा गिरफ़्तार कर दो साल की सज़ा दे दी गई। यह पंडित जी की पाँचवीं जेल-यात्रा थी। इस आन्दोलन में भी नेहरू-परिवार ने संपूर्ण मनोयोग के साथ पूरा-पूरा भाग लिया। यहाँ तक कि रोगजर्जर वृद्धा माता स्वरूपरानी भी किसी से पीछे नहीं रही। कमला, विजयलक्ष्मी आदि की तो बात ही क्या ? मोतीलाल जी भी एक प्रकार से रोग-शय्या पर पड़े हुए थे, फिर भी वे अदम्य उत्साह के साथ दौड़-धूप करते रहे और सरकार से डट कर लोहा लेते रहे।

यहाँ तक कि जवाहरलाल जी के जेल चले जाने पर राष्ट्रपति पद पर, यूँ कहें, सत्याग्रह-संग्राम की सेना की बागडोर अपने हाथों में थाम कर पूरे जोश के साथ सरकार से भिड़ गये। इस समय कमला नेहरू भी जेल जा चुकी थीं।

२६ जनवरी १६३१ को पंडित जी और कमला को यह कह कर छोड़ दिया कि मोतीलाल जी की अवस्था अत्यन्त चिंताजनक

है। गांधी जी को भी इसी दिन रिहा कर दिया गया। भारत के सभी नेता प्रयाग में शर-शय्या पर पड़े हुए वृद्ध पितामह के समान वीरतापूर्वक हँसते-हँसते मृत्यु का आलिंगन करने के लिए उत्सुक उस वृद्ध नर-केसरी की रोगशय्या के चारों ओर एकत्रित होने लगे। उस समय उनकी अवस्था जंगल के उस सिंह के समान थी जिसने अपने शिकार को गिरा लिया हो पर किसी व्याध ने छिप कर उसे अपने बाण का निशाना बना कर धराशायी कर दिया हो। उस अवस्था में पड़े हुए मोतीलाल जी ने महात्मा गांधी से कहा—"महात्मा जी, मैं जल्दी ही चला जाने वाला हूँ, स्वराज्य देखने के लिए जीवित नहीं रहूँगा, लेकिन मैं जानता हूँ कि आपने स्वराज्य जीत लिया है और जल्दी ही वह आपके हाथ आ जायगा।" इस प्रकार दृढ़ विश्वास को लिये हुए पंडित जी ५ फरवरी १९३१ को वीर-जननी भारत की कोख को शून्य कर स्वर्ग सिधार गये।

उस दृढ़प्रतिज्ञ नर-नाहर के उठते ही सरकार ने नेताओं के सम्मुख संधि का प्रस्ताव रखा। प्रयत्नों ने जोर पकड़ लिया और गांधी-इरविन समझौते के अनुसार बहुत से सत्याग्रही छोड़ दिये गये। काँग्रेस ने अपना आन्दोलन स्थगित कर दिया। इसी समय प्रसिद्ध देशभक्त वीर भगतसिंह को फाँसी पर लटका दिया गया और उसके दो साथी राजगुरु और सुखदेव भी उसके साथ ही फाँसी पर लटका दिये गये। उनका एक अन्य साथी यतीन्द्रनाथ-दास जेल में ६३ दिन की भूख हड़ताल कर पहले ही स्वर्ग सिधार चुका था। पंडित जी इन सब घटनाओं से बहुत कुछ विक्षुब्ध हो रहे थे।

इसी समय लंदन में ऐतिहासिक गोलमेज काँफ्रेंस हुई, किन्तु मुसलमानों की अड़ियल नीति के कारण वहाँ काँग्रेस के एकमात्र

प्रतिनिधि गांधी जी की कुछ न चली। इधर लार्ड इरविन के स्थान पर लार्ड विलिंगटन ने वाइसराय का पद संभालते ही फिर दमन का दौर-दौरा आरंभ कर दिया और ४ जनवरी सन् १९३२ को पंडित जी को फिर दो साल के लिए जेल भेज दिया गया। लंदन से लौटने पर गांधी जी को भी गिरफ्तार कर लिया गया। विजय-लक्ष्मी और कृष्णा को भी सत्याग्रह-आंदोलन में एक-एक वर्ष का दंड दे दिया गया। इतना ही नहीं प्रत्युत एक बार तो एक जलूस का नेतृत्व करते हुए माता स्वरूपरानी को भी लाठियों की मार से घायल कर दिया गया।

इसी समय रैमजे मैकडानल्ड ने भारत के माथे पर अपना वह साम्प्रदायिक निर्णय लादने की चेष्टा की जिसके अनुसार मुसलमानों को हिन्दुओं से बहुत अधिक अधिकार तो दे ही दिये गये थे, अछूतों को भी हिन्दुओं से अलग कर दिया गया था। इस निर्णय के विरुद्ध गांधी जी ने अनशन प्रारंभ कर अपना ध्यान सत्याग्रह से हटा कर अछूतोद्धार की ओर लगा दिया।

इस निरंतर जेल-जीवन के कारण पंडित जी का स्वास्थ्य बहुत गिर गया, पर वे अपने मार्ग से तिल-मात्र भी विचलित नहीं हुए और पूरी सजा काट कर ही ३० अगस्त १९३३ को जेल से छूटे।

सन् १९३४ में बिहार में बड़ा भयंकर भूकम्प आया। पंडित जी ने दिन-रात पैदल घूम-घूम कर भूकम्प-पीड़ितों की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सहायता की। इसी समय पंडित जी ने कलकत्ता में कई जोशीले भाषण दिये। उन्हीं भाषणों के सिलसिले में फ़रवरी १९३४ में उन्हें सातवीं बार दो साल के लिए जेल भेज दिया गया। यह दो वर्ष का जेल-जीवन पंडित जी के लिए भयंकर कष्टप्रद था। अब की बार सरकार ने पंडित जी के साथ बहुत ही कठोर व्यवहार किया।

इधर कमला नेहरू लगभग मृत्यु-शय्या पर पहुँच चुकी थी। इस प्रकार पंडित जी एक ओर पारिवारिक तथा राष्ट्रीय चिन्ताओं से घिरे जा रहे थे तो दूसरी ओर उन्हें शारीरिक कष्ट भी कम नहीं था। इसी समय पंडित जी ने देहरादून-जेल में रहते अपनी वह प्रसिद्ध आत्मकथा लिखी जो आज 'मेरी कहानी' के नाम से संसार में प्रसिद्ध हो रही है। उस आत्मकथा में वैयक्तिक घटनाओं की अपेक्षा राष्ट्रीय जागृति का स्वानुभूत विवरण ही मुख्य रूप से अंकित हुआ है। नेहरू जी ने यह ग्रंथ आठ महीने में समाप्त किया। आखिर अगस्त १९३५ में उन्हें कमला की बीमारी के कारण कुछ दिनों के लिए छोड़ दिया गया; किन्तु ग्यारह दिन के पश्चात् ही उन्हें फिर जेल भेज दिया गया। अपनी वृद्धा माता और रुग्ण पत्नी दोनों को मृत्यु-शय्या पर छोड़ कर घर से विदा होते समय वीर जवाहर का हृदय भर आया और माता तथा पत्नी के नेत्रों से करुणापूर्ण प्रेमाश्रुओं की अविरल धारा बहने लगी। अक्तूबर में उन्हें फिर अपनी पत्नी को देखने की अनुमति दी गई।

मृत्यु का आलिंगन करने के लिए तत्पर स्वाभिमानिनी कमला ने उस समय जिस अनुपम शौर्य तथा साहस का परिचय दिया, वह सचमुच स्वर्णाक्षरों में अंकित करने योग्य है। उसने अपने पतिदेव को पास में बुलाकर बड़ी निर्भीकतापूर्वक कहा कि सरकार को आश्वासन मत देना, अब मैं अच्छी हूँ। यह है उस वीर नारी की साहसिक भावना। अन्त में डाक्टरों ने कमला को फिर स्विट्जरलैंड भेजने की अनुमति दी। तदनुसार वह कृष्णा और उनके पति के साथ स्विट्जरलैंड भेज दी गई। कुछ दिनों बाद जवाहरलाल को भी मुक्त कर उनके पास पहुँचा दिया गया। सन १९३६ के फ़रवरी मास में कमला वहीं वीर जवाहर को सदैव के लिए अकेला छोड़ अपनी संसार-लीला समाप्त कर गईं।

सन् १९३६ में पंडित जवाहरलाल जी फिर काँग्रेस के अध्यक्ष चुने गये। काँग्रेस ने निर्णय किया कि कौंसिलों के चुनाव में भाग लिया जाय। तदनुसार पंडित जी ने काँग्रेसी उम्मीदवारों के समर्थन के लिए देश के एक कोने से दूसरे कोने तक का तूफ़ानी दौरा किया। एक एक दिन में वीस-वीस, पचीस-पचीस छोटी-मोटी सभाओं में सम्मिलित हुए। सचमुच चौवीसों घंटे काम में लगे रहे। एक वार कर्नाटक में तो उनके इस उत्साह की कोई सीमा ही न रही जब कि उनका कार्यक्रम प्रातः ८ बजे आरंभ होकर दूसरे दिन प्रातः ४ बजे समाप्त हुआ। इन वीस घंटों में उन्होंने लगभग १२-१३ सभाओं में भाग लिया। प्रातः चार बजे अन्तिम सभा में व्याख्यान से छुट्टी पाकर भी उन्हें अभी ७० मील की यात्रा करनी थी जहाँ वे सात बजे पहुँच पाये और आठ बजे पुनः अगले दिन के कार्य-क्रम में जुट गये।

पंडित जी के इस अपौरुषेय पौरुष का जनता पर ऐसा प्रबल प्रभाव हुआ कि सभी प्रान्तों में काँग्रेस के प्रायः शत-प्रति-शत प्रतिनिधि निर्वाचित हुए और पंजाव, वंगाल व सिंध को छोड़कर वाकी सभी प्रान्तों में काँग्रेसी मंत्रि-मंडलों की स्थापना हो गई। इस प्रकार काँग्रेस को अभूतपूर्व विजय दिलाकर पंडित जी अपनी पुत्री इन्दिरा को मिलने के उद्देश्य से सन् १९३८ में योरुप-यात्रा के लिए चल पड़े। वहाँ उन्होंने देखा कि महायुद्ध विश्व के सिर पर मँडरा रहा है।

इधर दो-तीन वर्षों से काँग्रेस के अध्यक्ष पद पर नवयुवकों के हृदय-सम्राट् सुभाष वावू प्रतिष्ठित हो रहे थे। गांधी जी और उनके अनुयायी अपनी नरम नीति के कारण उनके साथ सहयोग नहीं कर पाते थे। फलतः त्रिपुरी काँग्रेस के पश्चात् उन्हें इस पद को छोड़ देना पड़ा। इधर पंडित जी ने देशीय लोक-राज्य परिषद्

का सभापतित्व स्वीकार कर रियासतों की जनता को जागृत करने का बीड़ा उठा लिया। १६३८ में उन्होंने 'राष्ट्रीय निर्माण-समिति' की स्थापना की। १६३६ में लंका में रहने वाले भारतीयों के कष्ट-निवारण के लिए पंडित जी लंका गये। सन् १६३६ में योरुप में महायुद्ध छिड़ गया। इस अवसर पर ब्रिटिश सरकार ने काँग्रेसी मंत्रिमंडलों से परामर्श किये विना ही भारत को युद्धग्रस्त देश घोषित कर दिया। इस पर काँग्रेसी मंत्रि-मंडलों ने त्यागपत्र दे दिया और अन्त में प्रत्यक्ष संघर्ष के उद्देश्य से काँग्रेस ने सन् १६४२ में 'भारत छोड़ो' आंदोलन का श्रीगणेश कर दिया। इस संबंध में १५ अगस्त को विशेष दिवस मनाने की घोषणा की गई। संघर्ष की रूप-रेखा को क्रियात्मक रूप देने के लिए ८ अगस्त को बम्बई में अखिल भारतीय काँग्रेस समिति का अधिवेशन हुआ। इसमें पंडित जी ने इस आशा का प्रस्ताव प्रस्तुत किया कि अँग्रेज भारत से एकदम चले जायँ। यदि वे ऐसा न करें तो देश को प्रत्येक प्रकार के बलिदान के लिए तैयार रहना चाहिए। बस, फिर क्या था, इस प्रस्ताव के पास होते ही ६ अगस्त को प्रातः सब के सब नेता बम्बई में ही पकड़ लिये गये और देश में क्रांति की ज्वालाएँ धधक उठीं। इन ज्वालाओं को शान्त करने के लिए सरकार ने ऐसे मनमाने अत्याचार किये जिनके स्मरण मात्र से रोमांच हो उठता है।

जवाहरलाल जी, गांधी जी आदि नेताओं को अज्ञात रूप से अहमदनगर के किले में डाल दिया गया। यहीं पर पंडित जी ने "Discovery of India" या "हिन्दुस्तान की कहानी" नामक अपनी प्रसिद्ध पुस्तक की रचना कर डाली।

१४ जून, १६४५ को लार्ड वेवल ने १०१४ दिन जेल में रखने के पश्चात् काँग्रेस-कार्यकारिणी के सब सदस्यों को मुक्त कर दिया

और शिमला में कॉन्फ्रेंस बुलाकर अन्तरिम सरकार की योजना बनाई जाने लगी। किन्तु मुस्लिम लीग की अड़ंगेबाज़ी के कारण कोई भी योजना सफल न हो सकी।

उधर नेता जी सुभाषचंद्र बोस ने सिंगापुर में 'आज़ाद हिन्द फ़ौज' की स्थापना की। यह 'आज़ाद हिन्द फ़ौज' एक बार तो शत्रुओं के छक्के छुड़ाती हुई भारत की सीमा में प्रविष्ट हो मणिपुर और विषयपुर के १५००० वर्ग मील के प्रदेश पर आधिपत्य जमाने में सफल हो गई; किन्तु इसी समय अँग्रेज़ों की ओर से बढ़ती हुई भारतीय सेना ने 'आज़ाद हिंद फ़ौज' के साहस को समाप्त कर दिया।

सन् १६४५ में परमाणु बम के आक्रमण के कारण जापान के हथियार डाल देने से 'आज़ाद हिन्द फ़ौज' के हज़ारों सैनिकों और पदाधिकारियों को गिरफ्तार कर अँग्रेज सरकार ने उन पर मुकदमा चला दिया। पंडित जी ने शिमला-सम्मेलन से निवृत्त होते ही देश में घूम-घूम कर आज़ाद हिन्द फ़ौज के इन वीरों की सहायता के लिए प्रबल आन्दोलन खड़ा कर दिया। नेहरू जी का ही प्रयत्न था जिसके कारण ब्रिटिश सरकार इन वीरों को छोड़ देने के लिए बाध्य हो गई।

१६४६ में केन्द्रीय तथा प्रान्तीय धारासभाओं के नये चुनाव हुए। इस बार भी पंजाब, सिंध और बंगाल को छोड़ कर सभी प्रान्तों में कॉंग्रेसी मंत्रि-मंडलों की स्थापना हो गई। इसी वर्ष इंग्लैंड में मज़दूर-सरकार की स्थापना हो जाने के कारण भारत और ब्रिटेन के संबंध कुछ सुलझते दिखाई दिये; किन्तु तात्कालिक वाइसराय लार्ड वेवल की दुरभिसंधि के कारण वे संबंध अधिक नहीं सुधर पाये। उसने अपनी कूट नीति के कारण यहाँ हिन्दू-मुस्लिम दंगे शुरू करवा दिये और मुस्लिम लीग को दिनो-दिन

प्रोत्साहन देना आरंभ कर दिया।

फिर भी २ सितम्बर, १९४६ को अन्तरिम सरकार की स्थापना हो गई और भारत के प्रथम प्रधान मंत्री के पद पर पंडित जवाहर-लाल नेहरू को ही प्रतिष्ठित किया गया। इस अंतरिम सरकार में पहले मुस्लिम लीग का कोई प्रतिनिधि नहीं लिया गया था, पर बाद में लार्ड वेवल ने मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियों को भी बलात् ला बिठाया। इसी वर्ष पंडित नेहरू जी के प्रयत्नों से दिल्ली में एक एशियाई सम्मेलन का आयोजन हुआ जिसमें एशिया के सभी प्रमुख राष्ट्रों ने भाग लिया। इसके प्रधान मंत्री भी पंडित जी ही थे।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, लार्ड वेवल मुसलमानों को देश का सर्वनाश करने के लिए प्रोत्साहित कर रहा था और उसके रहते हुए राष्ट्र की प्रगति हो नहीं सकती थी, अतः उसके स्थान पर लार्ड मॉउँटबेटन वाइसराय बन कर आये। उन्होंने आते ही हिन्दू-मुस्लिम नेताओं को बुला कर देश में स्थायी शान्ति तथा पूर्ण स्वाधीनता स्थापित करने का प्रयत्न किया। पर मुस्लिम लीग का उन्माद इतना बढ़ चुका था कि पाकिस्तान को स्वीकृत किये बिना शान्ति और स्वतंत्रता के कोई चिह्न ही दिखाई नहीं देते थे। सर्व-संहार की उस प्रथम वेला में राष्ट्र-नेताओं के समक्ष पाकिस्तान की स्वीकृति के सिवा अन्य चारा न था। फलतः गांधी जी के प्रबल विरोध के रहते हुए भी पाकिस्तान की स्वीकृति के साथ राष्ट्र-नेताओं ने १५ अगस्त १९४७ को भारत की पूर्ण स्वाधीनता स्वीकार कर ली। इस प्रकार देश को विभाजित रूप में स्वाधीन हो जाने से पंद्रह अगस्त को जहाँ भारत में हर्ष का अपार पारावार उमड़ रहा था वहाँ पाकिस्तान में हिन्दुओं पर मृत्यु की काली घटाएँ मँडरा रही थीं। लाखों निरीह स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध अपने

प्राणों को हथेली पर धरे स्वधर्म की रक्षा करते हुए भारत की ओर बढ़ते चले आ रहे थे। उनकी विपत्ति का कोई ठिकाना न था। पंडित जी बार-बार पश्चिमी पंजाब जाते और उन असहाय विपन्न भाइयों के बीच में घूम-घूम कर ढाढ़स बँधाते। इस संकट के अवसर पर पंडित जी ने जिस साहस, दृढ़ता व धैर्य का परिचय दिया वह अपना उपमान आप है। जिस किसी तरह भी हो सका पंडित जी अधिक-से-अधिक लोगों को निकाल तो लाये किन्तु यहाँ उन दुःखी पुरुषार्थियों को फिर से बसाने की एक विकट समस्या उनके सामने खड़ी हो गई। नेहरू जी ने प्रबल साहस के साथ इस समस्या का भी सामना किया और आज यह समस्या बहुत कुछ सुलझ गई दिखाई देती है।

भारत के स्वतंत्र हो जाने पर भारत के नये विधान के निर्माण का कार्य भी बड़ी तत्परता से निपटा दिया गया।

पंडित जवाहरलाल जी के सहयोग से देश इस प्रकार प्रगतिपथ पर अग्रसर हो ही रहा था कि ३० जनवरी १६४८ की संध्या-वेला में मदान्ध साम्प्रदायिकता ने राष्ट्रपिता को देश से छीन लिया और विश्ववन्द्य बापू के बिछुड़ते ही पंडित जी की आँखों के आगे अन्धेरा छा गया, वह कुछ देर के लिए किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये पर फिर अपने संपूर्ण साहस को बटोर कर राष्ट्रनिर्माण के महान् कार्य में जुट गये।

इसी समय पंडित जी ने रियासतों के एकीकरण के कार्य में महामति पटेल का पूरा-पूरा हाथ बटाया। फलतः जहाँ भारत की छः सौ से अधिक रियासतें एक संघ के रूप में संगठित हो गईं, वहाँ हैदराबाद जैसी ऐंठभरी रियासतों की अकड़ भी हवा हो गई।

उधर पाकिस्तान ने अक्तूबर १६४७ में काश्मीर पर आक्रमण

कर राजधानी श्रीनगर के पास तक अपनी सेनाएँ पहुँचा दीं। इस पर काश्मीर के महाराजा हरिसिंह और शेख़ अब्दुल्ला की प्रार्थना पर पंडित जी ने भारतीय सेनाएँ भेज कर काश्मीर की आततायियों से रक्षा की, और इस आक्रमण की शिकायत भी अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा-परिषद् में पेश कर दी।

हाल ही में २५ जुलाई १९५२ को नेहरू-अब्दुल्ला समझौते के अनुसार काश्मीर को वैधानिक रूप से वहाँ की जनता की इच्छा के अनुसार भारत में सम्मिलित कर लिया गया है।

इसी बीच पंडित जी लंदन में ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के प्रधान मंत्रि-सम्मेलन में भाग लेकर भारत को सर्वोच्च सत्ता-सम्पन्न सर्व-तंत्र स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में ब्रिटिश राष्ट्र-मंडल का सदस्य बनाने में सफल हो गये। योरुप, अमेरिका, कनाडा और इंडोनेशिया आदि की यात्रा कर विश्व में भारत की धाक जमा दी।

१९५२ में वयस्क मताधिकार के आधार पर प्रान्तीय और केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभाओं का निर्वाचन करा सच्चे प्रजातंत्र की प्रतिष्ठा कर दी जिससे विश्व को यह ज्ञान हो गया कि पंडित नेहरू दृढ़, निर्भीक और कर्म-वीरपुंगव नरश्रेष्ठ नेता हैं।

सन् १९५१-५२ के सर्वतन्त्र स्वतन्त्र प्रजातन्त्र भारत के प्रथम निर्वाचन में काँग्रेस के अध्यक्ष के रूप में पंडित जी ने जो भारतव्यापी यात्रा की, वह अपना उपमान आप है। यह यात्रा करोड़ों उत्सुक हृदयों के साथ अपना प्रत्यक्ष सीधा सम्बन्ध स्थापित करने के उद्देश्य से की गई थी। इस यात्रा को हम वास्तविक शब्दों में एक तीर्थयात्रा कह सकते हैं। नौ सप्ताह के इस तूफ़ानी दौरे में पंडित जी ने हिमालय से लेकर केरल और आसाम से कच्छ तक का कोना कोना घूम डाला। कोई भी ऐसा प्रदेश या ज़िला नहीं बचा जहाँ पंडित जी ने अपना दिव्य

सन्देश न सुनाया हो।

उन्होंने १८ हजार मील विमान से, ५ हजार मील कार से एक हजार ६ सौ मील रेलवे से और १०० मील नावों से इस प्रकार कुल २५ हजार मील की इस लम्बी यात्रा में दो करोड़ जनता को अपने भाषणों से और इतनी ही जनता को अपने दर्शनों से कृतार्थ किया। इस यात्रा को हिमाचल प्रदेश से आरम्भ कर उत्तर-प्रदेश में समाप्त करते हुए बम्बई, ट्रावनकोर, कोचीन, मद्रास, मध्यभारत, भोपाल, राजस्थान, उड़ीसा, हैदराबाद, मध्यप्रदेश, पंजाब, गुजरात, बैंगलोर, बिहार, आसाम, बंगाल, पैप्सू, विन्ध्य प्रदेश, सौराष्ट्र, कच्छ, और अजमेर मेरवाड़ा और दिल्ली, भारत के इन सभी प्रदेशों और प्रान्तों के प्रमुख नगरों की ३०० विशाल सभाओं में तथा सैंकड़ों छोटे-मोटे समूहों में अपने प्रभावशाली भाषणों से भारत की पंचमांश जनता को अपने महान् गौरवमय विचारों से प्रभावित कर दिया। पंडित जी जहाँ भी जाते वहीं जनता अपने इस प्यारे नेता के भाषणों और दर्शनों से इतनी प्रभावित हो जाती कि घंटों तक मंत्र-मुग्ध-सी स्थिर बैठी रहती। और सभास्थल में एक दिव्य शान्ति का साम्राज्य छाया रहता।

भारतव्यापी इस ऐतिहासिक दौरे के महान् कार्यक्रम के साथ ही साथ पंडित जी ने राष्ट्र के प्रधान मन्त्री के रूप में शासन-कार्यों का भी सुचारु रूप से संचालन कर अपनी अपूर्व क्षमता का परिचय दिया। इस सारे समय में उन्होंने विश्राम से अधिक यात्रा की, यात्रा से अधिक भाषण दिये, और भाषणों से भी अधिक बढ़कर कार्य किया। इस प्रकार कह सकते हैं कि पंडित जी की यह अभूतपूर्व ऐतिहासिक यात्रा भारत के इतिहास में ही नहीं, संसार के इतिहास में सदा स्मरणीय रहेगी। कहते हैं कि इतना

विशाल दौरा संसार के किसी भी नेता ने आज तक नहीं किया। अमेरिका, इंग्लैंड जैसे वड़े २ साम्राज्यों में भी इतना भ्रमण करने का किसी नेता को कभी उत्साह नहीं हुआ। इस दौरे का ही यह फल था कि काँग्रेस को चुनाव में भारी विजय हुई। सर्वत्र काँग्रेस का नाद वजा। अनेक वलशाली विरोधी दल होते हुए भी काँग्रेस ने प्रायः सर्वत्र वहुमत प्राप्त किया।

स्पष्ट वात तो यह है कि इस समय शत-प्रति-शत मतदाताओं ने काँग्रेस को नहीं प्रत्युत अपने प्रिय जवाहर को ही वोट दिया था। इससे स्पष्ट सिद्ध है कि पंडित जी के प्रति जनता के हृदय में कैसा अटल विश्वास है और वे कितने आदर से नेहरू जी के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर करने के लिए तत्पर रहती है। असल वात तो यह है कि पंडित जी ने अपने जीवन का अणु अणु जनता-जनार्दन की सेवा में समर्पित कर दिया है फिर जनता भी पंडित जी के इंगित पर अपने प्राण तक दे देने के लिए क्यों न प्रस्तुत हो जाय ?

पंडित जी ने इस नवजात भारतीय प्रजातंत्र की रक्षा के लिए अपना खून-पसीना एक कर दिया। आरंभ ही में आंग्ल-अमेरिकन गुट इसे हड़प जाना चाहता था। रूस और अमेरिका के परस्पर विरोधी गुटों में से किसी एक के भी चंगुल में फँसकर यह अपनी स्वतंत्र सत्ता खो वैठता पर पंडित जी की क्रांतिदर्शिनी राजनैतिक प्रतिभा के वल पर वह अपनी तटस्थता की नीति के कारण निर्भयता के साथ उन्नति-पथ की ओर अग्रसर हो रहा है। न केवल एशिया प्रत्युत सारा विश्व पंडित जी की ओर आशा और उत्साहभरी दृष्टि से देख रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय विषम परिस्थिति के अतिरिक्त देश की खाद्य-समस्या, शरणार्थी-समस्या, साम्प्रदायिक उलझन, वेकारी, रिश्वतखोरी और काले वाजार की भयंकर

विभीषिकाओं का सामना भी पंडित जी बड़े मनोयोग से कर रहे हैं। पंचवर्षीय योजना तथा अनेक प्रकार के उद्योग-केन्द्रों, विशाल बाँधों आदि के द्वारा वे तत्काल देश को फलता-फूलता और लहलहाता देखने के लिए अहर्निश प्रयत्नशील रहते हैं। ६४ वर्ष की वृद्धावस्था में भी राष्ट्रकार्य के लिए उनके शरीर में युवकों से भी बढ़कर जोश, बच्चों से भी अधिक स्फूर्ति स्पष्ट प्रकट होती है। उन्होंने मन, वचन और कर्म से अपनी सत्ता को राष्ट्र के रूप में परिणत कर दिया है। वे सच्चे कर्मयोगी हैं। ऐसे महापुरुष को अपने नेता के रूप में पाकर भारत सचमुच कृतकृत्य हो गया है। हम भी राष्ट्र के कोटि-कोटि कंठों के स्वर में स्वर मिलाकर भारत के महामान्य इस महामानव की जय-जयकार का उद्‌घोष करते हुए प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि वह वसुधा के इस अनुपम जवाहर को पूर्णायु प्रदान करे ताकि हमारी, उसकी और विश्व की समग्र मनोकामनाएँ उसी की आँखों के सामने फलीभूत हो जायँ।

सरोजिनी नायडू

प्राचीन भारत में स्त्री का स्थान समाज में बहुत ऊँचा था। सर्वतोमुखी उन्नति के द्वार पुरुष के समान स्त्री के लिए भी खुले थे। विद्योपार्जन का क्षेत्र स्त्री के लिए वर्जित न था। स्त्री-जाति सम्मानित तथा आदृत थी। वेदों के मंत्रार्थ-द्रष्टा ऋषियों के नामों में बहुत से नाम स्त्रियों के भी हैं। ऐसे ऐसे वेद-वाक्य हैं जिनमें कहा गया है कि विदुषी कन्या के लिए विद्वान् पति होना चाहिए। भगवान् की विभूतियों के अधिकतर नाम स्त्रीलिंग हैं जैसे लक्ष्मी, सरस्वती, शक्ति, विद्या आदि। उपनिषदों में हम भारतीय रमणियों को याज्ञवल्क्य जैसे ऋषियों से ब्रह्म-विद्या पर वार्त्तालाप तथा विवाद करते देखते हैं। मनुस्मृति में हम पढ़ते हैं—"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:" जहाँ स्त्रियों का आदर सम्मान होता है वहाँ देवता रमण करते हैं।

परन्तु यह सब कुछ होते हुए भी भारतवर्ष में वह समय आया जब कि देश का अधःपतन हुआ और उस अधःपतन में स्त्री का सामान्य स्थान अक्षुण्ण न रह सका। जब सारा भारतीय समाज पतन के गर्त्त में गिरा तो स्त्री ही कैसे अपवाद-स्वरूप रह सकती थी? लज्जा, सेवा, त्याग, श्रद्धा आदि अनेक गुण धारण करती हुई भी भारतीय स्त्री-समाज में समानता के स्थान को खो बैठी। उसके लिए विद्योपार्जन के द्वार बंद हो गये। घर का संकीर्ण आंगन ही उसका कार्यक्षेत्र रह गया। वाता-वरण की इस संकीर्णता से स्त्री के दृष्टिकोण में भी संकीर्णता आ

गई। बहुत ही छोटी आयु में कन्या का विवाह कर देने को लोग पुण्य समझने लगे और कन्या को पढ़ाने-लिखाने को पाप। आधुनिक काल के स्त्री-शिक्षा के आरम्भिक इतिहास को देखने से ज्ञात होता है कि इस कार्य में लगने वाले सुधारकों को कितने विरोध का सामना करना पड़ा है और लोगों की क्या-क्या कटूक्तियां सुननी पड़ी हैं। यद्यपि उस पराधीनता तथा पतन के युग में भी कहीं-कहीं मीराबाई तथा अहल्याबाई जैसी देवियाँ उत्पन्न हुईं तथापि साधारणतया स्त्री-जाति आत्म-विस्मृति की गाढ़ निद्रा में निमग्न थी।

पश्चिम के साथ सम्पर्क में आने पर, पाश्चात्य संस्कृति का आघात सहन करने पर, योरुप की विचारधारा के साथ संसर्ग होने पर भारत की सुप्त आत्मा जागी। सूख कर रुंडमुंड हुए इस महावट में फिर से कोंपलें उत्पन्न हुईं। एक सांस्कृतिक जागरण बंगाल से आरम्भ हुआ और भारतवर्ष में फैल गया। समाज के दूसरे अंगों में जीवन-संचार होने के साथ स्त्री-जाति में भी जागृति आई। शिक्षा का द्वार स्त्रियों के लिए भी खुल गया। परन्तु आरम्भ-काल में युवकों के समान युवतियों के लिए भी शिक्षा वही थी जिसका प्रबंध अँग्रेजी सरकार तथा ईसाई-धर्म-प्रचारक विदेशी समितियों ने हमारे लिए किया था। तत्पश्चात भारतीय प्रयत्न से भी शिक्षा-संस्थाएँ स्थापित हुईं परन्तु पाठ्य-क्रम लगभग वही रहा जो विदेशी सरकार ने हमारे लिए निश्चित किया था।

यद्यपि उस विदेशी ढंग की शिक्षा ने देश को वह जीवन-ज्योति तो न दी जो वास्तविक शिक्षा का ध्येय होनी चाहिए थी तथापि उसने हमारे देश को नेतृत्व करने वाले बहुत से स्त्री पुरुष दिये। दूसरे शब्दों में—क्योंकि कोई दूसरी शिक्षा-प्रणाली

प्रचलित थी ही नहीं, अतः जो भी विदुषी देवियाँ तथा महापुरुष उत्पन्न हो सकते थे, इसी प्रचलित प्रणाली में से हो सकते थे। हाँ, पाश्चात्य विचार-धारा तथा विद्या-भंडार के सम्पर्क से भारत को लाभ पहुँचाना भी स्वाभाविक था।

भारतीय जागरण के उस अरुणोदय-काल में भारत में जिन जिन विभूतियों का आविर्भाव हुआ, उनमें से एक विशेष विभूति थी—भारत-कोकिला श्रीमती सरोजिनी नायडू।

सरोजिनी का जन्म १३ फ़रवरी, १८७९ को दक्षिण-भारत के हैदराबाद नगर में हुआ। उनके पिता श्री अघोरनाथ चट्टोपाध्याय पूर्वीय बङ्गाल के एक ब्राह्मण वंश में उत्पन्न हुए थे। उन्होंने १८७७ में ऐडनबरा से डाक्टर ऑफ़ साइंस की उपाधि ली और तत्पश्चात् कुछ देर तक जर्मनी में विद्याध्ययन करके वे भारत लौटे। उन्होंने हैदराबाद में निज़ाम कालेज की स्थापना की। अघोरनाथ चट्टोपाध्याय सरस्वती देवी के अनन्य उपासक थे। उनका सारा समय विद्या-विलास तथा अध्ययनाध्यापन ही में व्यतीत होता था। उनके यहाँ बहुत से विद्या-विलासी जनों का आना-जाना रहता था। वे आने वालों का हार्दिक स्वागत करते और हर प्रकार से उनकी सहायता करते थे। परोपकार और विज्ञान ही उनके दो व्यसन थे। यद्यपि उनकी शिक्षा विज्ञान की थी तथापि उन्हें कवि का हृदय मिला था। परन्तु सरोजिनी को काव्य-प्रतिभा पिता की अपेक्षा अधिक माता से मिली थी। माता वरदासुन्दरी वास्तव में कवयित्री थीं। अपनी युवावस्था में उन्होंने बङ्गला में बहुत-सी उच्चकोटि की कविताओं की रचना की थी।

सरोजिनी माता-पिता की सबसे बड़ी संतान थीं। उनकी शिक्षा का आरम्भ, उस समय के सुशिक्षित वर्ग की रीति के अनुसार अँग्रेज़ी से किया गया। ६ बरस की आयु में एक बार

उन्हें अँग्रेजी में सम्भाषण न कर सकने पर दंड मिला था। पिता सरोजिनी को गणित-शास्त्र तथा विज्ञान की विदुषी बनाना चाहते थे परन्तु बेटी को यह विषय शुष्क जान पड़ते थे। कल्पनाशील प्रकृति की उस कन्या ने तो आगे चल कर कवि बनना था। आपने अपने एक पत्र में लिखा है—"एक दिन जब कि मेरी आयु ११ बरस की थी, मैं बीज-गणित के एक प्रश्न पर बैठी खीझ रही थी। प्रश्न ठीक निकलता नहीं था। उसके बदले एक पूरी कविता मेरे मन में आ गई और मैंने उसे लिख डाला।" १२ बरस की आयु में सरोजिनी ने मद्रास विश्वविद्यालय से ऐंट्रैंस की परीक्षा पास कर ली। उन दिनों तो किसी कन्या का ऐंट्रैंस पास करना ही एक आश्चर्यजनक बात थी और फिर इतनी छोटी आयु में! सरोजिनी का स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता था परन्तु उन्हें कविता-अध्ययन और काव्य-रचना की धुन लगी रहती थी। १३ बरस की आयु में उन्होंने स्काट कवि की कविता 'लेडी ऑफ दी लेक' के ढंग पर १३०० पंक्तियों की एक अँग्रेजी कविता छः दिन में लिख डाली। उन दिनों सरोजिनी का स्वास्थ्य ऐसा था कि डाक्टर ने उन्हें पुस्तक को छूने तक से वर्जित कर दिया था। डाक्टर की इस आज्ञा की पूरे रूप से अवहेलना करने मात्र के भाव से सरोजिनी ने २००० पंक्तियों का एक काव्य-नाटक लिख डाला। १४ से १८ बरस की आयु तक सरोजिनी ने बहुत अध्ययन किया। इसी समय उन्होंने एक उपन्यास भी लिखा।

उसी छोटी आयु में सरोजिनी के जीवन का संग्राम आरम्भ हो गया। सरोजिनी का प्रेम श्री गोविंद राजलु नायडू से हो गया। डाक्टर गोविंद राजलु नायडू (सरोजिनी के भावी पति) यद्यपि एक कुलीन वंश के थे तथापि अब्राह्मण थे। सरोजिनी के घर-वालों ने इस प्रेम-सम्बन्ध को बुरा समझा। नायडू के पक्ष वाले

भी इसे उचित न समझते थे। सब ओर से विरोध देख कर सरोजिनी ने अपने प्रणय-सम्बन्ध को स्थगित तो कर दिया परन्तु उनसे विवाह का विचार नहीं छोड़ा।

१८९५ ई० में सरोजिनी देवी निजाम की ओर से एक विशेष छात्रवृत्ति पाकर विलायत पढ़ने के लिए गईं परन्तु वहाँ भी उन का स्वास्थ्य अच्छा न रहा और वे १८९८ में भारत लौट आईं। इंग्लैंड में सरोजिनी ने अपने समय का बहुत सदुपयोग किया। विद्या-लाभ के अतिरिक्त उन्होंने उस समय के अँग्रेज साहित्य-सेवियों से परिचय बढ़ाया। मिस्टर आर्थर साइमन और सर एडमंड गास उनके विशेष परिचित साहित्यिकों में से थे। उन्हीं दिनों सरोजिनी ने इटली की यात्रा भी की और उनके हृदय पर उस देश का विशेष प्रभाव पड़ा।

विलायत से लौटकर तीसरे ही मास, १९ बरस की आयु में सरोजिनी ने अपने प्रणयपात्र श्री गोविंद राजलु नायडू से विवाह कर लिया। इस विवाह पर यद्यपि टिप्पणियाँ हुईं, तथापि सरोजिनी ने अपने स्वतंत्र विचारों को कार्यान्वित करके दिखा दिया। दम्पती का वैवाहिक जीवन नितांत सुखमय रहा। गृह-संचालन तथा संतान-पोषण के साथ-साथ सरोजिनी को काव्यानुशीलन तथा सार्वजनिक कार्यों के लिए भी समय मिलता रहा।

सरोजिनी नायडू के जीवन में तीन धाराएँ स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती हैं—कविता, सामाजिक तथा राजनीतिक कार्य। तीनों क्षेत्रों में उनका विशेष स्थान है।

कविता—

सरोजिनी को अँग्रेजी भाषा में कविता लिखने का अभ्यास बाल्यकाल ही से था। १८९५ में जब वे इंग्लैंड गईं तो उनकी आयु केवल १६ बरस की थी, परन्तु तब तक वे बहुत-सी कविताएँ

लिख चुकी थीं। इंग्लैंड में उनका परिचय प्रसिद्ध साहित्य-मर्मज्ञ सर ऐडमंड गास से हो गया। ऐडमंड गास ने यह जान कर कि सरोजिनी को अँग्रेजी में कविता लिखने की रुचि है, उन्हें अपनी कविताएँ दिखाने को कहा। सरोजिनी ने अपनी कविताओं का बंडल दे दिया और उस अनुभवी विद्वान् ने एकांत में उन कविताओं का अध्ययन और मनन किया। उन्हें वे कविताएँ कृत्रिम और प्रेरणाविहीन जान पड़ीं। उन पर उन कविताओं का जो प्रभाव पड़ा उसको उन्होंने सरोजिनी की एक पुस्तक की भूमिका में इस प्रकार लिखा है, "श्रीमती सरोजिनी ने जो पद्य मुझे दिये वे पिंगल, व्याकरण तथा भावों की दृष्टि से दोष-रहित थे; परन्तु उनमें बड़ी भारी कमी यह थी कि वे नितांत व्यक्तित्व-शून्य थे। भावों तथा कल्पना की दृष्टि से वे पाश्चात्य रंग में रँगे थे। उनमें टैनीसन और शैली के रंगों का आभास होता था। यदि मैं भूल नहीं करता तो उनमें ईसाई मत का सा त्याग भी झलकता था। मैंने विषादपूर्वक उन्हें उठा कर अलग रख दिया। यह तो अनुकरण करने वाले पक्षी की वाणी थी।" सर एडमंड गास ने काव्य-रचना के सम्बन्ध में सरोजिनी को जो सम्मति दी उसका तात्पर्य निम्नलिखित है—

"झूठे अँग्रेजी भावों में डूबी हुई अपनी सब रचनाओं को रद्दी की टोकरी में डाल दो। एक विचारशील भारतीय युवती से, जिसने हमारी भाषा ही नहीं, हमारे पिंगल का भी ज्ञान प्राप्त कर लिया है, हम पाश्चात्य भावों तथा कल्पनाओं की आशा नहीं करते। हम उससे प्राच्य भावों और कल्पनाओं का परिचय प्राप्त करना चाहते हैं, धर्म के उन प्राचीन मंतव्यों का दिग्दर्शन करना चाहते हैं, जिनका प्राच्य देशों में उसी समय अनुभव हो चुका था। जब पाश्चात्यों को अपनी स्थिति ही का ज्ञान नहीं

था। तुम अपनी कविता में अँग्रेजी पक्षियों, रोबिन और लवा का वर्णन करना छोड़ दो। इसी प्रकार हमारे फूलों, फलों, वृक्षों तथा दृश्यों और भू-देशों के वर्णन का भी सदा के लिए परित्याग कर दो; हमारे गिरिजाघरों के घंटों को भूल जाओ। अपने देश और अपने प्रांत की नदियों, पर्वतों, मंदिरों, उद्यानों, वनस्पतियों तथा निवासियों का वर्णन करो—इन के सहज तथा प्राकृतिक भावों को व्यक्त करो। सारांश यह है कि भारतीयता धारण करो; पाश्चात्य कवियों की अनुकृति करने की चेष्टा में अपने व्यक्तित्व का नाश न कर डालो।"

क्या ही अच्छी सम्मति है जो पाश्चात्य रंग में रँगे आज के युवक युवतियों के लिए भी शिक्षाप्रद है। सरोजिनी को यह बात लग गई। उन्होंने ध्यानपूर्वक उस वृद्ध साहित्य-सेवी की बात को सुना और स्वीकृत कर लिया। स्वयं सर एडमंड गास ने लिखा है कि तत्पश्चात् श्रीमती सरोजिनी ने कोई ऐसी रचना नहीं की, जिसमें उनकी भारतीयता स्पष्ट न झलकती हो। हम उस अँग्रेज साहित्य-मर्मज्ञ के कितने आभारी हैं जिन्होंने कृत्रिम मार्ग पर जा रही सरोजिनी की प्रतिभा को परिवर्तन के लिए प्रेरित करके भारत को एक वास्तविक कवि प्रदान किया। अपनी कृतज्ञता को प्रकट करते हुए सरोजिनी ने अपनी प्रथम-प्रकाशित पुस्तक 'स्वर्ण देहली' (The Golden Threshold) उस विद्वान् को समर्पित की है और लिखा है, "यह पुस्तक सर एडमंड गास को समर्पित है जिन्होंने सर्वप्रथम मुझे 'स्वर्ण देहली' का मार्ग दिखाया।"

'स्वर्ण देहली' १९०५ में प्रकाशित हुई। इस में १८९६ से १९०५ तक रचित कविताओं के संग्रह हैं। सब कविताएँ उच्चकोटि की और चुनी हुई हैं। इसमें बाल्यकाल तथा तरुणावस्था

के भाव हैं। इस पुस्तक के कई संस्करण निकले और सरोजिनी नायडू की ख्याति देश और विलायत में भी फैल गई। इंग्लैंड के लगभग सभी प्रसिद्ध पत्रों ने पुस्तक की प्रशंसा की।

सरोजिनी की दूसरी पुस्तक का शीर्षक है, 'जीवन और मृत्यु-विषयक कविताएँ' (Poems of Life and Death) तीसरी पुस्तक 'काल-पक्षी' (The Bird of Time) तो बहुत ही प्रसिद्ध हुई। यह १९१२ में प्रकाशित हुई और कदाचित् यही लेखिका की सर्वोत्तम कविता-पुस्तक है। इसमें पहली कृतियों से अधिक प्रौढ़ता है। सरोजिनी की कविताओं की ख्याति अँग्रेजी भाषा-भाषी देशों तक ही नहीं पहुँची प्रत्युत उनकी बहुत-सी कविताओं के अनुवाद फ्रैंच तथा जर्मन भाषाओं में भी हुए। चौथी पुस्तक 'टूटा हुआ डैना' (The Broken Wing) १९१७ में प्रकाशित हुई।

चौथी पुस्तक की कविताएँ सरोजिनी ने सार्वजनिक कार्यों में भाग लेना प्रारम्भ करने के पश्चात् लिखी थीं। ज्यों-ज्यों उनकी रुचि सामाजिक तथा राजनीतिक कामों की ओर बढ़ती गई, त्यों त्यों उनकी कविताओं में प्रतिभा का ह्रास होता गया। समालोचकों ने उन्हें पहले से सावधान कर दिया था कि सार्वजनिक कार्यों में भाग लेने से उनकी कविता को अवश्य क्षति पहुँचेगी परन्तु उन्होंने देश की पराधीन तथा पतित अवस्था में वीणा को छोड़ कर पताका को धारण करना ही उचित समझा। १९४३ ई० में उनकी सभी कविताओं का एक संस्करण निकला।

सरोजिनी नायडू की कविता यद्यपि अँग्रेजी भाषा में हुई तथापि भाव तथा कल्पनाएँ उसमें सब भारतीय हैं। सर एडमंड गास की सम्मति को उन्होंने अक्षरशः ग्रहण किया। उनकी कविताओं के बारे में किसी प्रसिद्ध पत्र ने लिखा था, "इन

कविताओं ने एक ऐसा नया द्वार खोल दिया है जिससे, यदि पाश्चात्य लोग चाहें, तो पूर्व का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।" रंग भारतीय होते हुए भी किसी प्रकार की संकीर्णता नहीं आ पाई है। विश्व-प्रेम की भावना ही कविताओं का आधार है। १९१५ की काँग्रेस में सरोजिनी ने एक कविता 'भारत माता की वंदना' पढ़ी थी। उसकी कुछ पंक्तियों का भाव उनकी विशाल भावना के उदाहरण के रूप में यहाँ दिया जाता है—

हिन्दू—"माता, हमारी अर्चना के पुष्प तेरे सिर के किरीट बनेंगे।"

पारसी—"माता, हमारी आशा की ज्योति तेरा आवरण बनेगी।"

मुसलमान—"हमारी प्रेमरूपी तलवारें तेरी रक्षा करेंगी।"

ईसाई—"माता, हमारे धर्म का संगीत तेरी सेवा में रहेगा।"

सभी धर्मावलम्वी—"क्या हमारी उत्कट भक्ति द्वारा तेरा कल्याण न हो सकेगा ? हे सम्राज्ञी, हे देवि, सुनो, हम तुम्हारी वंदना करते हैं।"

यद्यपि सरोजिनी का जन्म उच्च कुल में हुआ, वे धन की गोदी में पलीं और सम्पन्न घर में विवाहित हुई तथापि उनके अंतःकरण में प्राणिमात्र के लिए सहानुभूति तथा संवेदना का भाव था और निम्न वर्ग की जनता के भावों को भली भांति अंकित कर सकती थीं।

सरोजिनी नायडू को भारत के भविष्य पर दृढ़ विश्वास था। अपने हृदय के अंतरतम में वे अनुभव करती थीं कि वर्त्तमान काल में भारत की जो अवनत दशा है, वह न रहेगी भविष्य में एक दिन यह देश गर्वोन्नत होकर संसार को अपना प्राचीन संदेश सुनायेगा, जिस संदेश के विना अशांति और त्रास संसार से दूर

न होंगे। अपनी 'भारत माता के प्रति' शीर्षक कविता में आपने लिखा है—

"अंधकार से ग्रस्त, रुदन करती हुई जातियाँ तेरे नेतृत्व की प्रतीक्षा कर रही हैं······माँ, हे माँ, तू सो क्यों रही है······ तेरी प्रतिष्ठा करने के लिए तेरा भविष्य तेरा आह्वान कर रहा है।"

अँग्रेजी भाषा पर आपको जो अधिकार प्राप्त था उसके बारे में सर एडमंड गास ने लिखा है, "वास्तव में मैं यह विश्वास करने के लिए अप्रस्तुत नहीं हूँ कि आज तक जितने हिंदुस्तानियों ने अँग्रेजी में रचनाएँ की हैं उनमें से सरोजिनी की रचनाएँ सबसे चमत्कारिक, सबसे मौलिक तथा सबसे शुद्ध होती हैं।"

यहाँ उनकी कविता में से कुछ संदर्भों के अनुवाद देना अनुचित न होगा, परन्तु यह स्मरण रहे कि कविता के अनुवाद में और फिर गद्यानुवाद में वह मौलिक कविता का रस नहीं हो सकता।

"हे मेरे जीवन के दीपक, काल के होठों ने तुझे अकस्मात् अपने श्वास से बुझा दिया है। कुछ भी हो, अब तेरी विगत ज्योति पुनरुज्जीवित नहीं हो सकती···हे प्रिय, क्या जीवित अंधकार ही सदा के लिए मेरा आवास होगा?

"हे मेरे जीवन-तरु, काल के निर्दयी पैरों ने तेरे मूल को रौंद डाला है। कोई भी वस्तु अब तुझे तेरा अतीत गौरव प्रदान नहीं कर सकती······वृक्ष के शुष्क हो जाने पर, उसके पल्लव कहीं जीवित रह सकते हैं?"

'सती' शीर्षक कविता से।

"हे यौवन, प्रिय संगी यौवन, क्या तू चला जायगा? तू

और मैं, दीर्घ काल तक एक ही साथ रहे हैं। एक ही साथ देश-देशान्तरों में उषा का पान किया और एक ही साथ आकाश के नीचे फल चुने हैं!

"हे चपल मित्र, कल तक तो मैं भविष्य के अविच्छिन्न तथा असीम आह्लाद का स्वप्न देखा करती थी......। तू जो चला जायगा, तो आज से मैं क्या अतीत काल ही के भंगुर सुखों का स्वप्न देखूँगी ?

"मैं तुझे तेरी अस्थिर तथा झूठी प्रतिज्ञा से मुक्त करती हूँ। परन्तु हे मेरे साथी, विदा होने से पहले मेरे नेत्र-पुटों तथा भौंहों को एक बार चुम्बन कर ले। मैंने तेरी मूर्ति को अपने हृदय में स्थापित किया है।"

'यौवन के प्रति' शीर्षक कविता से।

"हे प्रार्थनामय नेत्रों वाले, अभय मुद्रा में स्थित पद्मासीन भगवान् बुद्ध, यह कैसा अक्षुण्ण, अनंत तथा रहस्यमय परमानंद तुम्हें प्राप्त है! तुम्हारी कैसी परम शांति है, जिसका हमारी दृष्टि को आभास नहीं हो सकता, और जो मनुष्य-संसार के लिए दुर्लभ है!

"हमारे कौतूहलपूर्ण जीवन-पथ में सदा परिवर्तन की वायु चलती रहती है। आने वाले दिवस की व्यथाएँ बीते हुए दिवस के दुःखों का स्थान ले लेती हैं। एक स्वप्न के बाद दूसरा स्वप्न आता है; एक समस्या के अन्तर दूसरी समस्या उपस्थित होती है, और अंत में काल जीवनरूपी जाल को विच्छिन्न कर देता है।

"हमारे लिए दुःख और यातनाएँ हैं, अपने गर्व के खंडित रहस्य हैं, पराजय के कठिन पाठ हैं। हमारे लिए ऐसे पुष्प हैं

जो दुष्प्राप्य हैं, ऐसे फल हैं जो वर्जित हैं। हमारे लिए यह परम शांति कहाँ जिस पर, हे पद्मासीन बुद्ध, तुम ने अधिकार प्राप्त कर लिया है।

"हम अपनी कष्टसाध्य अभिलाषाओं की तृप्ति में असफल रहते हैं; उस दैवी उच्च शिखर पर चढ़ते हुए हमारे पैर थक जाते हैं और हमारे विश्वास शिथिल पड़ जाते हैं······"

"अंत-स्थान दूर और अस्पष्ट है; परन्तु वह निरंतर हमें अपनी ओर बुला रहा है। हमारे संपूर्ण जीवन के दिवस अनंत के एक क्षण मात्र हैं। हे पद्मासीन, तुम्हारे निर्वाण पद को हम कैसे प्राप्त कर सकेंगे?"

'पद्मासीन बुद्ध' शीर्षक कविता से।

"हे मेरे हृदय, हमें शीघ्र ही उठना होगा, और संसार-युद्ध तथा जन-समूह के कोलाहल में सम्मिलित होना होगा······हे मेरे हृदय, आ, हम उठें और अपने बचे हुए स्वप्नों को एकत्र करें। हम जीवन की वेदना पर संगीत की वेदना से विजय प्राप्त करेंगे।"

'वन में' शीर्षक कविता से।

यद्यपि उनकी कविताएँ बहुत उच्च कोटि की हैं तथापि कवि को उनसे पूरा संतोष नहीं है। सरोजिनी की कविता का आदर्श बहुत ऊँचा था। अपनी कविता के बारे में वे अपने एक पत्र में लिखती हैं।

"क्या यह सम्भव है कि मैंने सौंदर्यपूर्ण पद्य लिखे हैं?······आप जानते हैं कि मेरा कला का आदर्श कितना ऊँचा है और मेरी दृष्टि में मेरे तुच्छ और स्फुट पद्य मुझे पूर्णरूप से

सुन्दर नहीं प्रतीत होते। मेरा तात्पर्य उस सनातन सौंदर्य से है जिसकी मुझे महती अभिलाषा रहती है।"

अपनी साधना के फल से असंतुष्ट रह कर अन्यत्र लिखा है—

"वास्तव में मैं कवि नहीं हूँ। मुझमें कल्पना है; अभिलाषा है; परन्तु उद्‌गार नहीं हैं। यदि मैं एक भी ऐसी कविता लिख लूँ, जो सौंदर्य तथा उच्च भावों से पूर्ण हो तो मैं सदा के लिए सुखपूर्वक मौन हो जाऊँ।"

इसी भाव को लेकर अन्यत्र लिखा है—

"जब तक जीवित हूँ, मेरी आत्मा की यह असीम अभिलाषा रहेगी कि मैं कविता करूँ—एक ही पद्य सनातन कविता की एक ही पंक्ति। कदाचित् मैं अपनी इच्छा की पूर्ति हुए बिना ही मर जाऊँगी।"

सार्वजनिक कार्यों में भाग लेते हुए भी उनका अंतिम ध्येय 'कविता' ही था। अपनी एक कविता में उन्होंने लिखा है—

"धर्माध्यक्ष और महात्मागण अपने-अपने धर्म में प्रसन्न रहें। नृपति अपनी सेनाओं सहित कीर्तिशाली कार्यों का सम्पादन करें। पराजितों को शांति प्राप्त हो; बलशालियों को आशा प्रदान हो।...परन्तु हे मेरे स्वामिन्, मुझे संगीत का आनंद प्राप्त हो।"

सरोजिनी नायडू की कविता उनके जीवन की प्रथम तथा सर्वसुन्दर झाँकी है। उनके समाज-सुधार सम्बन्धी विचारों तथा राजनीतिक कार्य का अपना महोच्च स्थान है परन्तु समय बीतने पर और देश तथा समाज की समस्याओं के सुलझ जाने पर उनके सार्वजनिक कार्य के महत्व को विस्मृत कर देना सम्भव है परंतु उनकी कविताएँ उनका स्थायी स्मारक हैं। जब तक मानव हृदय में स्पन्दन है, कविता का रस फीका नहीं पड़ सकता। हाँ, यह

देश का दुर्भाग्य है कि परिस्थितियों ने सरोजिनी को अँग्रेज़ी भाषा में कविता करने की प्रेरणा की। उस समय अँग्रेज़ी ही का प्रभुत्व था और भारतीय भाषाओं के प्रति सुशिक्षित वर्ग की अरुचि थी। लगभग एक ही समय में सरोजिनी नायडू अँग्रेज़ी में और रवींद्रनाथ टैगोर बंगला में साहित्य-रचना कर रहे थे। बंगाली प्रतिभा दो भिन्न माध्यमों द्वारा प्रकट हो रही थी; एक स्वदेशी था और दूसरा विदेशी। क्या ही अच्छा होता कि सरोजिनी भी किसी भारतीय भाषा को माध्यम के रूप में अपना सकी होतीं और देश का साहित्य-भण्डार उनकी मौलिक रचनाओं से वैसे ही भरपूर होता जैसे रवींद्रनाथ टैगोर की रचनाओं से हुआ।

समाज-सुधार सम्बन्धी विचार—

श्रीमती सरोजिनी नायडू का समाज-सुधार सम्बन्धी कार्य जीवन के प्रातःकाल ही में आरम्भ हो गया था। वे केवल समाज-सुधार पर भाषण देना ही नहीं जानती थीं प्रत्युत विचारों को जीवन में कार्यान्वित करके उदाहरण भी प्रस्तुत कर सकती थीं। उनका अपना विवाह ही एक पर्याप्त उदाहरण है। समाज में प्रचलित जन्म की जात-पात और ऊँच-नीच को वे देश के लिए हानिकारक समझती थीं। अस्पृश्य जातियों की दुर्दशा देख कर उनका हृदय रोता था। स्त्री-जाति की अज्ञानता तथा विद्या-विहीनता उन्हें समाज के लिए घातक जान पड़ती थी। स्त्री-जाति की शिक्षा के लिए तो उन्होंने १६०६ ई० ही से कार्य करना आरम्भ कर दिया था। हिंदू-मुस्लिम एकता उनका एक प्रिय विषय था। नवयुवक तथा नव युवतियों को मिलकर और उन्हें कर्तव्य-पथ पर प्रेरित करके उन्हें विशेष प्रसन्नता होती थी।

अपने सार्वजनिक जीवन में आपको सारे भारतवर्ष तथा संसार के दूसरों देशों में भी बहुत भ्रमण करने का अवसर

मिला। जहाँ भी आप गईं, आपने समाज-सुधार सम्बन्धी अपने विचारों को अपनी मधुर तथा कलापूर्ण भाषा में प्रस्तुत करने का अवसर नहीं खोया। आपकी वाणी में ओज था, आकर्षण था और प्रेरणा-शक्ति थी। परमात्मा ने आपको वाणी की जो प्रभावोत्पादक और उत्तेजक शक्ति प्रदान की थी, आपने उसका पूरा उपयोग किया।

गांधी जी के सार्वजनिक क्षेत्रों में आने पर देश के समाज-सुधार सम्बन्धी कार्य में एक नई स्फूर्ति उत्पन्न हो गई और गांधी जी के सम्पर्क में आकर श्रीमती सरोजिनी नायडू की समाज-सुधार-भावना को बहुत उत्तेजना मिली। गांधी जी ने राष्ट्रीय निर्माण का जो सर्वतोमुखी कार्यक्रम देश के सामने रखा उसे दूसरे कई उच्च कोटि के नेताओं के समान सरोजिनी नायडू ने भी शिरोधार्य किया।

अब हम यहाँ श्रीमती जी के स्थान-स्थान पर दिये गये अनेक भाषणों में से कुछ उद्धरण प्रस्तुत करते हैं जिनसे आपके समाज-सुधार सम्बन्धी विचारों का परिचय प्राप्त होता है।

१९२३ ई० में बम्बई में सवर्णों तथा हरिजनों के सहभोज पर आपने एक बड़ी उत्साहपूर्ण वक्तृता दी थी। आपने कहा था—

"यह बड़े सौभाग्य की बात है कि भिन्न-भिन्न राजनीतिक दलों के नेता इस महान् कार्य में सम्मिलित हैं। यह कार्य दल-विशेष का नहीं, सम्पूर्ण समाज का है। भारत के लिए यह लांछन की बात है कि उसकी सन्तान का एक बड़ा भाग पतित अथवा अस्पृश्य समझा जाय। बिना उन्हें साथ लिये हम अपने राजनीतिक मंतव्यों में कदापि सफल नहीं हो सकते।"

वैसे तो हरिजनों की अवस्था सारे भारत में शोचनीय है

परंतु दक्षिण भारत में यह रोग बहुत भयावह सीमा तक पहुँचा हुआ है। १९२३ ई० में दक्षिण भारत के भ्रमण में एक सम्मेलन की सभा-नेत्री के पद से भाषण देते हुए उन्होंने सवर्णों को सम्बोधित करके कहा था—

"मित्रो, कितने सहज कपट से हम अस्पृश्यता को दूर करने के प्रश्न पर अपनी अनुमति दे देते हैं। पर जब व्यवहार का समय आता है, तब अपने घरों में ऐसे सैकड़ों बचाव करने लग जाते हैं, जिनसे हम अपनी जाति से निकाल न दिये जायँ। मैंने इस विषय पर बड़े २ सुधारकों को कहते सुना है कि अछूत जातियाँ अपने लिए अवश्य अलग कूएँ बना लें। यदि वे लोग अपने लिए अलग मन्दिर बनाते हैं, तो हमें कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु, मैं कहती हूँ—मित्रो, क्या वे तुम्हारी ही भाँति मनुष्य नहीं हैं? वे उसी मिट्टी के बने नहीं हैं, उसी सुख-दुःख के चक्र में नहीं पड़े हैं? क्या तुम्हारी तरह उनके हृदय में भाव नहीं हैं, तुम्हारी ही तरह वे भोजन नहीं करना जानते, तुम्हारी ही तरह वे साँस नहीं लेते? तुम्हारी तरह वे भी गुलाम हैं, और तुम्हारे ही कारण वे और भी अधिक गुलाम बने हुए हैं। आज २०वीं शताब्दी में तुम उन स्वतंत्र जातियों के अधिकार की बराबरी का दावा करते हो, जिन्होंने भेद और अत्याचार को दूर कर दिया है। यह क्या तुम्हारे लिए धृष्टता की बात नहीं है? छूत-छात का भाव दूर करना हमारे लिए क्या अपनी ही बेड़ियों का काटना नहीं है? क्या यह हमारा धर्म नहीं है कि अपनी जन्मभूमि के मस्तक से इस कलंक को दूर करें, क्योंकि हमीं इस कलंक के कारण हैं?"

१९२२ ई० में मद्रास में एक सार्वजनिक व्याख्यान में उन्होंने ब्राह्मणों को सम्बोधित करके कहा था—

"जब तक तुम अछूतों की समस्या को हल नहीं कर लेते तब तक स्वतंत्रता की बात करने के भी अधिकारी नहीं हो। आखिर स्वतंत्रता है क्या वस्तु ? क्या तुम्हीं दिल्ली और शिमला की व्यवस्थापिका सभाओं में जाओगे, जिनको प्रतिनिधि रूप में बोलने का कुछ अधिकार नहीं ? तुम व्यवस्थापिका सभाओं में जाकर करोगे क्या ? किन के प्रतिनिधि कहलाओगे ? सचाई के साथ क्या तुम कह सकते हो कि तुम्हारे हृदयों में देश की भलाई का भाव है ? तुम ऐसा कदापि नहीं कह सकते। गलियों के पत्थर तुम्हारे विरुद्ध साक्षी देंगे। जंगलों के वृक्ष तुम्हें धिक्कारेंगे। पहाड़ियाँ और जंगल उन लोगों के संतप्त अश्रुओं को जानते हैं, जिनके सामने आने ही में तुम अपने को अपवित्र समझने लगते हो।"

ये शब्द कड़े हैं परन्तु दक्षिण भारत में अस्पृश्य कही जाने वाली जातियों की जो दुर्दशा है, उसके अनुरूप ही हैं।

सरोजिनी नायडू का समाज-सुधार सेवा-भाव से प्रेरित था, किसी पर परोपकार जताने के लिए नहीं। अपने इस उच्चादर्श को उन्होंने एक व्याख्यान में ऐसे वर्णन किया था—

"दानशीलता के भाव से प्रेरित होकर ग़रीबों की सहायता करना उनका अपमान करना है और जो उनके लिए मृत्यु से भी बुरा है। कारण, धनियों को धन का अभिमान है और रूपवानों को अपने सौन्दर्य का। कवियों के पास उनकी प्रतिभा है; परन्तु ग़रीबों के पास केवल एक मान है। यदि समाज-सेवा करना चाहते हो तो विनय भाव से करो। इसी से तुम्हारी सेवा को दीन-दुःखी और मरते हुए लोग स्वीकार करेंगे। इसी के कारण ग़रीब तुम्हारे हाथों से वह जल ग्रहण करेंगे, जिससे उनके प्राणों की रक्षा की संभावना है।"

भारत की स्त्री-जाति के जागरण तथा उत्थान-कार्य में सरोजिनी नायडू का विशेष हाथ था। स्वयं स्त्री होने के कारण वे स्त्रियों के कष्टों और समस्याओं को बहुत अच्छी तरह समझती थीं। देश के सभी भागों में भ्रमण करने के कारण उन्हें सभी प्रांतों की स्त्रियों के सम्पर्क में आने का अवसर मिलता था और जहाँ उनका सम्पर्क होता था वहीं जागृति का उद्भव हो जाता था। परदा-प्रथा के बारे में उन्होंने कहा था—

"इस पुरानी सामाजिक प्रथा की बुराई-भलाई का विवेचन किये बिना ही मैं विश्वासपूर्वक कह सकती हूँ कि परदे की प्रथा अन्य पुरानी प्रथाओं की भाँति उठ रही है। हमारी जातीय जागृति की आवश्यकताओं के सम्मुख यह अधिक काल तक अक्षुण्ण नहीं रह सकती।"

सरोजिनी का स्त्री-शिक्षा सम्बन्धी प्रयास बहुत स्तुत्य है। उनकी सर्वप्रथम सार्वजनिक वक्तृता, जो १६०६ ई० में हैदराबाद में हुई, इसी विषय पर थी। दिसम्बर १६०६ ई० में उन्होंने कलकत्ते में भारतीय-जातीय-सामाजिक-सम्मेलन में स्त्री-शिक्षा पर एक ओजस्विनी वक्तृता देते हुए कहा था—

"यह मुझे एक विचित्र बात मालूम होती है और इस विचित्रता में कौतूहल और दुःख दोनों सम्मिलित हैं कि आज बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में, भारतवर्ष में, हम सभी जगह अपनी सार्वजनिक सभाओं में स्त्री-शिक्षा सम्बन्धी प्रस्ताव उपस्थित कर रहे हैं। यह वही भारतवर्ष है जो पहली शताब्दी के आरम्भ में भी पूर्ण सभ्य था और संसार को उन उज्ज्वल स्त्री-रत्नों को आदर्श स्वरूप अर्पण कर चुका था, जो बुद्धि और विद्या दोनों ही के ऊँचे शिखर पर पहुँची हुई थीं। परन्तु, काल की कुटिल गति के कारण इस वैचित्र्य का सामना करना पड़ता

है। अब समय आ गया है कि हम इस बात पर विचार करें कि वह आपत्ति हम लोगों के ऊपर से कैसे दूर हो सकती है और किस प्रकार हम ऐसा उद्योग कर सकते हैं जिससे हमारी सफलता स्त्री-शिक्षा के सम्बन्ध में व्यर्थ प्रस्तावों के पास करने तक ही न रह जाय। इस महत्वपूर्ण काल में जब कि सभी ओर कठिनाइयाँ हैं और सभी ओर लोग उद्योग कर रहे हैं तथा भारत की सभी जातियाँ एक सर्वोच्च राष्ट्रीय आदर्श की एकता के लिए प्रयत्न कर रही हैं, यह विचारना चाहिए कि सभी प्रवाहों की सफलता उस प्रश्न पर निर्भर है, जिसे लोग स्त्रियों का प्रश्न कहते हैं। राष्ट्रीयता का निर्माण आप लोगों के हाथों में नहीं, हम लोगों के हाथों में है।"

अपनी उसी वक्तृता में आगे चल कर कहा था—

"यह ईश्वर का दिया हुआ अधिकार है कि प्रत्येक मनुष्य स्वच्छ वायु का सेवन करे। क्या एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को इस अधिकार से वंचित कर सकता है? यदि नहीं, तो किसी मनुष्य को क्या अधिकार है कि एक दूसरे की आत्मा को अपने जीवन और अपनी स्वतंत्रता के अधिकार से रोके? दुःख है कि वास्तव में भारतवर्ष का यही हाल है। भारतीय स्त्रियों के विषय में भारतीय मर्दों ने यही किया है। यही कारण है, भारत के पुरुषो! जो तुम्हारी आज यह दशा है। तुम्हारे पिताओं ने तुम्हारी माताओं को उनके परंपरागत अधिकार नहीं दिये, और इसी कारण तुम्हें भी अपने अधिकार नहीं मिले। अतएव मेरी प्रार्थना यही है कि अपनी स्त्रियों को उनके प्राचीन अधिकार दो। जैसा कि मैं कह चुकी हूँ—राष्ट्र के सच्चे निर्माता पुरुष ही नहीं हैं स्त्रियाँ भी हैं और उन्नति करने में हम लोगों की सहायता पाये बिना तुम्हारी सभाएँ और अधिवेशन व्यर्थ हैं। अपनी स्त्रियों को शिक्षा दो तभी राष्ट्र का भला होगा। यह बात आज भी सत्य

है, सदा सत्य रही है और सदा सत्य रहेगी कि वे ही हाथ जो पालनों को झुलाते हैं संसार पर आधिपत्य करते हैं।"

१९१५ ई० में बम्बई में दी गई अपनी वक्तृता में उन्होंने कहा था—

"हम कोई ऐसी बात नहीं माँग रही हैं जो हमारे आदर्शों के विपरीत हो। हम अपने पुराने अधिकारों को चाहती हैं, जो हमारी अजर-अमर संपत्ति हैं। हम केवल यही चाहती हैं कि हमें इस बात का अवसर दिया जाय जिस से हम अपने शरीर, मस्तिष्क तथा आत्मा को उन्नत कर सकें। उनका ऐसा विकास करें कि हम तुम्हारे आगे एक आदर्श उपस्थित कर सकें। हमारा तात्पर्य कवि की कल्पना के असंभव स्त्रीत्व से नहीं प्रत्युत उस स्त्रीत्व से है जिसके द्वारा हम सफल गृहिणी और पुष्ट माताएँ बन सकती हैं, जिसके द्वारा वीर माताएँ बन कर अपने पुत्रों को जातीय सेवा का आवश्यक पहला पाठ पढ़ा सकती हैं'''स्त्री ही जातीयता की मुख्य कसौटी है। जब स्त्री समाज में अपना उपयुक्त स्थान ग्रहण कर लेगी, तभी प्रधान समस्या हल हो सकती है। समाज का आदर्श स्त्रियों पर निर्भर है। भारत में यदि स्त्रियों में यह भाव जागृत कर दिया जाय कि उन पर मातृत्व का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व है, तो समस्या सहज में हल हो जाय। राष्ट्र-निर्माण का कार्य स्त्रियों से आरम्भ होना चाहिए। भारतीय स्त्रियों को यह भली प्रकार समझा देना चाहिए कि वे खिलौना नहीं हैं, दासी नहीं हैं, केवल पुरुषों के आमोद-प्रमोद की सामग्री नहीं हैं। उनका वास्तविक कार्य है—आत्मा के लिए उच्चतम प्रेरणा उपस्थित करना।"

सरोजिनी भली प्रकार समझती थीं कि हमारे देश का पुनरुत्थान देश के युवक युवतियों पर निर्भर है। विद्यार्थियों से

मिलकर उन्हें विशेष प्रसन्नता होती थी। विद्यार्थियों की एक सभा में उन्होंने कहा था—

"यदि मुझसे कहा जाय कि भाषा के संपूर्ण भांडार में से तुम एक ऐसा वाक्य चुन कर कहो, जो तुम्हारे अंतरतम हृदय में भविष्याशा रूप से निगूढ़ हो, और उसके बाद चुप हो जाओ, तो मैं वह वाक्य यही कहूँगी—

"तुम्हीं भविष्य की आशा हो।"

ऐसे ही अहमदाबाद में एक छात्र-सम्मेलन में सभानेत्री के पद से आपने कहा था—

"मैं अपने जीवन में सर्वोच्च महिमा तथा सिद्धि इसी में समझूँगी कि मेरी समाधि के शिला-लेख पर ये शब्द अंकित किये जायँ—भारत की नई पीढ़ी से इसे प्रेम था, उसी पर इसको विश्वास था, उसी के साथ इसने काम किया और उसी के सहयोग से इसने भारत की स्वतंत्रता प्राप्त की।"

मद्रास में दिये गये एक भाषण में आपने छात्रों को देश की यशोवृद्धि के लिए अपने कर्तव्य-पथ पर दृढ़ रहने को ये शब्द कहे थे—

"तुमने महान् आदर्शों को पूर्वजों से थाती में पाया है। तुम पर बड़े-बड़े कर्त्तव्यों का भार है। तुम्हारा बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है। इससे प्रयोजन नहीं कि तुम कहाँ हो, कौन हो और क्या काम करते हो। गली में झाड़ू देने वाला भी देशभक्त हो सकता है। उसमें भी तुम एक ऐसा उत्तेजक भाव पा सकते हो, जिससे तुम्हारे मन को उच्च प्रेरणा प्राप्त हो सके। तुम चाहे जैसे दीन और अकिंचन हो, जो भार तुम्हारे ऊपर है, उसे टाल नहीं सकते। यह भार तुम्हारे ही वहन करने का है। अतएव तुम में से हर एक इस के लिए बाध्य है कि वह अपना जीवन देश-सेवा

में लगाये।"

राजनीति के क्षेत्र में—

सरोजिनी नायडू ने १९१५ ई० से राजनीति में भाग लेना आरम्भ किया। उस वरस की बम्बई काँग्रेस में उन्होंने स्वराज्य के प्रस्ताव का समर्थन किया। अगले कई वरसों के काँग्रेस-अधिवेशनों पर भी वे इस तथा दूसरे विषयों पर बोलती रहीं। शनैः-शनैः उनका राजनीतिक कार्य बढ़ता गया। साहित्य के क्षेत्र को छोड़कर राजनीति के क्षेत्र में प्रवेश करने के सम्बन्ध में उन्होंने एक बार मद्रास में व्याख्यान देते हुए कहा था—

"मुझसे लोग बार-बार पूछते हैं—'तुम कल्पना के हाथी-दांत के गुंबद से उतर कर बाजार में क्यों आ गई हो? तुमने कवि की वीणा और वंशी का परित्याग करके देश को स्वातंत्र्य-युद्ध के लिए उत्तेजित करने वाला बिगुल क्यों धारण कर लिया है?' इसीलिए कि कवि का कर्त्तव्य उद्यान में, स्वप्न के मंदिर में एकांत निवास करना नहीं है; उसे जनता के साथ रहना चाहिए, युद्ध की कठिनाइयों के बीच में रहना चाहिए।"

राजनीतिक कार्य की अपनी धारणा के सम्बन्ध में वे कहती हैं :—

"मैं इस बात को बार-बार दुहराती हूँ कि मेरी—स्त्री की बुद्धि—राजनीति की गहन सूक्ष्मताओं को अवगत नहीं कर सकती। मैं तो केवल उन महान् और सनातन प्रदेश-प्रेम के सिद्धांतों को समझती हूँ, जिनसे प्रेरित होकर प्रत्येक पीढ़ी अपनी सेवा भारत-माता के चरणों में अर्पित करती है तथा उनके मान को स्थायी रखने और उसके सम्मान की वृद्धि करने के लिए यत्नशील रहती है।"

यद्यपि सरोजिनी नायडू ने हिंदू-मुस्लिम-एकता के लिए बहुत

प्रयत्न किया तथापि उन्होंने कभी मुसलमानों की अनुचित माँगों का समर्थन नहीं किया। मुसलमानों की इस माँग के सम्बन्ध में कि उन्हें सार्वजनिक निर्वाचनों में अपने पृथक् प्रतिनिधि भेजने का अधिकार हो, सरोजिनी नायडू ने पञ्जाब-प्रांतीय-सम्मेलन में व्याख्यान देते हुए कहा था—

"पृथक्-जातीय-प्रतिनिधित्व का सिद्धांत बहुत दोषपूर्ण है; यह एक-जातीयता के भाव ही का घातक है। जब तक आपस में एक दूसरे पर विश्वास न होगा, तब तक हम स्वतंत्रता प्राप्त नहीं कर सकते। क्या हम ऐसी नींव पर स्वराज्य खड़ा करना चाहते हैं, जिसमें दरारें हों? जो स्वराज्य एकता की दृढ़ चट्टान पर आश्रित न रहे, प्रत्युत पृथक्-जातीय विचारों पर स्थित हो, वह स्वराज्य बालू की नींव पर आश्रित समझना चाहिए। जो जातियाँ पृथक्-प्रतिनिधित्व चाहती हैं, उनका यह कहना कि वे अपनी राजनीतिक स्थिति बनाये रखने के लिए ऐसा चाहती हैं, एक बड़े कलंक की बात है। किसी जाति का बल उसकी जन-संख्या पर आश्रित नहीं है प्रत्युत उस जाति के नैतिक बल पर आश्रित है। महात्मा गांधी के शरीर में एक बच्चे का भी बल न होगा, परन्तु उसने एक महान् शासन की जड़ हिला दी है······हमें जन-संख्या का ध्यान छोड़ देना चाहिए। श्रीकृष्ण, ईसा, मुहम्मद इन सभी धर्माचार्यों की यही शिक्षा है कि धर्म-पथ पर दृढ़ रहते हुए अपने साथियों की संख्या की परवा न करें।"

सरोजिनी नायडू का हृदय प्रवासी भारतीयों के दुःखों से बहुत दुःखी होता था। अँग्रेजी राज्य में भारत से लाखों लोग मज़दूरी आदि के लिए अफ्रीका, फ़िजी, मारिशस, ट्रिनिडाड आदि विदेशों को ले जाये गये थे। उनमें से बहुत-से तो प्रतिज्ञाबद्ध कुली-प्रथा के अधीन गये थे। उन लोगों की उन देशों में बहुत

बुरी अवस्था थी। वहाँ की सरकार उनके प्रति उदासीन थी और वहाँ की शासक जाति का उनके प्रति व्यवहार अच्छा न था। पराधीन होने के कारण भारत अपनी उस दूरस्थ संतान के कष्ट-निवारण करने में यद्यपि असमर्थ था तथापि अपने रक्त-मांस से बने अपने उन भारतीय बंधुओं के लिए भारत की जनता में सहानुभूति का भाव अवश्य था। काँग्रेस ने प्रवासी भारतीयों की समस्या को अपना लिया था। इस आंदोलन में सरोजिनी नायडू का विशेष भाग था। प्रयाग में अपने एक भाषण में उन्होंने कहा था—

"तुम लोग जो स्वराज्य के लिए आंदोलन कर रहे हो, तुम लोग जो देशभक्ति के स्वप्न देख रहे हो, यदि तुम समुद्र-पार से रात्रि-दिवस सुनाई देने वाले वेदना-क्रंदन का प्रतिकार नहीं कर सकते, तो क्या तुम देशभक्त कहलाने के योग्य हो? यह वेदना उन देश-भाइयों की है जिनकी दशा कुत्ते की दशा से अच्छी नहीं, उन बहिनों की है जिनके प्रति पशुतुल्य आचरण होता है।......आज मैं अपने अंदर उस यातना का अनुभव कर रही हूँ, जो वर्षों से वे बहिनें सहन कर रही हैं, जिनको अब मृत्यु ही में शांति मिल सकती है। मैं उस अकथनीय लज्जा और ग्लानि का अनुभव कर रही हूँ जो कुली-प्रथा से अभिन्न है।"

१९१९ ई० में सरोजिनी नायडू इंडियन-होमरूल-लीग की ओर से डेप्यूटेशन के साथ इंग्लैंड गईं। प्रथम योरुपीय महायुद्ध के समय अँग्रेजी सरकार हिंदुस्तान को आश्वासन देती रही थी कि युद्ध के समाप्त होने पर इस देश की राजनीतिक आकांक्षाओं को पूर्ण किया जायगा परंतु युद्ध के समाप्त होते ही सरकार की आँखें बदल गईं। महात्मा गांधी तक युद्ध में सरकार की सहायता के लिए कार्य करते रहे परंतु युद्ध की समाप्ति के

पश्चात् देश के सम्मुख निराशा-ही-निराशा दिखाई दी। देश की आवाज़ को निरुद्ध करने के लिए सरकार ने दमन-चक्र प्रवर्तित कर दिया था। युद्ध-समय की राज-भक्ति का पुरस्कार राजनीतिक सुधारों के स्थान पर 'रौलट एक्ट' मिला था। जब जलियाँवाला बाग़ का हत्याकांड हुआ तो सरोजिनी नायडू विलायत ही में थीं। इस आघात से प्रभावित होकर और इंग्लैंड के सरकारी अधिकारियों को भारत के प्रति उदासीनता देखकर, उन्होंने भविष्य में अपना सारा समय राजनीतिक कार्य ही के लिए देने का निश्चय किया। उन्होंने इंग्लैंड में पंजाब के हत्याकांड के सम्बन्ध में जो व्याख्यान दिये उनसे अँग्रेजी राजनीतिक दलों में सनसनी फैल गई। पार्लियामैंट में प्रश्न पूछे गये और स्वयं भारत-सचिव मिस्टर मांटेगू से सरोजिनी नायडू की लिखा-पढ़ी होती रही। अँग्रेज़ी सरकार तथा पार्लियामैंट ने पंजाब के अत्याचारों के प्रति उदासीनता दिखाई। उसे देखकर सरोजिनी नायडू को बहुत खेद हुआ और उन्होंने १९२० ई० में गांधी जी को लिखा—

"मेरा स्वास्थ्य अच्छा नहीं है। परंतु पंजाब और ख़िलाफ़त के युगल प्रश्नों पर मैं संपूर्ण ध्यान दे रही हूँ और उन्हीं के लिए कार्य कर रही हूँ। किंतु ऐसी जाति से जो बल के मद में चूर और अंधी हो रही है; जिसमें जाति, धर्म, वर्ण सम्बन्धी तीक्ष्णतर पक्षपात भरा है; जो भारतीय दशा, विचार और आकांक्षाओं का कुछ ध्यान नहीं रखती है; किसी प्रकार की आशा रखना व्यर्थ है। अँग्रेज़ी न्याय तथा सहानुभूति में मुझे जो विश्वास शेष था, उसे पार्लियामैंट में होने वाले पञ्जाब सम्बन्धी वाद-विवाद ने पूर्णतया नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है। इस विवाद में हमारे मित्रों ने अज्ञान प्रदर्शित किया, हमारे शत्रुओं ने धृष्टता—

दोनों का सम्मिलन हृदय को विदीर्ण करने वाली अवस्था उपस्थित करता है, मिस्टर मांटेगू फटी हुई डफली सिद्ध हुए।"

प्रायः उसी समय आप जिनेवा में होने वाले अंतर्राष्ट्रीय महिला-सम्मेलन में भारत के प्रतिनिधि के रूप में भाग लेने के लिए गईं। आपके इस सम्मेलन में भाग लेने से अंतर्जातीय महिलाओं की दृष्टि में भारतीय महिलाओं का गौरव बढ़ा।

जिन दिनों वे विलायत से भारत लौटीं उन दिनों भारत में सब ओर गांधी जी के असहयोग की धूम थी। उन्होंने आते ही घोषित किया कि उनका कार्य गांधी जी के संदेश को देश में प्रचारित करना है और यही काम वे करती भी रहीं। असहयोग के कार्यक्रम के अनुसार उन्होंने अपना कैसरे-हिन्द पदक जो सरकार की ओर से उन्हें मिला हुआ था, सरकार को लौटाते हुए, साथ यह पत्र लिखा—

"कई वर्षों से एक असहाय जाति अनेकों प्रकार से अपमानित हो रही है, उसका घोर दमन हो रहा है, उसके प्रति जो प्रतिज्ञाएँ की गई थीं, वे भंग की जा रही हैं। इन बातों के अतिरिक्त दो बड़े पाप. हुए हैं—एक तो मुसलमानों को दी हुई प्रतिज्ञा का अनादर और दूसरे पञ्जाब का हत्याकांड। यह मेरे सम्मान और मानुषिक विचारों के प्रतिकूल है कि मैं इन अत्याचारों को देखकर भी चुप रह सकूँ और उस सरकार से, जिसने कि न्याय का तिरस्कार किया है, सहमत हो सकूँ।"

मार्च १९२२ ई० में जब गांधी जी पर विद्रोह का अभियोग चला और उन्हें कारावास का दंड मिला तब सरोजिनी नायडू वहीं उपस्थित थीं। उन्होंने सारी कार्यवाही का बड़ा मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। गांधी जी के बंदी हो जाने पर उन्होंने आन्दोलन को जारी रखने का प्रण किया। तत्पश्चात् जब काँग्रेस में

कौंसिल-प्रवेश के सम्बन्ध में मतभेद हुआ तो सरोजिनी नायडू कौंसिल-बहिष्कार पर से प्रतिबन्ध उठाने के विरुद्ध थीं।

१६२४ ई० में वे पूर्वीय अफ़्रीका की होने वाली भारतीय काँग्रेस की सभा-नेत्री चुनी गईं। मुम्बासा में उन्होंने काँग्रेस-अधिवेशन में प्रभावशाली व्याख्यान दिया। पूर्वीय अफ़्रीका के हिंदुस्तानियों को उत्साह दिलाते हुए उन्होंने कहा—

"आप लोग एक स्वर से सरकार से कह दें कि यद्यपि प्राकृतिक नियम से नदियाँ उलटी नहीं बहा करतीं तथापि हम लोग आपके निर्णयों की धारा को उलटा बहा देंगे। यद्यपि हम लोग दीन और दरिद्र हैं तथापि आप यह न समझें कि आप हमारे अधिकारों को छीनने के उद्देश्य में सफल हो सकेंगे।"

प्रिटोरिया, डरबिन, जोहांसबर्ग, जहाँ-जहाँ श्रीमती जी पधारीं उनका बड़े समारोह से सार्वजनिक स्वागत किया गया। उन्होंने वहाँ के भारतवासियों से अनुरोध किया कि वे सदा अपने अधिकारों की रक्षा के लिए तत्पर रहें। जोहांसबर्ग के अपने व्याख्यान में आपने कहा—"मैं आप लोगों के सामने भारतीय राष्ट्र का संदेश लेकर आई हूँ। एक ऐसे राष्ट्र का संदेश लेकर आई हूँ जो अब निद्रा को त्याग चुका है, जिसने फूट का त्याग कर दिया है और जो अब किंकर्तव्य-विमूढ़ नहीं है। मैं अपने राष्ट्र की ओर से आपको विश्वास दिलाती हूँ कि कोई दूसरा राष्ट्र, चाहे वह कितना प्रबल हो, निर्भयता के साथ आपके अधिकारों का दमन नहीं कर सकता।"

प्रिटोरिया में आपने भारत के संदेश को इस प्रकार सूत्र-रूप में कहा—

"जहाँ तक सम्भव होगा, हम साम्राज्य के अंदर रहेंगे। यदि आवश्यक हुआ तो साम्राज्य के बाहर रह कर अपने

अधिकारों की रक्षा करेंगे । दक्षिण अफ्रीका का प्रश्न ही इस समस्या का निर्णय कर देगा।"

पूर्वीय तथा दक्षिणी अफ्रीका के भ्रमण में श्रीमती जी वहाँ बड़े-बड़े पदाधिकारियों से मिलीं और आपने तद्देशस्थ भारतीयों की समस्याओं को सुलझाने के सम्बन्ध में बातचीत की। आपके व्याख्यानों में सदा बड़े-बड़े गण्य-मान्य व्यक्ति सभापति होना अपना गौरव समझते थे । आपके उस भ्रमण से उस देश के भारतीयों के उत्साह बढ़ गये और उस देश के उच्च पदाधिकारियों के हृदयों में कुछ परिवर्तन हुआ। जुलाई १९२४ ई० में आप उस देश से भारत लौट आईं।

१९२४ ई० की बेलगाँव-काँग्रेस में प्रवासी भारतीयों के सम्बन्ध का प्रस्ताव आप ही ने प्रस्तुत किया। १९२५ ई० के काँग्रेस के कानपुर-अधिवेशन की सभा-नेत्री आप ही निर्वाचित हुईं और आपने बड़े सुचारु रूप से अधिवेशन के कार्य का संचालन किया। अपने इस काल में आपने देश में परिभ्रमण करके जनता में जागृति उत्पन्न कर दी।

गांधी जी के नमक-सत्याग्रह में आपने बढ़-चढ़ कर भाग लिया। गांधी जी के बंदी होने के पश्चात् आप सत्याग्रह-संग्राम की संचालिका नियुक्त हुईं । २३ मई, १९३० को आपको बंदी किया गया, परंतु २६ जनवरी, १९३१ ई० को गांधी-इरविन समझौते के अनुसार आपको छोड़ दिया गया । १९३१ ई० में आप गोलमेज-सम्मेलन पर विलायत गईं । १९३२ ई० में आपको सविनय-अवज्ञा-आंदोलन में भाग लेने पर बंदी कर लिया गया और एक वर्ष कारावास का दंड मिला । मुक्त होने पर आपको सरकार की ओर से दक्षिण अफ्रीका जाने वाले शिष्ट-मंडल की सदस्या बना कर भेजा गया।

१६४० ई० में जब गांधी जी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह का आंदोलन आरम्भ किया तो श्रीमती जी को बंदी कर लिया गया। १६४२ ई० में 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव के स्वीकृत किये जाने पर कॉंग्रेस के अन्य नेताओं के समान आपको भी बंदी कर लिया गया था और दीर्घ काल तक कारावास में रखा गया।

अगस्त १६४७ ई० में भारत के स्वतंत्र हो जाने पर आपको संयुक्तप्रांत के गवर्नर-पद पर नियुक्त किया गया। उसी उच्च पद पर आरूढ़ रहते हुए १ मार्च १६४६ ई० को प्रातःकाल ३-३० बजे सहसा हृद्रोग से आपकी मृत्यु हो गई।

भारत-कोकिला श्रीमती सरोजिनी नायडू की आकस्मिक मृत्यु का समाचार सारे भारत में आन-की-आन में फैल गया और सारा राष्ट्र शोक-सागर में निमग्न हो गया। ऐसी दिव्य विभूति के अलग हो जाने पर शोक तो स्वाभाविक ही था परंतु इतना संतोष था कि आपने अपने प्रिय भारत को स्वतंत्र देखकर प्राण छोड़े हैं और आपको भारतीय रमणी की आकांक्षित सोहाग की मृत्यु प्राप्त हुई है। आपका शरीर नहीं रहा परंतु आप अपने सेवा-कार्य और अपनी साहित्य-रचना के रूप में जीवित हैं और सदा जीवित रहेंगी।

लाला लाजपतराय

•

लाहौर के गोलबाग़ में, टाऊन हाल के सामने, एक ऊँचे मर्मरोपल-निर्मित स्तम्भतल पर एक मझोले कद के मनुष्य की मूर्ति स्थापित थी। तन कर खड़ी मूर्ति का दायाँ हाथ, मानों ललकार कर कुछ कहने के लिए, ऊपर उठा था। नीचे के स्तम्भ-तल पर कुछ चित्र थे, जिनमें एक बच्चे का चित्र भी था जो अपनी माता की उंगली पकड़े ऊपर की ओर देखकर माता से पूछता है कि 'यह कौन है ?' माता के मुख के आगे अंकित था—'पंचनद-पंचानन'। देश के विभाजन से पहले, जब वहाँ हिंदू जनता का भी निवास था, वह मूर्ति एक तीर्थ-स्थान के समान थी। बाहिर से लाहौर जाने वाले हिंदुओं के लिए, बहुत-से मुसलमानों के लिए भी, वह एक देखने की वस्तु थी। बहुधा देखा जाता था कि दर्शनार्थ आये हुए लोगों के बच्चे, अपने माता पिता से वह प्रश्न पूछते थे जो कलाकार ने स्तम्भतल पर अंकित बच्चे के मुख से पुछवाया था। आज लाहौर का वह स्थान सूना होगा या उस स्थान पर कुछ और होगा; क्योंकि देश के परि-वर्तित वातावरण में उस मूर्ति को लाहौर से शिमला लाना ही उचित समझा गया। कदाचित् आज उस पर्वतीय नगर के बच्चों के हृदय में भी वीर-मुद्रा-विभूषित उस मूर्ति को देखकर वही स्वाभाविक प्रश्न उठता होगा। इस लेख में आज उसी प्रश्न का उत्तर देने जा रहे हैं।

पंजाब प्रांत को ठीक ही किसी ने भारत का खड्गधारी हस्त

कहा है। इतिहास की ज्योति काल के अंधकार और धुँदलेपन को चीरती हुई प्राचीनता की जिस सीमा तक पहुँचती है, वहीं हमें भारत का यह पश्चिमोत्तरीय प्रदेश आक्रमणकारियों के आक्रमणों को अपने वज्र-वक्षस्थल पर झेलता हुआ दीख पड़ता है। योरुप के लोगों के अतिरिक्त जो आक्रमणकारी भी भारत में आया, उसका प्रतिरोध पहले पञ्जाब ने किया। बाहर से आने वाले कुछ लोग तो पंजाब से पराजित होकर लौट गये और कुछ पंजाब की जनता में विलीन हो गये और देश के अङ्ग बन गये। परंतु उन बाहर से आने वालों में मुसलमान आक्रमणकारी ऐसे थे जो न तो पराजित होकर लौटे और न इस देश की जनता में विलीन हो सके। उनके आक्रमणों के समय भारत की पुरानी वीरता और एकता नष्ट हो चुकी थी। भारत के लिए लम्बी शताब्दियों की दासता का युग आरम्भ हो गया था। मुस्लिम राज्य का प्रातःकाल हुआ, मध्याह्नकाल हुआ और अंततः सायंकाल हुआ। उस समय के इतिहास को पढ़ते हुए कई स्थलों पर भारत की पराधीनता के स्वाधीनता में परिवर्तित होने के अवसर दिखाई देते हैं परन्तु विधाता ने कुछ और विधान विहित कर रखा था। अँग्रेजी राज्य का सूर्योदय होता है और कुछ देर में प्रातःकाल मध्याह्नकाल में परिणत हो जाता है। भारत शताब्दियों की गहन निद्रा में सुप्त कभी कभी निद्रा या अर्धचेतना में स्वाधीनता के कुछ शब्द बुड़बुड़ा कर, पुनः पुनः मूक हो जाता है। उन्नीसवीं शताब्दी आ पहुँचती है। देश में सन् सत्तावन की आग भड़कती है परन्तु बहुत कुछ भस्मसात् करके बुझ जाती है। सभी ओर निराशा का अंधकार फैल जाता है। राजस्थान और महाराष्ट्र की शक्तियों से कोई आशा नहीं रहती और पंजाब की सिक्ख शक्ति भी समाप्त हो जाती है। क्या सदा

की पराधीनता भारत के भाग्य में ही बँधी है ?

नहीं, समय बदलने वाला है। जागरण के चिह्न दिखाई देने लगते हैं। भारत की सुप्त शक्तियाँ जागृति की अँगड़ाई लेती हैं। स्वतंत्रता का बीज स्फुटित होता है। भारत में एक सांस्कृतिक चेतना उद्भूत होती है। बंगाल में राजा राममोहन राय, महर्षि देवेंद्रनाथ, रामकृष्ण परमहंस आदि महापुरुष जन्म लेते हैं और गुजरात में स्वामी दयानंद सरस्वती का जन्म होता है। ये महापुरुष अपने-अपने ढंग से देश के पुनरुत्थान की नींव डालते हैं और अपने-अपने दृष्टिकोण से देश की समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न करते हैं। हम ने यहाँ स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा प्रवर्तित आंदोलन पर कुछ कहना है क्योंकि उसी आंदोलन से प्रभावित होकर पंचनद-पंचानन, हमारे पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय कार्यक्षेत्र में आये, और तत्पश्चात् राजनीति के क्षेत्र में जाकर भी, वे उस आंदोलन के प्रभाव को अपने में से निराकृत न कर सके।

स्वामी दयानंद सरस्वती, गुजरात के जैन-धर्म-प्रधान प्रदेश में और अध्ययनाध्यापन-प्रवृत्त ब्राह्मण-परिवार में उत्पन्न हुए परन्तु उनके अंदर क्षत्रियोचित वीरता और तीक्ष्णता का बाहुल्य था। प्रकृति से या अनुभव से वे गुजरात की अपेक्षा पंजाब के निकटतर थे। आर्यसमाज रूपी वृक्ष को उन्होंने पहले अपने प्रांत ही में आरोपित किया परंतु वहाँ का जल-वायु उसे अनुकूल न बैठा और वह मुरझा गया। वही पौदा जब पंजाब की वीर-रक्त-रञ्जित भूमि में लगाया गया तो दिन-दूना और रात-चौगुना बढ़ने लगा। स्वामी जी ने देश को प्राचीन वैदिक संस्कृति से जीवन-ज्योति ग्रहण करने का संदेश दिया। उन्होंने बताया कि देश की अवनति का कारण वे सब बुराइयाँ हैं जिनका उद्भव वेद की

शिक्षा को तिलांजलि देने से हुआ। उन्होंने देखा कि करोड़ों वैदिक धर्मावलम्बी पराधीनता की शताब्दियों में मुस्लिम धर्म को अपना चुके हैं, हजारों और लाखों अब भी इस्लाम और ईसाई धर्म की ओर बढ़े जा रहे हैं, करोड़ों—जाति के अंग—अछूत होने के कारण पद-दलित होकर निर्जीव हो रहे हैं, स्त्री-जाति अंधकार और अपमान के गर्त्त में गिरी है, देश में शिक्षा का और विशेषतः राष्ट्रीय शिक्षा का अभाव है और प्राचीन वर्णाश्रम धर्म का उच्चादर्श लुप्त होकर जात-पात का भयानक रूप सब ओर व्यापक है। इस दृष्टिकोण से भारत के उद्धार के उद्देश्य से सामूहिक प्रयत्न करने के लिए स्वामी दयानंद ने आर्यसमाज की स्थापना की और आर्यसमाज के कार्य का केंद्र बना—पंजाब। १८७७ ई० में लाहौर में आर्यसमाज की स्थापना हुई। आर्यसमाज के आंदोलन के उस अरुणोदय-काल में हम देखते हैं कि कार्यकर्त्ताओं में कालेज के तीन विद्यार्थी भी हैं जिनमें एक हैं—हमारे इस लेख के नायक लाजपतराय और दूसरे दो हैं—गुरुदत्त और हंसराज। यहीं से हमारे भावी पंजाब-केसरी का सार्वजनिक जीवन आरम्भ होता है।

लाला जी के परिवार का निवास-स्थान पंजाब के लुधियाना जिला में 'जगराँव' था परन्तु उनका जन्म उनके ननिहाल में हुआ था। इनके पिता कट्टर जैन थे। पिता ला० राधाकृष्ण नौकरी में थे और कई स्थानों पर रहे। नवयुवक लाजपतराय ने १८८० ई० में पन्द्रह बरस की आयु में अम्बाला से एंट्रेंस परीक्षा पास की और वे लाहौर में उच्च शिक्षा के लिए गये। कालेज में पढ़ते हुए उन्होंने मुख्त्यारी की परीक्षा भी पास कर ली और वे जगराँव में काम करने लगे। १८८५ ई० में वकालत की परीक्षा पास की और १८८६ ई० में हिसार में वकालत करने लगे। १८९२ ई० में

आप मित्रों के अनुरोध से लाहौर में आकर वकालत करने लगे। स्वामी दयानंद की मृत्यु के पश्चात् उनके स्मारक के रूप में १८८६ ई० में डी० ए० वी० कालेज की स्थापना हो चुकी थी और लाला जी वकालत के काम से पर्याप्त समय बचाकर आर्यसमाज और डी० ए० वी० कालेज के काम के लिए देते थे।

आरम्भ ही से लाला जी को सार्वजनिक सेवा के प्रति आकर्षण था। हिसार में वकालत करते हुए वे वहाँ की म्यूनिसिपल कमेटी के अवैतनिक मंत्री थे। वहाँ पर हुई एक घटना से लाला जी के चरित्र पर विशेष प्रकाश पड़ता है। एक बार वहाँ हिसार में पंजाब के लाट साहब के आगमन का कार्यक्रम था और उन्हें म्यूनिसिपल कमेटी की ओर से अभिनंदन-पत्र दिया जाना था। म्यूनिसिपल कमेटी के प्रधान वहाँ के डिप्टी कमिश्नर एक अँग्रेज थे जो चाहते थे कि अभिनंदन-पत्र अँग्रेजी में हो ताकि वे स्वयं लिखें और प्रस्तुत करें और जनता की कठिनाइयों का वर्णन न कर साधारण प्रशंसात्मक बातें कह दें। परन्तु लाला लाजपतराय का आग्रह था कि अभिनंदन-पत्र उर्दू में हो जिसे वे स्वयं लिखें और प्रस्तुत करें और जिसमें वे जनता के भावों का समावेश कर सकें। कुछ संघर्ष के पश्चात् लाला जी की बात स्वीकृत की जानी पड़ी।

लाहौर में रहते हुए वे चिरकाल तक डी० ए० वी० कालेज कमेटी के अवैतनिक मंत्री और तत्पश्चात् उप-प्रधान रहे। कुछ समय के लिए उन्होंने कालेज में शिक्षण-कार्य भी किया। शिक्षण-कार्य में उनको स्वाभाविक रुचि थी। १६०५ ई० में वे अमेरिका की शिक्षण-संस्थाओं को देखने के लिए वहाँ गये। वहाँ से लौटकर उन्होंने शिक्षा पर पुस्तकें लिखीं। अँग्रेजी राज्य के स्थापित हो जाने से सरकार को ऐसे हिन्दुस्तानियों की

आवश्यकता थी जो अँग्रेज़ी की शिक्षा पाकर उन छोटी-मोटी आसामियों पर आरूढ़ हो सकें जिनके लिए विलायत से अँग्रेज़ नहीं लाये जा सकते थे । इस उद्देश्य से सरकार ने अपने स्कूल कालेज खोले थे और ईसाई मिशनों को स्कूल और कालेज खोलने के लिए प्रोत्साहित किया था। आर्थिक उन्नति के इस स्वाभाविक प्रलोभन से आकर्षित हो, समूह-के-समूह भारतीय नवयुवक स्कूलों और कालेजों में भरती हो रहे थे। उन शिक्षा-संस्थाओं में शिक्षा पाकर नवयुवक बहुधा ईसाई धर्म के प्रशंसक और हिंदू-संस्कृति के निंदक बन जाते थे। इस अवस्था को देखकर आर्यसमाज ने डी० ए० वी० कालेज के रूप में एक ऐसे प्रयत्न का आरम्भ किया था जिससे नवयुवकों को वह पाश्चात्य शिक्षा तो मिले, परंतु साथ ही हिंदू धर्म और हिंदू संस्कृति के प्रति उन की श्रद्धा बनी रहे । इस प्रयत्न में ला० लाजपतराय का मुख्य हाथ था।

लाला जी के अंतःकरण में दुःखियों के दुःख को देखकर द्रवित हो उठने वाला हृदय था। १८६६ ई० में उत्तर भारत में और १८६६ में राजपूताना में जब भीषण दुर्भिक्ष पड़े, तो बुभुक्षा-पीड़ित भारतीय जनता त्राहि-त्राहि करती हुई मृत्यु के गाल में जाने लगी । कितने ही माता-पिताओं ने अपने हृदय के टुकड़ों को बेच डाला, कितनी ही सती साध्वी देवियों ने अपनी लज्जा को तिलांजलि दे दी, काल-भगवान् का तांडव-नृत्य होने लगा। उस समय आर्यसमाज की ओर से ला० लाजपतराय ने अकाल-पीड़ित जनता की सहायता का बीड़ा उठाया। स्थान-स्थान पर घूम कर उन्होंने धन-संग्रह किया और साहाय्य-केन्द्र खोले। दुर्भिक्ष के परिणाम-स्वरूप अनाथ होने वाले बच्चों के लिए अनाथालय स्थापित किये गये। तत्पश्चात् जब काँगड़े के भूचाल से बहुत

विनाश हुआ तो पीड़ितों की सहायता के लिए महाप्रयत्न किया गया। उस प्रयत्न की आत्मा भी ला० लाजपतराय थे। १९०७-८ ई० में जब उड़ीसा, मध्य प्रदेश और संयुक्त प्रांत में अकाल पड़ा तो भी लाला जी ने कष्ट-निवारण-कार्य में विशेष भाग लिया। १९०५ ई० में उन्होंने आर्यसमाज की ओर से एक सहायक-समिति का संगठन किया जो आजकल की सेवा-समिति के समान थी।

आर्यसमाज का एक आवश्यक कार्य था अछूतोद्धार, दलितोत्थान। इस काम में भी लाला जी ने अग्रणी का काम किया। भारत के दुर्भाग्य से छूत-छात का रोग भारत को क्षय-रोग के समान खाये जा रहा था। इस रोग के समूल विनाश के लिए जो भगीरथ प्रयत्न पश्चात् गांधी जी ने किया उसका आरम्भ स्वामी दयानंद और आर्यसमाज के कुशल हाथों से हो चुका था। अछूतोद्धार के कार्य के निमित्त लाला जी ने उत्तरीय भारत के कई बड़े-बड़े नगरों का भ्रमण किया और वहाँ इस विषय पर व्याख्यान दिये। १९१२ ई० में गुरुकुल काँगड़ी में हुए अछूतोद्धार-सम्मेलन के सभापति आप ही थे। इस काम के लिए उन्होंने ४० हजार रुपया जेब से दिया और ईसाई-मुक्ति-सेना के समान एक समिति का संगठन किया। राजनीति के क्षेत्र में आने के पश्चात् भी उन्हें अछूतोद्धार के इस काम में रुचि रही। जीवन के अन्तिम कुछ बरसों में उन्होंने इस काम के लिए विशेष समय दिया। आप द्वारा स्थापित लोक-सेवक-समिति में इस कार्य के लिए अपना सारा समय देने वाले सदस्य (Life members) भी थे। उनका अछूतोद्धार का यह प्रयत्न पश्चात् गांधी जी द्वारा स्थापित हरिजन-सेवक-संघ में ही सम्मिलित हो गया।

ला० लाजपतराय के जीवन का पहला युग आर्यसमाज के

सार्वजनिक कार्य का युग है। तत्पश्चात् उनके कार्य का क्षेत्र राजनीति और काँग्रेस हो जाता है। काँग्रेस की स्थापना अँग्रेजी सरकार के प्रोत्साहन से हुई थी ताकि वह देश के सुशिक्षित वर्ग के मनोभावों से परिचित रहे और सन् सत्तावन के आकस्मिक ववंडर जैसी विपत्ति से सुरक्षित रह सके। परन्तु जब कुछ ही वर्ष बीतने पर काँग्रेस की शक्ति बढ़ने लगी और वह देश की प्रतिनिधि राष्ट्रीय संस्था का रूप धारण करने लगी तो सरकार को चिन्ता पड़ी और उसे कई गण्य-मान्य भारतीयों द्वारा ही इसका विरोध करवाना आरम्भ कर दिया। इस विरोध में सबसे अधिक शक्तिशाली हाथ सर सैयद अहमद खाँ का था। किसी समय वे राष्ट्रीयता के रंग में रँगे थे और बिना जाति-भेद के अखिल भारत के पुनरुत्थान के लिए प्रयत्नशील थे। उस समय लाला जी के पिता सर सैयद के बड़े भक्त और श्रद्धालु थे। सर सैयद के परिवर्तित हो जाने पर लाला जी के पिता और स्वयं लाला जी ने उनके विरोध में कई खुली चिट्ठियाँ पत्रों में छपवाईं। काँग्रेस का काम भी उन दिनों केवल वार्षिक अधिवेशनों तक सीमित था। वक्तृताएँ देना और प्रस्ताव पास करना मात्र था। लाला जी उन अधिवेशनों में जाया करते थे। १८८८ ई० में बनारस में हुए काँग्रेस-अधिवेशन में लाला जी सर सैयद की नीति के विरुद्ध बड़े आवेग से बोले थे। उनके उस भाषण की पत्रों में प्रशंसा भी हुई थी। इस प्रकार बरसों तक लाला जी की भाषण-शक्ति का प्रधान क्षेत्र आर्य-समाज ही रहा। १९०५ ई० में काँग्रेस की ओर से वे श्रीगोखले के साथ इंग्लैंड गये ताकि भारतीय दृष्टिकोण को पार्लियामैंट के सदस्यों के सामने प्रस्तुत करें। वहाँ पर उन्होंने एक मास में ४० व्याख्यान दिये और लेख भी लिखे। उस डेप्यूटेशन में जाने का जो प्रभाव उन पर पड़ा उसको उन्होंने

लौटकर भारत में इन शब्दों में प्रकट किया—"एक अँग्रेज भीख माँगने से अधिक किसी बात से घृणा नहीं करता। मैं समझता हूँ कि भिक्षुक इसी योग्य है कि उससे घृणा की जाय। इसलिए अँग्रेज को यह दिखा देना हमारा कर्त्तव्य है कि हमें अपनी अवस्था का अनुभव हो गया है और अब हम भिक्षुक नहीं हैं।"

१९०५ ई० तक काँग्रेस अधिकतया भिक्षुक-वृत्ति ही का आश्रय लेती रही। यदि उसने कभी कठोर शब्दों का प्रयोग भी किया तो उसी प्रकार जैसे कोई भिक्षुक प्रार्थना के साथ-साथ शाप देने का डर दिखाता है। १९०५ ई० में भारत के राष्ट्रीय आंदोलन में जीवन-स्फूर्ति का संचार हो गया। भारतीय जागरण को दबाने के उद्देश्य से लार्ड कर्जन ने १९०५ में बंगाल के दो टुकड़े कर दिये। इस आघात ने बंगाल की रग-रग में उष्ण रक्त प्रवाहित कर दिया। अखिल बंगाल-आंदोलन हो उठा। उसी बरस जापान ने रूस को पराजय दी थी और इस घटना से एशिया के देश-देश में प्रसन्नता और आवेग की लहर दौड़ गई थी। एक छोटे से एशियाई देश को, जो अभी अचिर जागृत था, योरुप की एक महान् शक्ति पर विजय प्राप्त होना एक आश्चर्यजनक घटना थी। इस घटना ने भारत की प्रगति को अंकुश का काम दिया। भारतीय जागरण का केंद्र बंगाल था। बंगाल से विदेशी माल के बहिष्कार और स्वदेशी का आंदोलन चला। लाला लाजपतराय ने और लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने बंगाल के इस आंदोलन का पोषण किया। राष्ट्रीयता और जागरण की वह ज्योति बंगाल से पंजाब में पहुँची। पराधीनता के घाव तो देश के समूचे शरीर पर थे, परन्तु वह वेदना जागृति का रूप वहीं धारण कर सकती थी जहाँ उपयुक्त नेता हो। लाला जी उस समय पंजाब के उपयुक्त नेता थे। उस समय भारत की सजीव राष्ट्रीयता के तीन नेता माने जाते थे,

बाल, लाल और पाल; अथवा बालगंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय और विपिनचंद्र पाल।

१९०७ में यह जागृति पंजाब में एक विशेष रूप धारण कर गई। उस समय सरदार अजीतसिंह के प्रयत्न से लाहौर में देश-प्रेमी-सभा की स्थापना हुई जिसकी साप्ताहिक बैठक में सैंकड़ों लोग आते थे। उस समय लायलपुर जिले में किसानों को सिंचाई-कर की वृद्धि पर आपत्ति थी। उन्हीं दिनों लाहौर के पत्र 'सिविल ऐंड मिलिटरी गज़ट' ने भारतीयों के प्रति ईर्ष्या-द्वेष-पूर्ण लेख निकाले और लोकप्रिय पत्र 'पंजाबी' पर देश-द्रोह का अभियोग चला। इन सब बातों से पंजाब में आवेग बढ़ गया। उधर बंगाल में जन-जन के उत्तेजित कण्ठ से 'के बोले मातुमि अबले' की ध्वनि निकल रही थी और इधर पंजाब में घर-घर 'पगड़ी सँभाल ओ जट्टा' का उग्र गान गाया जा रहा था। रावलपिंडी में कुछ माननीय व्यक्तियों पर सरकार ने विद्रोह का एक निराधार अभियोग चलाना चाहा। उनकी सहायता के लिए लाला जी वहाँ जा पहुँचे। कचहरी में जनता की भीड़ लग गई। अभियोग स्थगित करना पड़ा, परन्तु संवृद्ध उत्तेजना के कारण जनता अँग्रेज़ अधिकारियों की कोठियों में घुस गई। बड़ी कठिनता से जनता के आवेग को नियंत्रित किया गया। सरकार पंजाब के इस सारे उपद्रव की जड़ लाला जी ही को समझती थी। उनके बंदीकरण की अफवाहें प्रतिदिन उड़ती थीं। लाला जी भी तैयार थे। उनका परिवार लुधियाना में था और केवल एक लड़का पास था। जिस-जिस को उन्होंने पत्र लिखने थे, लिख दिये थे। अंततः एक दिन जब वे कचहरी जाने को उद्यत थे, उनको बंदी करके जेल में पहुँचा दिया गया। उस समय के अपने भावों को लाला जी ने अपनी 'निर्वासन की कहानी' में इस प्रकार लिखा है—

"सबसे पहले मैंने ऐसा अच्छा अवसर उपस्थित करने के लिए परमात्मा का धन्यवाद किया; क्योंकि इस समय मेरे पिता, मेरी स्त्री तथा बच्चों में से कोई उपस्थित न था; उनमें से किसी के रहने पर जो हृदय-विदारक दृश्य उपस्थित होता उसे देखकर चित्त विचलित हो जाना कोई बड़ी बात न थी। दूसरी बात जिस के लिए मैंने परमात्मा का धन्यवाद किया, वह यह थी कि मेरी माता का देहांत हो चुका था। मुझे अपने पिता की चिंता तो थी किंतु यह विश्वास था कि वे दृढ़ हृदय के पुरुष हैं; इसलिए विचलित न होंगे। मैं अपने बच्चों और स्त्री की ओर से भी निश्चिंत था; क्योंकि ये लोग भी मेरे पिता की देख-रेख में थे। इस प्रकार अपनी कुटुम्ब-सम्बन्धी बातों का विचार करने के बाद अपनी परिस्थिति के विषय में स्वतंत्रतापूर्वक विचार करने लगा। मुझे अपने अन्दर किसी प्रकार की मानसिक अथवा नैतिक दुर्बलता का कुछ पता न लगा और न अपने विचारों से डगमगाने का मुझे कोई कारण प्रतीत हुआ। बाल्यावस्था ही से मुझे परमात्मा पर पूर्ण विश्वास था। यही विश्वास इस समय भी मुझे बल दे रहा था। मुझे अपनी तात्कालिक अवस्था में संकटों को सहने की अधिक शक्ति प्राप्त हुई। मैंने अपने आपको इस आत्म-निरीक्षण में अत्यंत दृढ़ पाया। मैंने प्रभु से प्रार्थना की कि मुझे इन कठिनाइयों को सहन करने का बल दे और मुझसे जान या अनजान में कोई ऐसा कार्य न होने दे जिससे मातृभूमि की सेवा के मेरे उद्देश्य में किसी प्रकार की अड़चन आये या मेरा समाज किसी तरह अपमानित और लज्जित हो।"

उसी रात लाहौर से स्पेशल गाड़ी के द्वारा प्रस्थान किया गया। गाड़ी पंजाब के हृदय-सम्राट्, पंजाब-केसरी, लाला लाजपतराय को लेकर, निद्रानिमग्न पंजाब को लांघ कर, गंगा और

यमुना को पार करती हुई कलकत्ता पहुँची। डायमंड हार्बर से उन्हें जहाज के द्वारा रंगून और रंगून से रेल के द्वारा माँडले पहुँचाया गया। गाड़ी पहुँचने के समय माँडले का स्टेशन खाली करवा दिया गया था। १६ मई को वे माँडले पहुँचे। उनके निर्वासन से जनता में बहुत असंतोष फैला। गोखले और तिलक ने सरकार के इस कार्य की घोर निंदा की। ब्रिटिश पार्लियामैंट में चर्चा हुई। अंत में मुक्त होकर १८ नवम्बर को वे लाहौर पहुँचे। माँडले जेल में पाँच-छः मास का वह समय उन्होंने धार्मिक पुस्तकों के अध्ययन और लेख-लेखन में व्यतीत किया।

मुक्त होकर उन्होंने कलकत्ता के पत्र 'इंग्लिशमैन', लंडन के 'डेली ऐक्सप्रेस' और लाहौर के पत्र 'सिविल ऐंड मिलिटरी गजट' पर अभियोग चलाया। इन पत्रों ने लाला जी के बारे में झूठी बातें छापी थीं कि वे सरकार के विरुद्ध विद्रोह करवाने वाले थे और अमीर काबुल से मिलकर अँग्रेजी राज्य को उखाड़ फेंकना चाहते थे, आदि-आदि। कलकत्ता हाईकोर्ट से उन्हें 'इंग्लिशमैन' के विरुद्ध डिग्री मिली और दूसरे दोनों पत्रों ने उनसे क्षमा माँग ली।

माँडले से लौटने पर लाला जी का देश में बड़ा भारी स्वागत और सम्मान हुआ। उस समय काँग्रेस में दोनों दलों—गरम दल और नरम दल का—पारस्परिक विरोध पराकाष्ठा को पहुँच चुका था। १६०७ का काँग्रेस-अधिवेशन नागपुर में होना निश्चित हुआ था और लोकमान्य तिलक उस अधिवेशन के प्रधान निर्वाचित हुए थे परन्तु नरम दल वालों ने अधिवेशन का स्थान नागपुर से सूरत बदल दिया ताकि लोकमान्य उसी प्रांत के होने के कारण प्रधान न हो सकें और उनकी जगह नरम दल के नेता रास-बिहारी घोष अध्यक्ष हों। गरम दल वालों ने यह चाल देख कर

सूरत के अधिवेशन के अध्यक्ष-पद के लिए ला० लाजपतराय जी का नाम प्रस्तुत किया परन्तु लाला जी ने झगड़ा समाप्त करने के लिए अपने नाम की स्वीकृति न दी और रासबिहारी घोष के नाम ही का समर्थन किया। दिसम्बर में सूरत का काँग्रेस-अधिवेशन हुआ, परन्तु दोनों दलों में झगड़ा बढ़ गया। लाला जी ने समझौते का प्रयत्न किया किन्तु असफल रहे। अंततः दो अधिवेशन हुए, एक नरम दल वालों का, जिसके अध्यक्ष रासबिहारी घोष थे और दूसरा गरम दल वालों का, जिसके अध्यक्ष अरविंद घोष थे। लाला जी दोनों अधिवेशनों में सम्मिलित हुए।

उस समय बंगाल में क्रांतिकारियों का बल बढ़ रहा था। सरकार के विरुद्ध देश का क्रोध बम-विस्फोट के रूप में निकल रहा था। सरकार की दमन-नीति भी उग्र हो रही थी। लोकमान्य तिलक बंदी किये गये और उन्हें छः बरस के कारावास का दंड मिला। १६०८ ई० में लाला जी इंग्लैंड गये। वहाँ पर उन्होंने भारत की परिस्थिति पर व्याख्यान दिये और लेख लिखे। उस देश में स्थित भारतीय विद्यार्थियों में जागृति पैदा की। जब मिंटो-मार्ले-सुधारों की घोषणा हुई तो लाला जी विलायत ही में थे। उन्होंने इन सुधारों की निस्सारता प्रकट की। १६०६ में वे भारत लौटे। उस समय उन्होंने 'पंजाब हिंदू-सभा' की स्थापना की जिसमें सभी हिंदूवर्ग और सम्प्रदाय एक मंच पर एकत्र हो सकें। सभा का पहला अधिवेशन श्री परतूलचंद्र चटर्जी की अध्यक्षता में हुआ। यह हिंदू-सभा मानों भावी हिंदू-सभा का बीज थी। १६१० ई० में वे पुत्र को, जो विलायत में पढ़ता था और वहीं बीमार हो गया था, लेने के लिए विलायत गये। भारत लौट कर भी पुत्र का स्वास्थ्य ठीक न हो सका और १६११ में उसकी मृत्यु हो गई। इस आघात को विस्मृत करने के लिए वे और अधिक तन्मयता

से काम में लग गये। उन्होंने एक शिक्षा-संघ स्थापित किया जिसका उद्देश्य शिक्षा-प्रसार था और अपने पिता जी के स्मारक के रूप में जगराँव में 'राधाकृष्ण हाई स्कूल' स्थापित किया।

१९०७ ई० के पश्चात् लाला जी देश में न रहने के कारण और काँग्रेस की पारस्परिक फूट से ऊबकर काँग्रेस से अलग हो गये थे। १९१२ ई० की बाँकीपुर-काँग्रेस में वे सम्मिलित हुए। उस अधिवेशन में श्री गोखले ने दक्षिण-अफ्रीका-स्थित भारतीयों की दुर्दशा का हृदय-विदारक चित्र खींचा। लाला जी ने भी इस विषय पर एक ओजस्वी भाषण दिया। कुछ ही समय पश्चात् दक्षिण-अफ्रीका में गांधी जी ने सत्याग्रह आरम्भ कर दिया। इससे देश में बड़ी जागृति फैली। उस समय तक भारतवासियों के पास प्रार्थना और याचना के अतिरिक्त दूसरा कोई ऐसा साधन न था जिसे वे अपने अधिकारों को मनवाने के लिए सरकार के विरुद्ध सामूहिक रूप में प्रयुक्त कर सकते। गांधी जी ने सत्याग्रह का नया नैतिक शस्त्र भारत तथा संसार को दिया। जैसे-जैसे दक्षिण-अफ्रीका में सत्याग्रह-आंदोलन अधिक उग्र रूप धारण करता गया वैसे-वैसे भारत में उसकी सहायता के लिए कार्य बढ़ता गया। लाला जी ने पंजाब में भ्रमण करके और व्याख्यान देकर २५ हजार रुपया इकट्ठा करके दक्षिण-अफ्रीका भिजवाया। १९१४ में इसी सत्याग्रह-आंदोलन के सम्बन्ध में डैप्यूटेशन के साथ लाला जी विलायत गये। परन्तु इस भिक्षा-वृत्ति से उन्हें न कुछ आशा थी और न इसका कोई परिणाम हुआ। डैप्यूटेशन के अन्य सदस्य तो लौट आये परन्तु लाला जी वहीं रहे। वहाँ पर उन्होंने आर्यसमाज पर एक पुस्तक लिखी। इंग्लैंड से वे जापान चले गये। १९१४ के काँग्रेस-अधिवेशन के लिए, जो मद्रास में होना था, अधिक प्रांतों ने लाला जी को अध्यक्ष निर्वाचित

किया था परन्तु जिन लोगों के हाथों में सत्ता थी वे किन्हीं कारणों से लाला जी की अध्यक्षता नहीं चाहते थे और उन्होंने प्रांतों से अपने मत वापिस लेने का अनुरोध किया।

जापान से लाला जी भारत लौटना चाहते थे परन्तु युद्ध छिड़ जाने के कारण उन्हें भारत आने के लिए पासपोर्ट न मिला। जापान से वे इंग्लैंड और फिर इंग्लैंड से अमेरिका चले गये। तब से लेकर १६२० के आरम्भ तक वे अमेरिका ही में रहे। युद्ध समाप्त हो चुकने के पश्चात् भी उन्हें तब तक भारत आने की आज्ञा न मिली जब तक योरुप में संधि होकर शांति स्थापित न हो गई। अमेरिका में लाला जी चुपचाप नहीं बैठे। वहाँ पर उन्होंने भारतीय राष्ट्रीयता का संदेश दिया और भारतीय स्वाधीनता के लिए कार्य करना आरम्भ कर दिया। उनके कार्य के मुख्य साधन थे—व्याख्यान तथा लेख। उन्होंने 'तरुण भारत' (यंग इंडिया) नाम का साप्ताहिक पत्र निकाला, जिसका सम्पादन-कार्य वे स्वयं करते थे। वहाँ पर उन्होंने 'इंडिया होमरूल लीग' की स्थापना की, जिसके सभापति तथा कोषाध्यक्ष वे स्वयं थे। अमेरिका के बहुत-से नगरों में लीग की शाखाएँ थीं। भारतीयों के अतिरिक्त कोई ८०० दूसरे व्यक्ति भी सदस्य थे। लीग का उद्देश्य था—युद्ध की समाप्ति पर भारत के लिए स्वभाग्य-निर्णय का अधिकार प्राप्त करना। इसके लिए अमेरिका के पत्रों में भी चर्चा हुई। लाला जी ने एक पुस्तक भी लिखी जिसका नाम था 'पोलिटिकल फ्यूचर ऑफ़ इंडिया' (भारत का राजनीतिक भविष्य)। अमेरिका के प्रसिद्ध व्यक्तियों से मिल कर उन्होंने उनका ध्यान भारतीय परिस्थिति की ओर आकर्षित किया। 'फाइट फ़ॉर क्रम्ज़' (टुकड़ों के लिए झगड़ा) नाम की पुस्तिका छपवा कर बँटवाई। ऐसी ही दूसरी कई पुस्तिकाओं की लाखों प्रतियाँ बँटवाईं। इससे बड़ा आंदोलन हुआ। यहाँ तक

कि अमेरिकन शासन-सभा की वैदेशिक समिति के सामने भी इस उद्देश्य का एक प्रस्ताव आया। भारतीय व्यापार की उन्नति के लिए उन्होंने भारतीयों तथा अमेरिकनों के साझे की एक कम्पनी स्थापित की। ऐसे ही न्यूयार्क में 'इंडियन इन्फार्मेशन ब्यूरो' की स्थापना की।

अमेरिका में भी खुफ़िया पुलिस के अँग्रेज़ लाला जी के पीछे लगे रहते थे। एक दिन तो उन्होंने यहाँ तक दुस्साहस किया कि जिस कमरे में वे अपने साथियों के साथ परामर्श करने वाले थे, उसमें उन्होंने छिपा कर 'डिक्टोग्राफ़' रख दिया। इस यंत्र में यह शक्ति है कि जो कुछ आदमी बोलता है, उसमें अंकित होता जाता है। संयोगवश उस बैठक में कोई बात ऐसी न हुई जिस पर आपत्ति हो सके।

जलियाँवाला बाग़ अमृतसर का हत्या-कांड उस समय हुआ जब वे अमेरिका में थे। समाचार सुन कर वे तड़प उठे और भारत लौटने के लिए आकुल हो गये। ऐसे संकट के समय वे अपने प्रांतवासियों के साथ रहना चाहते थे परन्तु वे फ़रवरी १९२० से पहले भारत न पहुँच सके। बहुत देर तक वे मातृभूमि से पृथक् रहे थे। आते ही कार्यव्यग्र हो गये। 'तिलक स्कूल ऑफ़ पॉलिटिक्स' की स्थापना की और उर्दू में दैनिक पत्र 'वंदे मातरम्' निकाला। वह समय भारतीय राष्ट्रीयता के इतिहास में विशेष जागृति का युग था। गांधी जी का भारत के राजनीतिक क्षेत्र पर स्वतः अधिकार हो गया था। काँग्रेस में दो विचार-धाराएँ चल रही थीं। कुछ लोग कौंसिल-प्रवेश के पक्ष में थे और कुछ असहयोग के पक्ष में। देश की परिस्थिति को देख कर लाला जी भी असहयोग के पक्ष में हो गये। दिसम्बर १९२० में कलकत्ता के विशेष काँग्रेस अधिवेशन के अध्यक्ष, जिसमें गांधी जी का

असहयोग का प्रस्ताव पास हुआ, स्वयं लाला जी थे।

उस समय देश की धमनियों में एक नया रक्त संचारित हो रहा था। गांधी जी भारतीय नैय्या के कर्णधार थे। देश के भिन्न-भिन्न वर्ग तथा सम्प्रदाय अपने भेद-भाव को विस्मृत करके मानों स्वाधीनता-देवी के मंदिर में सम्मिलित उपासना के लिए एकत्र थे। हिंदू-मुस्लिम वैमनस्य का नाम भी न सुना जाता था। भारत का चिर-सुप्त भाग्य जाग उठा था। असहयोग और असहकार का सुदर्शन चक्र चल रहा था। भारतीय सरकार की मानों जड़ें हिल गई थीं। भयभीत राज्य-सत्ता जनता में आतंक उत्पन्न करना चाहती थी। उग्र दमन-नीति का दौरदौरा था। सब ओर पकड़-धकड़ हो रही थी। साधारण कार्यकर्ता तक नहीं छोड़े गये थे तो लाला जी कैसे बाहर रह सकते थे। ऐसे समय सरकार पंजाब-केसरी को दहाड़ने के लिए कैसे मुक्त रहने दे सकती थी। ३ दिसम्बर १९२१ ई० को लाला जी बंदी किये गये और उन्हें १८ मास कारावास का दंड मिला। कुछ देर पश्चात् उन्हें छोड़ कर पुनः पकड़ लिया गया और दो वर्ष के कारावास का दंड दिया। जेल में लाला जी क्षयरोग-ग्रस्त हो गये। सरकार चाहती थी कि लाला जी मुक्त किये जाने के लिए प्रार्थना करें परन्तु वे दूसरी ही मिट्टी के बने थे। अंततः सरकार ने उनकी बीमारी के कारण उन्हें १९२३ में छोड़ दिया।

उस समय गांधी जी जेल में थे। उनका चलाया आंदोलन शिथिल हो गया था। सरकार ने अपनी नीति-कुशलता तथा साधन-प्रचुरता से देश में पारस्परिक फूट डलवा दी थी। सत्याग्रह-आंदोलन का आँचल हिंसारक्त से अकलुषित नहीं रह सका था। काँग्रेस में कौंसिल-प्रवेश तथा कौंसिल-बहिष्कार की दोनों विचार-धाराएँ चल रही थीं। मोतीलाल नेहरू तथा देशबन्धुदास असह-

योग की नीति में परिवर्तन चाहने वालों के नेता थे और राज-गोपालाचार्य अपरिवर्तनवादियों के प्रतिनिधि थे। गया-काँग्रेस के अधिवेशन में अपरिवर्तनवादियों की विजय हुई थी परन्तु दूसरी विचारधारा भी बल पकड़ती जा रही थी। इस प्रश्न पर पुनः विचारार्थ देहली में काँग्रेस का विशेषाधिवेशन हुआ और परि-वर्तनवादियों को कौंसिल-प्रवेश का अधिकार दे दिया गया।

लाला जी का स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता था। वह हिंदू-मुस्लिम फूट का युग था। शत्रु ने हमारी दुर्बलता को पहचान लिया था और उससे लाभ उठाने का भरसक प्रयत्न आरम्भ कर दिया था। लगभग बीस बरस पहले सरकार ने साम्प्रदायिक वैमनस्य का जो विषाक्त बीज बोया था, उसका घातक फल देश को चखना पड़ रहा था। जहाँ कुछ ही समय पहले देश के स्वत्वों के लिए सम्मिलित आंदोलन था, वहाँ अब हिंदू स्वत्वों और मुस्लिम स्वत्वों की दुहाई थी। देश के उस वातावरण में लाला जी को स्वामी श्रद्धानंद और महामना मालवीय के साथ मिल कर हिंदू-महासभा की स्थापना करनी पड़ी। हिंदू-महा-सभा का पहला अधिवेशन बनारस में हुआ। हिंदू-महासभा के १९२५ ई० के कलकत्ता-अधिवेशन के अध्यक्ष स्वयं लाला जी थे। लाला जी साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के विरुद्ध थे। उनके प्रयत्नों से हिंदू महासभा ने निश्चय किया कि वह कौंसिलों के लिए अपने प्रतिनिधि खड़े न करे। लाला जी के हिंदू-सभा स्थापित करने का यह अर्थ नहीं था कि वे साम्प्रदायिक रंग में रँग गये थे। देश के स्वत्वों की प्राप्ति के लिए वे काँग्रेस ही को प्रतिनिधि मानते थे परन्तु मुस्लिम राजनीति का प्रतिरोध करने के लिए वे हिंदू-महासभा की आवश्यकता को भी समझते थे। मुस्लिम साम्प्रदायिक माँगों के सम्मुख दूसरी ओर हिन्दू साम्प्रदायिक माँगों के रहने

से काँग्रेस की निष्पक्षता को बल मिलता था। मुसलमानों की अनुचित साम्प्रदायिक माँगों के उत्तर में काँग्रेस कह सकती थी कि—इस सम्बन्ध में हिंदू-महासभा के साथ समझौता कर लो।

१९२५ ई० में लाला जी स्वराज्य-दल की ओर से बड़ी कौंसिल में गये और कौंसिल में उस दल के डिप्टी-लीडर भी नियुक्त हुए परन्तु कुछ समय के पश्चात् मतभेद के कारण उस दल से अलग हो गये। वे किसी प्रस्ताव पर कौंसिल को छोड़ कर चले जाने के पक्ष में नहीं थे। पुनः स्वतन्त्र-काँग्रेस-दल बना कर वे स्वराज्य-दल द्वारा खड़े किये गये पदान्वेषियों का विरोध होते हुए भी दो स्थानों से निर्वाचित हुए। स्वराज्य-दल से अलग होते हुए भी उन्होंने कौंसिल में सदा जनता का पक्ष लिया। मद्रास में हुई काँग्रेस में उन्होंने हिंदू-मुस्लिम-एकता के लिए प्रयत्न किया। समझौता करने के उद्देश्य से उन्होंने सर्व-दल-सम्मेलन की ओर से प्रस्तुत की गई नेहरू-रिपोर्ट को, कई बातों में मतभेद रहते हुए भी, स्वीकार कर लिया। १९२५ के पश्चात् वे काँग्रेस से पृथक् ही रहे। अँग्रेजी सरकार ने भारतवासियों की राजनीतिक माँगों के औचित्य की जाँच करने के लिए एक कमीशन भेजा था जिसके सभापति के नाम से उसका नाम 'साइमन-कमीशन' प्रचलित हो गया था। वह कमीशन देश में भ्रमण करता हुआ ३० अक्तूबर १९२८ को लाहौर पहुँचने वाला था। अन्य स्थानों की भाँति लाहौर में भी काली झंडियों द्वारा कमीशन के प्रति असंतोष प्रदर्शित करने का कार्यक्रम था। उधर पुलिस भी दमन के लिए तत्पर थी। १४४ धारा लगा दी गई थी परन्तु जनता जलूस निकालने और प्रदर्शन करने पर तुली थी। लाला जी उसी दिन युक्तप्रांत की प्रांतीय हिंदू काँफ्रेंस से लौटे थ। १४४ धारा की घोषणा सुनकर उन्होंने भी जलूस में

सम्मिलित होने का निश्चय कर दिया। दोपहर को जलूस निकला और लाला जी आगे थे। स्टेशन के पास पहुँच कर जलूस रुक गया और कमीशन के आगमन की प्रतीक्षा करने लगा। 'साइमन लौट जाओ' और 'वंदे मातरम्' की ध्वनि से आकाश गूँज रहा था। पुलिस से यह सहन न हो सका। एकाएक जनता पर पुलिस की लाठियाँ बरसने लगीं। एक गोरे ने लाला जी पर भी लाठियाँ चलाईं जिनसे उनकी छाती पर चोटें आईं। उसी सायंकाल मोरीगेट के बाहर रोष प्रकट करने के लिए एक विराट सभा हुई। जनता की उत्तेजना का पारावार न था। उसी सभा में भाषण देते हुए लाला जी ने ये चिरस्मरणीय शब्द कहे थे—"मेरे शरीर पर पड़ी हुई एक-एक चोट ब्रिटिश साम्राज्य के कफ़न की कील होगी।" लाला जी के उस भाषण को जिसने भी सुना, वह नहीं भूल सकता। उस भाषण में उन्होंने अपनी भावी मृत्यु की ओर भी संकेत किया था।

लाठियों की वह चोट उस समय कुछ अधिक अनुभव नहीं की गई परन्तु तत्पश्चात् उनका स्वास्थ्य बिगड़ता ही गया। शरीरावस्था की अवहेलना करके वे सर्व-दल-सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए देहली चले गये। वहाँ से लौट कर दशा और भी अधिक बिगड़ गई। तथापि किसी को यह ज्ञान नहीं था कि इस महापुरुष का अन्त इतनी जल्दी आ जायगा। अंततः १७ नवम्बर १९२८ को प्रातःकाल ७ बजे ६३ वर्ष की आयु में 'पंचनद-पंचानन' पंजाब-केसरी चिरनिद्रा में मग्न हो गये।

लाला लाजपतराय की सर्वप्रियता का अनुमान उस जलूस को देखकर लगाया जा सकता था जो रावी-तट पर दाह-संस्कार करने के लिए ले जाई जा रही उनकी अरथी के साथ था। लाहौर तो क्या मानों पंजाब उमड़ आया था। जिस-जिस ने जहाँ कहीं

सुना, सुन कर सन्नाटे में आ गया और उड़ कर लाहौर पहुँचने को आकुल हो गया। जहाँ तक दृष्टि जाती थी, जनता का अपार संघट्ट था। सड़कों पर मानों सिरों का दरिया वहा जा रहा था। सब ओर से पुष्प-वर्षा हो रही थी। आश्चर्य हो रहा था कि लाहौर में इतने फूल कहाँ से आ गये। कौन ऐसा था जो पुष्पांजलि अर्पित करके अपने को सौभाग्यवान् करना नहीं चाहता था। हाथों से फूल गिर रहे थे और आँखों से आँसू।

सायंकाल होगया था। अंधकार छाने लगा था। रावी-तट पर अपार भीड़ से घिरी हुई चिता जल रही थी। लोग चिता के आस-पास की मिट्टी, स्मरणचिन्ह के रूप में उठाने के लिए परस्पर संघर्ष कर रहे थे। कुछ दूरी पर रावी की क्षीण धारा चुप-चाप वहे जा रही थी। इधर भगवान् विभावसु बड़ी तन्मयता से उस पंजाब-केसरी कहे जाने वाले शरीर को गोदी में धारण किये थे। वह दृश्य भूलने का नहीं है।

लाला जी की मृत्यु पर भारत तथा संसार के महापुरुषों की ओर से उन्हें जो श्रद्धांजलियाँ भेंट की गईं उन्हें उद्धृत करने के लिए यहाँ स्थान नहीं है। हाँ, गांधी जी ने कहा था—"लाला जी तो एक संस्था थे। अपने यौवन के समय से ही उन्होंने देश-भक्ति को अपना धर्म बना लिया था और उनके देश-प्रेम में संकीर्णता न थी। वे अपने देश से इसलिए प्रेम करते थे कि वे संसार से प्रेम करते थे। उनकी राष्ट्रीयता अंतर्राष्ट्रीयता से भरपूर थी······ उनकी सेवाएँ विविध थीं। वे बड़े ही उत्साही, समाज-सुधारक और धार्मिक थे।.........ऐसे किसी भी आंदोलन का नाम लेना असम्भव है जिसमें लाला जी सम्मिलित न थे। सेवा करने की उनकी भूख सदा अतृप्त ही रहती थी। उन्होंने शिक्षण-संस्थाएँ खोलीं, वे दलितों के मित्र बने। जहाँ कहीं दुःख-दारिद्र्य होता,

वे वहीं दौड़ते थे।"

लाला जी प्रवल समाज-सुधारक, शिक्षा-विशेषज्ञ और निपुण राजनीतिज्ञ थे। वे एक प्रभावशाली लेखक और शक्तिशाली वक्ता थे। भिन्न-भिन्न शिक्षा-पद्धतियों का अध्ययन करने के लिए उन्होंने देश-देशांतरों का भ्रमण किया। उनकी रचनाओं में भाषा का प्रवाह, घटनाओं का संकलन और हृदय का आवेग एक सुन्दर संमिश्रण के रूप में मिलते हैं। मेज़िनी, गेरीवाल्डी, शिवाजी, श्रीकृष्ण, दयानंद और गुरुदत्त की छोटी-छोटी जीवनियाँ लिख कर उन्होंने अपने को एक सफल जीवनी-लेखक सिद्ध कर दिया। उनकी पुस्तक 'तरुण भारत' (यंग इंडिया) ने एक समय बड़ी हलचल पैदा की थी। मिस मेयो की पुस्तक 'भारत माता' (मदर इंडिया) के उत्तर में उन्होंने 'दुःखी भारत' (अनहैप्पी इंडिया) नाम की पुस्तक लिखी। 'भारत माता' का इससे अच्छा और प्रामाणिक उत्तर दूसरा नहीं निकला। 'वंदे मातरम्' और 'पीपल' में उनके लिखे लेख बहुत प्रभावशाली होते थे। उनकी वक्तृत्व-शक्ति का तो कहना ही क्या था। ऐसे प्रभावशाली वक्ता कोई विरले ही होते हैं। कितना ही विशाल जन-समूह हो उस को वश में कर लेना उनके बायें हाथ का काम था। श्रोतागणों पर जादू करते थे। उनके हृदयों को वशीभूत कर लेते थे।

लाला जी के जीवन का पहला भाग आर्यसमाज के कार्य-क्षेत्र में व्यतीत हुआ। आर्यसमाज द्वारा हुए कार्य में कितना भाग लाला जी का है, इनका अनुमान लगाना कठिन है। काँग्रेस के क्षेत्र में कुछ बरस कार्य करके उन्हें एक लम्बे समय के लिए विदेश में रहना पड़ा। विदेशों में भारत के प्रति उत्पन्न हुई जागृति और सहानुभूति का बहुत-सा श्रेय लाला जी को है। भारत लौटने पर स्थायी रचनात्मक कार्य करने के लिए उन्हें

बहुत कम समय मिला। तथापि उनकी स्थापित की हुई लोक-सेवक-समिति (सर्वैण्ट्स ऑफ पीपल्ज़ सोसाइटी) ने पंजाब तथा भारत के जागरण में पर्याप्त कार्य किया है। उनकी स्थापित की हुई द्वारकादास लाइब्रेरी, जो अब शिमला में ले जाई गई है, एक सुसम्पन्न पुस्तकालय है। यदि उन्हें और अधिक समय मिलता तो उनका छोड़ा हुआ स्थायी रचनात्मक कार्य और अधिक विशाल होता।

सच तो यह है कि पंजाब की जनता ने उनके अंदर अपनी आत्मा को पाकर उन्हें अपना हार्दिक स्नेह दिया। वे पंजाब के हृदय-सम्राट् बने। पंजाब के साम्प्रदायिक वातावरण में ऐसी सर्वप्रियता प्राप्त करना लाला लाजपतराय ही का काम था। उन के पश्चात् पंजाब को कोई ऐसा सर्वप्रिय नेता नहीं मिला। उनकी मृत्यु से पंजाब में जो अभाव हुआ उसकी पूर्ति अभी तक नहीं हो सकी। यही कारण है कि पंजाब का विभाजन हुआ और पंजाबियों को विनाश का कटु अनुभव करना पड़ा।

सरदार पटेल

भारतीय स्वातन्त्र्य-संग्राम के अनुपम सेनानी सरदार वल्लभभाई पटेल का जन्म ३१ अक्टूबर सन् १८८५ को गुजरात प्रान्त के करमसद नामक ग्राम में हुआ था।

आपके पिता श्री झवेरभाई सामान्य स्थिति के व्यक्ति थे, किन्तु बड़े पराक्रमी और भगवद्भक्त थे। १८५७ के ग़दर में वे सब कुछ छोड़कर चुपचाप झाँसी की रानी की सेना में भरती हो गये और तीन वर्ष तक उन्होंने अँग्रेजी सेनाओं से डटकर टक्कर ली। पिता के समान आपकी माता ने भी आपके जीवन पर अपनी स्थायी छाप अङ्कित की है। ८० वर्ष की अवस्था में भी वह नियमित रूप से चर्खा कातती और भगवद्भक्ति में लीन रहतीं। माता-पिता और अपने अग्रज विट्ठलभाई पटेल के इन आस्तिक और साहसी संस्कारों से सरदार पटेल को भी राष्ट्रीय संस्कार प्राप्त हुए। सरदार विट्ठलभाई ने असेम्बली में प्रेजीडेंट पद को जिस शान के साथ निबाहा था, सरदार पटेल ने भी अपनी "सरदारी" को उसी प्रकार अक्षुण्ण बनाये रक्खा।

अपने जीवन के उषःकाल से ही आप सत्याग्रही और अदमनीय रहे थे। नड़ियाद के स्कूल में जब आप शिक्षा प्राप्त कर रहे थे तब एक शिक्षक से बिगाड़ होने पर आपने वहाँ हड़ताल करा दी और शिक्षक को अपनी हार माननी पड़ी। बड़ौदा में भी एक गुरु से मनोमालिन्य बढ़ गया। गुरु उनको तंग करने के लिए घर से रोज पहाड़े लिखकर लाने का काम देने लगे। अन्त में

एक दिन सरदार का धैर्य टूट गया। गुजराती में पहाड़े को "पाड़े" कहते हैं और इसका अर्थ "भैंस का बच्चा" भी होता है। एक दिन जब गुरु ने पूछा कि तुम पाड़े लाये? तो शिष्य ने तड़ाक से उत्तर दिया कि "लाया तो था पर दरवाजे पर दो एक के भड़कने पर सारे-के-सारे भाग गये।"

वल्लभभाई में भय का तो नाम-निशान भी नहीं था। बचपन से ही वे निडर थे। बचपन में उनकी काँख में एक फोड़ा निकल आया, गाँव वालों ने दवाई बताई और कहा—"लोहा गर्म करके फोड़े में भोंक दो।" वल्लभभाई तैयार हो गये। लोहे की सलाख गर्म थी, भोंकने वाला एक ओर वल्लभ जैसे कोमल लड़के को और दूसरी ओर लोहे की गर्म सलाख को देखकर हिचकिचाया। वल्लभभाई झुँझला उठे—"जल्दी भोंको, क्या देख रहे हो? लोहा ठंडा हो जायगा। यदि तुमसे नहीं होता तो लाओ, मैं अपने ही अपने हाथों से भोंक लूँ"—कहकर उन्होंने गर्म सलाख से घाव को दाग लिया और उफ़ तक नहीं की।

खतरों से खेलना आपको सदा प्रिय रहा। एक बार आपने कहा था—"मेरे साथ कोई खिलवाड़ नहीं कर सकता; मैं किसी ऐसे काम में नहीं पड़ता जिसमें खतरा न हो। जो लोग आपत्तियों को निमंत्रण दें उनकी सहायता के लिए मैं सदा तत्पर हूँ।"

इस प्रकार सरदार का व्यक्तित्व बनता रहा और पेटलाद, नड़ियाद और बड़ौदा में शिक्षा प्राप्त करते हुए आपने मैट्रिक पास कर ली। बाद में मुख्त्यारी पास करके गोधरा में प्रेक्टिस शुरू कर दी। आपकी वकालत बड़े धड़ल्ले से चली और उसके द्वारा आपने अर्थ और यश अर्जित किया। सरदार जी अदालत में जब बहस करने खड़े होते तो जज भी दंग रह जाते। लोगों का कहना है कि फ़ौजदारी के मामलों में जहाँ कोई आशा नहीं

दिखाई देती थी, सरदार वहाँ भी सफलता प्राप्त कर लेते थे। विलायत जाकर वहाँ से बैरिस्ट्री पास करने का आपका पुराना स्वप्न था। रुपया एकत्र हो जाने पर आपने एक कम्पनी से पत्र-व्यवहार करके विलायत जाने का निश्चय कर लिया, पर जब बड़े भाई श्री विट्ठलभाई पटेल की भी बैरिस्टर बनने की इच्छा देखी तो आपने अपने त्याग का परिचय दिया और पहले बड़े भाई को विलायत भेजकर बैरिस्टर बनाया। तीन वर्ष बाद आपने इंग्लैंड जाकर बैरिस्ट्री पास की और अहमदाबाद में अपनी प्रेक्टिस के द्वारा अपार धन-राशि एकत्रित करने लगे। इधर ज्यों-ज्यों गुजरात की राजनीति में गांधी जी का प्रवेश होने लगा वल्लभभाई की विचारधारा भी बदलने लगी। इसी बीच गोधरा में गांधी जी की अध्यक्षता में प्रान्तीय राजनैतिक सम्मेलन हुआ जिसमें रचनात्मक कार्यों की उपसमिति के मंत्री वल्लभभाई बनाये गये। इन्होंने बड़े उत्साह के साथ कार्य किया और शीघ्र ही अपनी सेवाओं से गुजरात भर में प्रसिद्ध हो गये।

सर्वप्रथम कार्य आपने गुजरात में बेगार बन्द करवाने का किया। पहले कमिश्नर को पत्र लिखा गया। कमिश्नर का उत्तर न आने पर यह चेतावनी दी गई कि सात दिन के अन्दर बेगार बन्द न हुई तो जनता को सत्याग्रह के लिए कहा जायगा। इस पर कमिश्नर ने वल्लभभाई को विचार-विनिमय के लिए बुलाया। बेगार-प्रथा बन्द की गई। सार्वजनिक जीवन में सरदार पटेल की यह प्रथम विजय थी। पहले-पहल आपका गांधी जी की रीति-नीति के प्रति विशेष आकर्षण नहीं हुआ। अहिंसा और सत्याग्रह दोनों दुर्बलों के हथियार प्रतीत हुए; किन्तु जब अहमदाबाद के मजदूरों को गांधी जी ने विजय दिलवाई और गांधी जी के आत्म-बल का आपको परिचय मिला तब आप गांधी जी

के मित्र बन गये । अब आपका झुकाव भी राजनीति की ओर विशेष होने लगा।

उस वर्ष खेड़ा जिले की फसल खराब हो गई थी। किसानों के पास लगान देने के लिए भी पैसा नहीं था। फिर भी सरकार ने लगान की एक-एक पाई वसूल करने की धमकी दी। इस पर गांधी जी ने सरकार से लड़ने का निश्चय किया। उन्होंने अपने साथियों से पूछा कि आपमें से कौन मेरे साथ खेड़ा चलेगा और मेरा सहायक होगा ? वल्लभभाई ने तुरन्त अपना नाम लिखा दिया। खेड़ा के किसानों को तैयार करने के लिए वल्लभभाई ने स्वयं गाँवों का दौरा किया। किसी को स्वप्न में भी ध्यान न था कि अहमदाबाद का सर्वश्रेष्ठ बैरिस्टर गाँव के कँटीले रास्तों में पैदल घूम-घूम कर किसानों से मेल-जोल बढ़ायेगा। वल्लभभाई का बचपन से ऐसा स्वभाव था कि या तो वे काम को हाथ में लेते ही नहीं थे, यदि लेते थे तो पूरी तरह निभाते थे। किसानों की दृढ़ता देख कर सरकार ने लगान माफ़ कर दिया। गांधी जी के सत्याग्रह का चमत्कार देख कर वल्लभभाई गांधी जी के मित्र से शिष्य बन गये। इस घटना के बाद वल्लभभाई ने जीवन-भर गांधी जी का साथ दिया।

प्रथम महायुद्ध के बाद रौलेट-एक्ट का विरोध करने के लिए गांधी जी ने देशव्यापी हड़ताल की घोषणा की। ६ मार्च सन १६१६ को देश ने नये युग में प्रवेश किया। अहमदाबाद में वल्लभभाई ने हड़ताल को इतना सफल बनाया कि सरकार डर गई। सरकार द्वारा जलूस का गोलियों से सत्कार किया गया। १६२० ई० में काँग्रेस ने असहयोग का प्रस्ताव पास किया। तब सरदार ने स्वयं बैरिस्ट्री का ही परित्याग नहीं किया बल्कि अपने लड़के को भी विलायत जाने से रोक दिया। इससे पूर्व आप उन्हें

उच्च शिक्षा के लिए विलायत भेजने की पूरी तैयारी कर चुके थे। गांधी जी के गिरफ्तार होने के बाद गुजरात के नेतृत्व का भार आपके ही कंधों पर पड़ा। आपने इस काम को बड़ी सफलता से निभाया। असहयोग के कारण स्कूलों व कालेजों से बाहर आये विद्यार्थियों के लिए आपने "गुजरात विद्यापीठ" की स्थापना की और उसके लिए धन-संग्रह का कार्य भी किया।

सन् १९२२ ई० में आपको सरकार से एक और टक्कर लेनी पड़ी। गुजरात के एक ताल्लुका 'बोरसद' के किसानों पर सरकार ने इतना लगान बढ़ा दिया था कि जनता में त्राहि-त्राहि मच गई। बम्बई सरकार ने किसानों को बहुत डराया, धमकाया। नया कर लेने की कोशिशें कीं, किन्तु वल्लभभाई के सामने उसकी एक न चली। सरकार ने किसानों पर घोर अत्याचार किया। गोलियाँ तक चलाईं पर सरदार का उनके हृदयों पर इतना प्रभाव था कि वे किंचिन्मात्र भी नहीं डोले और अपने प्रण पर स्थिर रहे। परिणाम-स्वरूप अन्त में सरकार को अपनी आज्ञा वापस लेनी पड़ी। सरदार की इस विजय ने उनका नाम देश-भर में चमका दिया। इसके बाद आपने नागपुर के झंडा-सत्याग्रह में विजय प्राप्त की; फिर गुजरात के बाढ़-पीड़ितों की सहायता का कार्य अपने हाथ में लिया और २००० स्वयंसेवकों का एक दल बना कर पानी से घिरे हुए देहातों में पहुँच गये। वहाँ जल-प्रलय से लाखों प्राणियों के प्राणों की रक्षा की।

उन दिनों आप गुजरात प्रान्तीय काँग्रेस-कमेटी के प्रधान और अहमदाबाद म्युनिसिपल बोर्ड के अध्यक्ष भी थे। इस पद पर रहते हुए आपने पाँच वर्ष तक जनता की सेवा की। नगर की स्वास्थ्य-रक्षा के लिए आपने जो उपयोगी योजनाएँ बनाई थीं, उन पर आज तक कार्य हो रहा है।

गुजरात के जल-प्रलय से खेतियाँ नष्ट हो गईं; लोग भूखे मरने लगे। वल्लभभाई ने सरकार पर ज़ोर डाल कर दुर्भिक्ष-पीड़ितों के लिए डेढ़ करोड़ रुपये की सहायता मंजूर करवा ली। सहायता-कार्य की व्यवस्था का भार वल्लभभाई को स्वयं उठाना पड़ा।

सन् १६२८ में सरकार ने बारदोली के भूखे-नंगे किसानों पर २५ प्रतिशत कर बढ़ा दिया। इस पर वल्लभभाई ने सत्याग्रह की घोषणा कर दी; और परगने भर में ऐसा सुन्दर नियन्त्रण और व्यवस्थापन जारी किया कि कहीं कोई त्रुटि नहीं रही। बारदोली-सत्याग्रह का समर्थन करने के लिए जो अहमदाबाद ज़िला-परिषद् हुई, उसमें सरदार ने लोगों में जान फूँक देने वाला निम्न भाषण दिया था :—

"मैंने तो सरकार के सामने इतनी ही माँग रखी है कि इस मामले की फिर जाँच हो जाय। पर सरकार इस छोटी-सी माँग पर भी राज़ी नहीं है, और पाँच लाख रुपये वसूल करने के लिए यहाँ पर फ़ौज लाकर ५० लाख खर्च करने के लिए तैयार है। उसके पास वह गोरी फ़ौज है न, जो बैठे-बैठे खा रही है, वह उसी को बारदोली लाना चाहती है। पर गुजरात का किसान अब जाग उठा है। मैं किसान से कहता हूँ कि अब उसे डरने की क्या ज़रूरत है। सरकार मराठे, मुसलमान, सिख, गोरखा आदि के १८-२० साल के लड़कों को पकड़ कर ले जाती है और उन्हें थोड़े ही महीनों में मरना सिखा देती है। तब क्या मैं आपको ५-६ महीनों में मरना न सिखा सकूँगा। हाँ, लड़कों को यह सीख लेने दो, हमारी संतान सुधर जायगी। जब तक हम मौत का डर नहीं छोड़ेंगे तब तक भारत का भला नहीं होगा। आप बारदोली जायँगे तो देखेंगे कि वहाँ का किसान मौत को जेब में लिये फिरता

है। वारदोली की औरतों के वारे में 'टाइम्स' में लिखा है कि यदि वहाँ गोलियाँ चलीं तो वहाँ की स्त्रियाँ मर्दों से आगे रहेंगी। इन बहनों ने संवाददाता को पत्र लिखा—'उस समय तू भी हमारे साथ तोपों के सामने खड़ा होने के लिए आ जाना। अगर तुझमें इतनी हिम्मत न हो तो हम तुझे पहनने को चूड़ियाँ और ओढ़ने को चुनरी दे देंगी'।"

वारदोली के इस सत्याग्रह की व्यवस्था में सरदार ने अनुपम प्रतिभा का परिचय दिया। आपने पूरे ताल्लुके को कई भागों में बाँट कर उनमें सत्याग्रह छावनियाँ वना दीं। इन छावनियों में सत्याग्रही और एक मुखिया रहता था। छावनियों में परस्पर सम्पर्क रखने के लिए अपने संदेश-वाहकों की भी व्यवस्था की थी। कुछ गुप्तचर भी रखे हुए थे, जो सरकार के अधिकारियों की चालों का विवरण सरदार को देते रहते थे।

सरकार ने भी इस सत्याग्रह को कुचलने में पूरी शक्ति लगा दी। बम्बई के गवर्नर ने घोषणा कर दी कि बारदोली के सत्याग्रह को कुचलने में ब्रिटिश-साम्राज्य की पूरी शक्ति लगा दी जायगी। सरकार ने गुण्डों की फ़ौज तैयार की जो गाँव-गाँव में जाकर किसानों को मारती पीटती थी और घरों में घुस कर लूट-मार करती थी। स्त्रियों पर बलात्कार किया जाता था।

किन्तु इन अत्याचारों से किसानों के निश्चय में कोई अन्तर न आया। वे अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहे। लगान की फूटी कौड़ी भी सरकारी खजाने में जमा नहीं हुई। तव सरकार ने ज़मीन-जायदाद कुर्क करनी आरंभ कर दी; किन्तु सरकार को कुर्की का माल लेने वाला कोई ग्राहक ही नहीं मिलता था।

सरदार ने पूर्णरूपेण सैनिक-व्यवस्था की हुई थी। प्रत्येक गाँव में स्वयंसेवक नियुक्त थे जो कुर्की करने वाले सरकारी

अफ़सरों को देखते ही वे बिगुल बजा देते थे। बिगुल सुन कर गाँव के किसान खेतों में या जङ्गलों में चले जाते। पुलिस को यह जानना भी कठिन हो जाता कि किसका कौन-सा घर है।

यह बारदोली-सत्याग्रह बाद में इतना महत्वपूर्ण हो गया कि इसे देशव्यापी आन्दोलन का रूप मिल गया। बम्बई असेम्बली के कुछ सदस्यों ने बारदोली के अत्याचारों पर रोष प्रकट करने के लिए असेम्बली की सदस्यता से त्याग-पत्र भी दे दिये। अन्त में सरकार को झुकना पड़ा। जनता की जीत हुई और वल्लभभाई विजयी सेनापति बने। उनको राष्ट्रीय-क्षेत्र में प्रथम श्रेणी के नेताओं में गिना जाने लगा। इस सत्याग्रह में विजयी होने के कारण ही आप 'सरदार' की उपाधि से विभूषित किये गये।

बारदोली की विजय ने एक बार फिर गांधी जी को विश्वास दिला दिया कि सत्याग्रह का अस्त्र अमोघ है। इसका प्रयोग यदि सरदार जैसे सेनानी के हाथ से हो तो वह अवश्य सफल हो सकता है।

इसलिए ३१ दिसम्बर सन् १६२६ को लाहौर-कांग्रेस के अधिवेशन में पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पास होने के बाद गांधी जी ने फिर सत्याग्रह का हथियार सँभाला। उधर गांधी जी ने डाँडी-यात्रा की तैयारी की और इधर सरदार वल्लभभाई भी समर-क्षेत्र में कूद पड़े। गुजरात के गाँवों में सत्याग्रह का महत्व समझाने के लिए दौरा करते हुए गिरफ्तार कर लिये गये। पाँच सौ रुपये जुर्माने के साथ तीन मास की कैद की सजा दी गई। जेल में आपको बड़े कष्टों का सामना करना पड़ा। स्वास्थ्य गिरने लगा और पन्द्रह पौंड वजन कम हो गया।

तीन महीने तीन सप्ताह की सजा के बाद आप २६ जून को रिहा हुए। उस समय सत्याग्रह-आन्दोलन पूरे यौवन पर

था। चारों ओर लड़ाई के बिगुल बज रहे थे। लाठियों की वर्षा हो रही थी। सत्याग्रह के सैनिक हँसते-हँसते लाठी की वर्षा के बीच में जाते थे। गोलियों की बौछार में अपने प्राणों की बाजी लगाकर स्वातन्त्र्य-संग्राम में जूझ रहे थे।

उस समय पंडित मोतीलाल जी के नेतृत्व में आन्दोलन चल रहा था। मोतीलाल जी ने जेल जाते समय सरदार वल्लभभाई को अपना उत्तराधिकारी नियत किया और सरदार ने देश का नेतृत्व सँभाल लिया।

बम्बई से आप सत्याग्रह के युद्ध की सारी व्यवस्था कर रहे थे। वहाँ १ अगस्त को लोकमान्य तिलक की बरसी मनाई गई। लाखों व्यक्तियों का एक जलूस सरदार के नेतृत्व में निकला। बोरीबन्दर स्टेशन के सामने पुलिस ने जलूस को रोक लिया और लोगों को तितर-बितर होने का हुक्म दिया। किन्तु वहाँ तो सभी वल्लभभाई के नेतृत्व में जान पर खेलने आये थे। सत्याग्रह शुरू हो गया। पुलिस आगे नहीं बढ़ने देती थी, सत्याग्रही पीछे न हटने का प्रण किये बैठे थे। हज़ारों नर-नारी बैठ गये और सायं चार बजे से दूसरे दिन प्रातः आठ बजे तक रात-भर भूख-प्यास की चिन्ता छोड़ वहीं बैठे रहे। उस दिन सरकारी सिपाहियों ने बड़ी निर्दयता से लाठी-प्रहार किया। सरदार वल्लभभाई को गिरफ़्तार करके तीन मास की सज़ा दे दी गई।

इसी समय गांधी-इरविन समझौता हो जाने के कारण अन्यान्य राजनैतिक बन्दियों के साथ आपको भी छोड़ दिया गया।

सन् १९३२ में भारतीय राजनैतिक वातावरण बड़ा ही अशान्त था। सरदार भगतसिंह और उनके दो साथियों के फाँसी पर लटका

दिये जाने के कारण जन-हृदय उत्तप्त और उत्तेजित हो रहा था। ऐसी विकट परिस्थिति में काँग्रेस की बागडोर को पूरी तरह अपने हाथ में सँभालते हुए सरदार-श्री ने काँग्रेस के अध्यक्ष-पद को स्वीकार कर लिया। जनता उस समय राष्ट्रपति-पद से बढ़कर किसी भी व्यक्ति को और कोई बड़ा सम्मान नहीं दे सकती थी। उस पद पर उन्हें बैठा कर जनता ने सरदार के प्रति अपनी पूर्ण निष्ठा प्रकट कर दी। पटेल ने कराची-काँग्रेस के अध्यक्ष-पद से जो भाषण दिया वह सब से अधिक छोटा और मार्मिक था, क्योंकि सरदार का आरम्भ ही से 'कथनी' की अपेक्षा 'करनी' में अधिक विश्वास रहा।

कराची-काँग्रेस के पश्चात् सत्याग्रह के पुनः आरम्भ होने पर सरदार-श्री फिर गिरफ्तार कर लिये गये। इस बार आपका स्वास्थ्य बहुत गिर गया था। जेल से मुक्त होने पर अपनी दुर्बलता की परवा न कर राष्ट्रकार्य में जुट गये और सन् १९३६ के चुनाव में काँग्रेस को सफल बनाने के लिए भारत के विभिन्न प्रदेशों के दौरे को चल पड़े। काँग्रेस-पार्लियामेंट्री बोर्ड के अध्यक्ष के रूप में आपको आठों प्रान्तों के काँग्रेसी मंत्रि-मंडलों की रीति-नीति निर्धारित करने का उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य अपने हाथों में लेना पड़ा। आपने बड़े ही अनुशासन के साथ इस कार्य को निबाहा।

सन् १९४२ के "भारत छोड़ो" आन्दोलन में आप गांधी जी के प्रमुख सहयोगी थे। वास्तव में इस आन्दोलन की रूपरेखा आप ही ने प्रस्तुत की थी। उन दिनों आपका जोश और विवेक अद्भुत रूप ग्रहण कर रहा था। इस संघर्ष में पूर्ण विजय को प्रत्यक्ष देखते हुए एक बार आपने कहा था—"स्वाधीनता का यह युद्ध अधिक दिनों तक नहीं चलेगा, कुछ समय में ही अँग्रेज

घुटने टेक देंगे।" हम देखते हैं कि आगे चल कर आपकी यह भविष्यवाणी अक्षरशः सत्य सिद्ध हुई और अँग्रेज भारत से विदा हो गये।

इस आन्दोलन में आप भी काँग्रेस-कार्यसमिति के अन्य सदस्यों के साथ अहमदनगर किले में बन्द कर दिये गये और १५ जून १९४५ को जेल से मुक्त होकर फिर राष्ट्र-सेवा में लग गये। इस समय मुस्लिम-लीग स्वतन्त्रता के मार्ग में बड़ी बाधाएँ उपस्थित कर रही थी। उस समय आपने स्पष्ट कहा कि हम अँग्रेजों से भी स्वतंत्रता के लिए लड़ेंगे और जो मुसलमान मार्ग में रोड़ा बनेंगे, उनसे भी लड़ेंगे। आपने कहा कि आत्मरक्षा के लिए हथियार उठाना हिंसा नहीं है। अहिंसा दुर्बलों का नहीं, वीरों का हथियार है।

१५ अगस्त् सन् १९४७ को नवीन मंत्रि-मंडल में तथा उससे पूर्व अन्तरिम मंत्रि-मंडल में भी प्रचार, रियासती विभाग तथा गृह-विभाग जैसे उत्तरदायित्व तथा महत्वपूर्ण विभाग आप ही को सँभालने पड़े। इसके साथ ही उप-प्रधानमंत्री पद पर भी आप ही को प्रतिष्ठित किया गया।

आप जिस कार्य में हाथ डाल देते उसके लिए प्राणों की बाजी लगा देते। ९ दिसम्बर से भारतीय विधान-परिषद् के अधिवेशन की घोषणा हो चुकी थी, पर लीग के बहिष्कार के कारण ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने इस अधिवेशन को स्थगित करने के उद्देश्य से आपको और पंडित-श्री को लन्दन बुला लिया। आपने लन्दन जाने से इन्कार करते हुए घोषणा की—"आकाश चाहे गिर पड़े, पृथ्वी चाहे फट जाय, विधान-परिषद् का अधिवेशन ९ दिसम्बर से पीछे के लिए नहीं टल सकता"। तदनुसार ऐसा ही हुआ।

भारत को स्वाधीन करने के साथ-साथ अँग्रेज कूटनीतिज्ञ ने देश से विदा होते-होते इस देश के सर्वनाश के लिए अनेक आयोजन कर डाले। इस नवोदित भारतीय प्रजातन्त्र को कुचलने के लिए जहाँ भारत की दोनों सीमाओं पर पाकिस्तान के रूप में घातक प्रतिद्वन्द्वी पड़ौसी खड़ा कर दिया, वहाँ राष्ट्र के अन्दर भी छः सौ से अधिक रियासतों को सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र सत्ता समर्पित कर दी। इस प्रकार अँग्रेज ने जाते समय इन छः सौ रियासतों के राजाओं के कानों में यह फूँक मार दी कि अब तुम भी काबुल और नेपाल आदि शासकों के समान पूर्ण स्वाधीन हो। अँग्रेज शासकों ने उन्हें यहाँ तक उत्तेजना दी कि देखना कहीं भारत की केन्द्रीय सरकार के दास मत बन जाना। इसका अर्थ यह था कि जहाँ भारत के बाहर पंजाब बंगाल रूप में दो पाकिस्तान बनें, वहाँ भारत में ही छः सौ से अधिक पाकिस्तान बने रहते और देश के टुकड़े-टुकड़े हो जाते और स्वतन्त्रता तो दूर रही इसकी सत्ता ही समाप्त हो जाती।

इन दुर्दमनीय रियासतों को भारतीय संघ में सम्मिलित करना वास्तव में एक बड़ी टेढ़ी खीर थी। हैदराबाद, कोचीन, जूनागढ़ और काश्मीर जैसी रियासतें तो अपने आपको पूर्ण स्वतन्त्र मानकर विदेशों में अपने राजदूत भेजने तक के स्वप्न देखने लगी थीं। कई रियासतें मिलकर अपना एक गुट बनाकर भारतीय संघ से अलग होने के लिए हाथ पैर मारने लगीं। हमारा और सम्पूर्ण विश्व का यह मत है कि यदि महामति पटेल अपने दृढ़ और निर्भीक व्यक्तित्व के साथ इन रियासतों को भारतीय संघ में प्रविष्ट करने के लिए कमर कस कर रात-दिन खून-पसीना एक न कर डालते तो इन रियासतों की स्वतन्त्रता के कारण देश की न जाने क्या दशा हो जाती। महामति सरदार पटेल ने अपनी

अपूर्व क्षमता, तेजस्विता, दृढ़ता और कर्मठता से सम्पूर्ण शक्ति के साथ भारतीय रियासतों को न केवल भारतीय संघ में सम्मिलित ही कर दिया; अपितु उनके अनेक संघ बनाकर राजाओं की निरंकुश सत्ता को भी समाप्त कर दिया। आज भारत में एक भी ऐसी रियासत नहीं है जहाँ की सत्ता प्रजा के प्रतिनिधियों के हाथ में न हो। सरदार पटेल का यह कार्य न केवल भारत के इतिहास में, प्रत्युत समग्र प्रजातन्त्रवादी देशों के इतिहासों में स्वर्णाक्षरों में अङ्कित रहेगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं।

सर्वप्रथम नवानगर (काठियावाड़) के राजा साहब (जिन्हें जाम साहब कहते हैं) ने सिर उठाने का प्रयत्न किया, पर वे सरदार की त्योरियों को देख कर दब गये। फिर जूनागढ़ के नवाब ने पाकिस्तान से गठ-बंधन करने का प्रयत्न किया, पर सरदार की भौंह के टेढ़े होते ही वहाँ का नवाब पाकिस्तान को भाग गया और इस प्रकार १२ नवम्बर सन् १६४७ को जूनागढ़ में प्रजातन्त्र-राज्य की स्थापना करते हुए, हैदराबाद को भी चेतावनी दे दी कि यदि हैदराबाद का निज़ाम भी उल्टी चालें चलता रहा तो उसका भविष्य भी वही होगा जो जूनागढ़ के नवाब का हुआ; किन्तु निज़ाम ने इस चेतावनी पर कुछ ध्यान न देकर अपने मन्त्रियों के इशारों पर नाचते हुए, भारतीय-संघ से अलग होने के लिए विदेशों से सहायता माँगी और हाथ-पैर मारने शुरू किये। बहुत कुछ युद्ध-सामग्री मँगवा भी ली। अब तो सरदार को हैदराबाद में कार्यवाही करने के लिए विवश होना पड़ा। फलतः पाँच ही दिन में निज़ाम ने हथियार डाल कर आत्म-समर्पण कर दिया। हैदराबाद के भारत-विलय के पश्चात् केवल काश्मीर ही एक ऐसी रियासत बच रही थी जिसका भारत में पूर्णरूपेण विलय नहीं हो पाया था। कुछ स्थानीय मुस्लिम-जनता, कुछ ऐंग्लो-अमेरिकन गुट के

पक्षपातपूर्ण व्यवहार, कुछ पाकिस्तान के अड़ंगे तथा कुछ अन्तर-राष्ट्रीय परिस्थितियों के कारण काश्मीर की समस्या पूरी तरह उनके जीते-जी सुलझ न सकी; पर फिर भी हमारा विश्वास है कि वे यदि अब तक बने रहते तो काश्मीर को भी बिना कोई विशेष अधिकार दिये पूर्णरूपेण भारतीय-संघ में सम्मिलित होने के लिए राजी कर लेते।

रियासतों की समस्या को इस प्रकार सुलझाया ही था कि उनके सामने भाषा-वार प्रान्तों के निर्माण का प्रश्न आ खड़ा हुआ। आपका दृढ़ विश्वास था कि देश को खण्डित करने का कोई भी कार्य राष्ट्र को नष्ट कर देगा। इसलिए आपने भाषा-वार प्रान्तों के निर्माण का विरोध किया और ऐसे प्रान्त नहीं बनने दिये।

आपने शरणार्थियों की विकट समस्या को सुलझाने के लिए भी अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दी थी। वास्तव में पण्डित नेहरू और सरदार के प्रयत्नों से ही शरणार्थियों की स्थिति बहुत कुछ सुधर पाई।

पाकिस्तान और मुस्लिम जनता के प्रति भी आप सदा दृढ़ और निर्भीक विचार व्यक्त करते रहे। १९४८ ई० में पाकिस्तान को चेतावनी देते हुए आपने कहा—"हम पाकिस्तान से केवल इतना ही चाहते हैं कि वह हमारे मामलों में हस्तक्षेप न करे। तुम्हें पाकिस्तान मिल गया, उसे बहिश्त बनाओ या दोजख, यह तुम्हारा अधिकार है। पाकिस्तान वाले कहते हैं कि उसके शत्रु उसे नष्ट करना चाहते हैं; पर मैं कहता हूँ कि यह उनके नाश का कारण बाहर से नहीं; भीतर से ही उपस्थित होगा।"

लखनऊ की एक सभा में उन्होंने उन भारतीय मुसलमानों को, जो पाकिस्तान से सहानुभूति रखते थे, खुले शब्दों में

फटकारते हुए कहा कि उन्हें या तो भारतीय बन कर रहना चाहिए, या पाकिस्तान चले जाना चाहिए।

स्वार्थी नेताओं के बहकावे में आकर हड़ताल कर देने वाले मजदूरों को भी उन्होंने खुले शब्दों में भर्त्सना की और उन्हें ऐसे राष्ट्र-घातक कार्यों से रोका।

इस प्रकार देश को अनेक बार अराजकता के गर्त में गिरने से बचा लिया। गांधी जी के निधन से सरदार पटेल की कमर टूट गई। वास्तव में, बापू और सरदार दोनों एक दूसरे के पूरक थे। बलिदान से पूर्व महात्मा जी सरदार-श्री से ही आवश्यक विषयों पर परामर्श कर प्रार्थना-सभा में आ रहे थे। दोनों की पहली भेंट अहमदाबाद में सन् १६१६ में हुई थी। उस समय सरदार बैरिस्टरों के ठाट-बाट में रहते थे। आरम्भ में वे गांधी जी को कुछ भी महत्व नहीं देते थे। यहाँ तक कि इसी वर्ष जब वे सर्व-प्रथम अहमदाबाद की "बार-रूम" में भाषण देने आये तो वल्लभभाई मजे से ताश खेलते रहे। उन्होंने ताश को छोड़ कर गांधी जी का भाषण सुनने में समय नष्ट करना उचित नहीं समझा। पर उसके कुछ ही दिनों बाद बापू जी से ऐसे प्रभावित हुए कि फिर आजन्म उनके शिष्य और सखा बने रहे।

गांधी जी भी सरदार के प्रेम को बहुत महत्व देते थे। इस सम्बन्ध में एक बार गांधी जी ने लिखा था—"सरदार वल्लभभाई पटेल का सहवास मेरे लिए बड़े सौभाग्य की बात थी। मुझे उनके अद्वितीय शौर्य का पता था। पर मैं कभी उनके साथ नहीं रहा था, जिसका सौभाग्य मुझे इन सोलह महीनों में प्राप्त हुआ। जिस स्नेह से उन्होंने मुझे प्लावित कर दिया उससे मुझ को अपनी स्नेहमयी माता का स्मरण हो आता है। मुझे यह नहीं मालूम था कि उनमें मातृ-तुल्य गुण हैं।" इस प्रकार ३२ वर्ष

तक कंधे से कंधा मिला कर काम करने वाले साथी और पथ-प्रदर्शक के उठ जाने पर सरदार शोक-विह्वल होगये। किन्तु वे कुछ ही समय पश्चात् दुगुने उत्साह के साथ राष्ट्र-कार्य में प्रवृत्त हो गये।

हिन्दी से आपको आरम्भ से ही अगाध प्रेम था। अहमदाबाद काँग्रेस के आप स्वागताध्यक्ष थे। इस बार सर्वप्रथम आपने स्वागताध्यक्ष का भाषण अँग्रेजी में न देकर हिन्दी में दिया और वहाँ पर प्रतिनिधियों व नेताओं के बैठने के लिए भी कुर्सियाँ आदि न बिछा कर फ़र्श ही बिछाये गये। तब से लेकर अधिकतर आप भाषण हिन्दी में ही देते थे। रेडियो-विभाग में उर्दू के स्थान में हिन्दी का प्रचलन बहुत कुछ आपके प्रयत्नों से ही हुआ। आप गांधी जी की भाँति प्रार्थना, प्रवचन, भजन-कीर्तन, गीता-रामायण आदि धार्मिक क्रिया-कलाओं के लिए समय नहीं निकाल पाते थे। फिर भी मनसा-वाचा-कर्मणा, वेष-भूषा, खान-पान, रहन-सहन, सभी दृष्टियों से भारतीयता के पूर्ण उपासक थे।

आपने महाप्रयाण से पूर्व सोमनाथ-मंदिर के जीर्णोद्धार का ऐसा महत्वपूर्ण कार्य किया जो इतिहास के पृष्ठों में सदा स्वर्णाक्षरों में अङ्कित रहेगा।

इसमें कुछ सन्देह नहीं कि जिसे गांधी जी ने माता के समान कोमल हृदय वाला बताया, वही सरदार कर्त्तव्य-पालन, शासन-सूत्र के संचालन तथा प्रतिपक्षी के मान-मर्दन के अवसर उपस्थित होने पर वज्र से भी कठोर हो जाता था। यहाँ तक कि एक बार अदालत में बहस करते हुए अपनी पत्नी की मृत्यु का तार पाकर किञ्चित्-मात्र भी विचलित नहीं हुए और बहस समाप्त करके ही घर लौटे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि—

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि ।
लोकोत्तराणां चेतांसि को नु विज्ञातुमर्हति ॥

अर्थात्

सुमृदु शिरीष प्रसून ते, कठिन वज्र ते होय ।
लोकोत्तर पावन चरित, समुझि सकत नहि कोय ॥

यह उक्ति सरदार-श्री के चरित्र पर अक्षरशः चरितार्थ होती थी। १५ दिसम्बर सन १९५० को यह अनुपम वीर-पुंगव नर-रत्न संसार से सदा के लिए विदा होकर स्वर्ग सिधार गया। इस दिव्यशक्ति के उठ जाने से काँग्रेस का संतुलन बिगड़ गया। अब सम्पूर्ण सत्ता एक पक्ष में केन्द्रित हो गई। राष्ट्र के वे अधूरे स्वप्न, जो उनके रहते तत्काल पूर्ण हो सकते थे, अधूरे ही रह गये। वास्तव में उस नर-केशरी के उठ जाने से राष्ट्र को जैसी महती क्षति हुई उसकी पूर्त्ति असम्भव ही है।

कठिन शब्दार्थ

कठिन शब्दार्थ

महात्मा गांधी

पृष्ठ १

व्यवसाय—काम, पेशा

प्रकृति—स्वभाव

साक्षात्कार—भेंट, दर्शन

प्रवीण—चतुर

पृष्ठ २

साध्वी—पतिव्रता, साधुस्वभाव की

चांद्रायण—एक व्रत का नाम, जिसमें चन्द्रमा की बढ़ती या घटती के अनुसार भोजन की मात्रा नियत की जाती है।

पृष्ठ ३

प्रतिफलित—प्रतिबिंबित, सिद्ध

मन्द—धीरे-धीरे

पल्लवित—फला-फूला

पृष्ठ ४

निष्ठा—दृढ़ता

त्रुटि—न्यूनता

पृष्ठ ५

आश्चर्यान्वित—हैरान

लालसा—इच्छा

पृष्ठ ६

प्रेरणा—उकसाना

पृष्ठ ७

संघर्ष—हलचल

पृष्ठ ८

कटु—कड़वे

शेष—बाकी

पृष्ठ ९

मुक्ताबिन्दु—मोती की बूँदें, आँसू

परिचर्या—सेवा

पृष्ठ १०

उपेक्षा—परवा न करना

निरामिष—मांस रहित

पृष्ठ ११

शिक्षिका—अध्यापिका

भाषण-कला—व्याख्यान देने की विद्या

पृष्ठ १२

बाह्याडम्बरी–बाह्य-बाहरी, आड-म्बर-दिखावा

समस्या–प्रश्न, Problem

वेला–समय

पृष्ठ १३

बटौती–विवरण Detail

अपव्यय–व्यर्थ ख़र्च

यथासंभव–यथाशक्ति

पृष्ठ १४

धारणा–विश्वास

पृष्ठ १५

कर्मण्य–कर्मनिष्ठ

प्रकृति–स्वभाव

कर्मठ–कर्म में लगे रहने वाला

सम्बल–आश्रय

विपत्सखा–विपत्ति का मित्र

पृष्ठ १६

पारिश्रमिक–शुल्क, फ़ीस

पृष्ठ १७

आश्वासन–तसल्ली

निरादृत–अपमानित

अभिधान–नाम, संज्ञा

शिरस्त्राण–सिर का वस्त्र, पगड़ी या टोपी

पृष्ठ १८

स्थिति–अवस्था

अस्वीकार–नामंजूर

पृष्ठ १९

परिस्थिति–हालात

अधिकारि-वर्ग–Officers

पृष्ठ २०

अनुरोध–आग्रह

वर्ण-द्वेष–रंग के कारण वैर

पृष्ठ २१

नव–नये

उत्तरदायित्व–ज़िम्मेवारी

पृष्ठ २२

वास्तविकता–सच्चाई Reality

मताधिकार–वोट देने का हक़

पृष्ठ २३

आविर्भाव–प्रकाश में आना

पृष्ठ २४

प्रतियाँ–कापियाँ

पृष्ठ २५

श्रमिकों–मज़दूरों

प्रवासी–विदेश में रहने वाला

उग्रवादी–Extrement

आतंकित–भयभीत

वैधानिक–कानूनी

पृष्ठ २६
जटिल—विकट
अनिवार्य—आवश्यक

पृष्ठ २७
उत्तेजित—भड़के हुए

पृष्ठ २८
उपनिवेश—Colony
सदस्यता—मेम्बरी
प्रभूत—बहुत

पृष्ठ २९
सार्वजनिक—सब की
परिग्रह—संग्रह
अहित—बुराई
उपहारों—भेटों
निर्धारित—नियत

पृष्ठ ३०
अधिवेशन—उत्सव, इजलास
तन्त्र—नीति
पर्याप्त—काफ़ी

पृष्ठ ३२
विधि-विधानों—कानूनों
कार्यान्वित—प्रयोग में लाना
अर्पित—भेंट
अस्तित्व—सत्ता
विराट्—महान्

पृष्ठ ३३
अवज्ञा—आज्ञा-उल्लंघन
तत्संबंधी—इस विषय में
पर-दुःख-कातर—दूसरों के दुःखों में दुःखी
समिति—सभा
विश्वासघात—धोखा

पृष्ठ ३५
विकसित—उन्नत, विकास में आया हुआ

पृष्ठ ३६
अनियमित—ग़ैर-कानून
विधि-विहित—कानून के अनुसार उचित

पृष्ठ ३७
व्यवस्थित—संगठित
प्रभूत—अत्यन्त
सक्रिय—Active
गुरुत्व—गंभीरता

पृष्ठ ३८
देहावसान—मृत्यु

पृष्ठ ४२
विभाजन—टुकड़े करना
पर्यन्त—तक
वैमनस्य—विरोध के भाव

निर्वासन—देश-निकाला

ख्याति—प्रसिद्धि

पृष्ठ ४३

पद्धति—रीति या मार्ग

सुपुष्ट—दृढ़, ठोस

उद्वेलित—हिल-डुल

पृष्ठ ४४

प्रसार—प्रचार, फैलाव

भावी चेन्न तदन्यथा—जो होना होता है वह होकर रहता है।

भावी—भाग्य।

पृष्ठ ४५

गोचर—दिखाई

सुदीर्घ—लम्बे

पृष्ठ ४६

विपक्षवालों—विरोधियों

यातनाएँ—कष्ट

पृष्ठ ४७

होम-रूल—स्वराज्य

स्तम्भ—खम्बा, आधार

प्रजातान्त्रिक—Democratic

निर्धारण—निर्णय

पृष्ठ ४८

उपाधियाँ—डिगरियाँ

अनुमति—सलाह

शोधन—शुद्धि

पृष्ठ ४९

अभियोग—अपराध

सन्तुलन खोना—Balance अर्थात् आपे से बाहर होना

सरल—आसान

पृष्ठ ५०

कारावास—जेल में निवास

तिलांजलि—त्याग

पृष्ठ ५१

आकर्षण—खिंचाव

अवकाश—छुट्टी

निराकरण—दूर हटाना

पृष्ठ ५२

विकसित—उन्नत

कार्मक्रम—प्रोग्राम

आवेश—जोश

संयम—वश में रखना

पृष्ठ ५३

उपास्यदेव—पूजा के देवता

जीवन-वृत्ति—जीवनचर्या

विधायक—बनाने वाले

पृष्ठ ५४

प्रवृत्त होना—लगना

उपासना—पूजा

तथाकथित—कहा जाने वाला

पृष्ठ ५५
कर्मण्य–उद्यमी
कर्मण्य–उद्यम की

पृष्ठ ५६
सत्ता–शक्ति
झंझावात–आँधी
उत्तेजनापूर्ण–भड़काने वाली

पृष्ठ ५६
सर्वेसर्वा–डिक्टेटर

पृष्ठ ६४
अनियमित–कानून-विरुद्ध
विकृत–बिगड़ा

पृष्ठ ६५
सचिव–मन्त्री
अस्पृश्य–अछूत
उपवास–निराहार व्रत
आजीवन–आमरण
स्थगित–बन्द करना
भगवत्प्रेरणा–ईश्वर की इच्छा
असीम–अनन्त

पृष्ठ ६६
स्वत:–अपने आप
केन्द्र-बिन्दु–लक्ष्य
व्यवस्थापिका–असेम्बली
समक्ष–सामने
इतिश्री–अन्त

पृष्ठ ६७
करनी और कथनी–जो करो सो कहो
अन्तर्मन–अन्दर से
परिपक्व–पकी हुई

पृष्ठ ६८
सान्त्वना–तसल्ली

पृष्ठ ७१
दानव–राक्षस
प्रदर्शित–दिखलाया
तत्कालीन–उस समय की

पृष्ठ ७२
सामूहिक–मिल कर
पद्धति–मार्ग

पृष्ठ ७३
अमुद्रित–अप्रकाशित
परामर्श–सलाह
विच्छेद–तोड़ना

पृष्ठ ७४
आत्म-निर्भरता–अपना भाग्य नियत करने का अधिकार

पृष्ठ ७७
जनित–उत्पन्न
सर्वतोमुखी–सबकी सौंकी

पृष्ठ ७८
अनुदार–Conservative party

पृष्ठ ७६
निमन्त्रित–बुलाये गये

पृष्ठ ८०
सुदीर्घ–लम्बे
विमर्श–विचार

पृष्ठ ८१
अन्तरिम सरकार–Enterim Government

पृष्ठ ८२
गृह-युद्ध–Civil war

पृष्ठ ८३
सामूहिक–जन-समुदाय का
संहार–विनाश

वात्सल्य–प्रेम
विदीर्ण–फटा हुआ
अग्निसात्–जलाया
विह्वल–व्याकुल
प्रतिक्रिया–Reaction

पृष्ठ ८४
विरत करने–हटाने
सरलातिसरल–अत्यन्त सरल
दिव्य–देवता रूपी
विधान-परिषद्–Constituent Assembly

पृष्ठ ८६
निरीह–इच्छा रहित अर्थात् निर्दोष

पृष्ठ ९१
अविचलित–दृढ़

पृष्ठ ९२
'यद्भावि न तद् भावि भावि चेन्न तदन्यथा'–जो नहीं होना होता वह कभी नहीं होता और जो होना होता है वह होकर रहता है
अभिनन्दन–स्वागत
अभिषेक–स्नान, राजतिलक

पृष्ठ ९४
अभिज्ञ–परिचित

पृष्ठ ९६
लेशमात्र–कुछ भी

पृष्ठ ९७
उत्तेजित–भड़के हुए

पृष्ठ ९८
रंजित–रंगे हुए

पृष्ठ ९९
निर्वाण–मोक्ष
आजानु–घुटनों तक
अवसन्न–दुःखपूर्ण
प्रवहमान–बही जा रही

पृष्ठ १०१

तमिस्र–अन्धकार

पावन–पवित्र

अनावृत–खुला

पृष्ठ १०२

सज्जित–सजाई हुई

मन्थर–मन्द

आसीन–बैठे

नर-मुण्ड–शिर

वातावरण–वायुमण्डल

विकीर्ण–बिछाये, बिखरे

डा० राजेन्द्रप्रसाद

पृष्ठ ११०

ब्रह्ममुहूर्त–प्रातः से पहले

सहिष्णुता–सहनशीलता

पृष्ठ ११२

उन्मत्त–पागल

अनुमति–अनुज्ञा

पृष्ठ ११३

नियुक्त–रखना

आवृत्ति–बार-बार पढ़ना.

पृष्ठ ११४

महत्त्वाकांक्षी–ऊँचे आदर्शों वाले

विश्वविद्यालय–यूनिवर्सिटी

अपूर्व–अनोखा

सुबोध–सरल

पृष्ठ ११५

अग्रज–बड़े भाई

अवसर–मौका

पृष्ठ ११६

मनोयोग–मन लगा कर

शिथिल–निर्बल

छात्रवृत्ति–वज़ीफा

पृष्ठ ११७

विज्ञान–साइंस

आविष्कार–ईजाद

प्रगाढ़–घने

प्रसृत–फैला

न्यायाधीश–जज

उपासक–पूजक, विद्वान्

पृष्ठ ११९

उपाध्याय–प्रोफेसर

निःशुल्क–मुफ़्त

पृष्ठ १२०

कुशलता–चतुरता

उग्र–कठोर

पृष्ठ १२१

बहिष्कार–बाईकाट

ओजस्वी–बलवान्

अविच्छिन्न–निरन्तर

पृष्ठ १२४

अमानुषिक—राक्षसी

पृष्ठ १२५

संगृहीत—एकत्रित

सदस्य—मेम्बर

समिति—कमेटी

विश्वसनीय—विश्वास के पात्र

पृष्ठ १२७

प्रदीप्त—जलाया

पृष्ठ १२८

विशदता—विस्तार

पृष्ठ १२६

विधान—कानून

अवैध—कानून-विरुद्ध

भूत—बुराई

पृष्ठ १३०

आतुरालय—अस्पताल

प्लावन—बाढ़

पृष्ठ १३१

निष्काम—स्वार्थ-रहित

भव्य—सुन्दर

पृष्ठ १३२

प्रान्त-पालों—गवर्नरों

अन्तरिम—उतना या नियत

पृष्ठ १३३

वेश-भूषा—पहरावा

पृष्ठ १३४

स्तुत्य—प्रशंसनीय

सात्त्विक—सतोगुणी, सादा

जवाहरलाल नेहरू

पृष्ठ १४०

कार्यक्रम—प्रोग्राम

स्थिति—व्यवस्था

तरुण—युवक

चेतना—जीवन

सक्रिय—क्रियात्मक

पृष्ठ १४१

आयोजन—प्रबन्ध

सान्त्वना—तसल्ली

पृष्ठ १४२

अभूतपूर्व—अद्भुत

कटिबद्ध—तैयार

छोर—किनारा

विच्छेद—तोड़ना

पृष्ठ १४४

यातनाओं—कष्टों

चेयरमैन—प्रधान

पृष्ठ १४५

निरंकुश—उच्छृंखल, मन-मर्जी का

पृष्ठ १४६

सहमत—राज़ी

वैमनस्य—मतभेद

व्यस्त—लगा हुआ

पृष्ठ १४७

कम्युनिज्म—साम्यवाद

अध्यक्षता—प्रधानता

निर्मित—बना हुआ

पृष्ठ १४८

उपक्रम—सिलसिला

भगीरथ—कठिन

पृष्ठ १४९

निर्वाचित—चुना गया

कर्मठ—काम में लग्न

अदम्य-न दबने वाली

पृष्ठ १५०

प्रतिबन्ध—रोक

रोगजर्जर—बीमारी से कमज़ोर

पृष्ठ १५१

शर-शय्या—बाणों का बिस्तर

नाहर—सिंह

विक्षुब्ध—बेचैन

पृष्ठ १५३

वैयक्तिक—एक पुरुष सम्बन्धी

स्वानुभूत—अपने तजुर्बे में आई हुई

अंकित—लिखा

अविरल—लगातार

निर्भीकतापूर्वक—निडरता से

आश्वासन—तसल्ली

अनुमति—सलाह

पृष्ठ १५४

अपौरुषेय-मनुष्य से न हो सकने योग्य

पौरुष—मेहनत

अनुयायी—पीछे चलने वाले

पृष्ठ १५५

युद्धग्रस्त—लड़ाई में लगा हुआ

घोषित करना—बात फैलाना

प्रत्यक्ष—सामने

श्रीगणेश—आरम्भ

पृष्ठ १५६

दुरभिसंधि—अनमेल व्यवहार

पृष्ठ १५७

प्रमुख—मुख्य

उन्माद—पागलपन, बद-मिज़ाजी

वेला—समय

समक्ष—सामने

पारावार—समुद्र

निरीह—निराश्रय

पृष्ठ १५८

विपन्न—विपत्ति में पड़े हुए

उपमान—मिसाल
विकट—अजीब
समस्या—पहेली
किंकर्त्तव्यविमूढ़—विचारहीन
महामति—परम बुद्धिमान्

पृ० १५६
आततायियों—बुरी तरह कष्ट देने वालों
सुरक्षा-परिषद्—U. N. O.
वयस्क—स्त्री १७ वर्ष और पुरुष २० वर्ष से ऊपर वयस्क माना जाता है।
निर्भीक—निडर
कर्म-वीरपुंगव—कार्यकर्त्ताओं में श्रेष्ठ
पंचमांश—पाँचवाँ हिस्सा
मंत्र-मुग्ध-सी—परम शान्त
क्षमता—सामर्थ्य

पृ० १६१
सर्वस्व—सब कुछ
इंगित—इशारा

पृ० १६२
अहर्निश—रात-दिन
परिणत—बदलना
कृतकृत्य—सफल
वसुधा—पृथ्वी
समग्र—सारी

सरोजिनी नायडू

पृ० १६४
आदृत—आदर की गई
विभूति—ऐश्वर्य
अक्षुण्ण—स्थिर
गर्त्त—गढ़ा

पृ० १६५
सम्पर्क—सम्बन्ध
महावट—सूखा वृक्ष

पृ० १६६
अरुणोदय—प्रातःकाल
अध्ययनाध्यापन—पढ़ना-पढ़ाना

पृ० १६७
वर्जित—मना

पृ० १६६
मनन—विचारना
कृत्रिम—बनावटी

पृ० १७१
ख्याति—मशहूरी
प्रतिभा—बढ़ने वाली शक्ति
ह्रास—नाश
पताका—झंडा

पृ० १७२
संकीर्णता—कमी

अर्चना–पूजा

त्रास–भय

पृष्ठ १७३

आह्वान–बुलावा

मौलिक–बिलकुल नई

पृष्ठ १७४

अविच्छिन्न–निरन्तर

आह्लाद–प्रसन्नता

भंगुर–नाशवान्

विच्छिन्न–टूटा हुआ

पृष्ठ १७५

निर्वाण–मोक्ष

पृष्ठ १७६

उद्गार–मन के उठे भाव

स्मारक–यादगार

स्पन्दन–गति, हिल-जुल

पृष्ठ १७८

मंतव्यों–विषयों

पृष्ठ १८१

उद्भव–पैदाइश

ओजस्विनी–तेजस्वी

वक्तृता–व्याख्यान

वैचित्र्य–विचित्रता

पृष्ठ १८३

आधिपत्य–राज्य

विपरीत–उल्टा

पृष्ठ १८५

धारणा–विचार

सूक्ष्मता–बारीकी

अवगत–ज्ञात

पृष्ठ १८८

सम्मुख–सामने

प्रवर्तित–चालू

युगल–दोनों

पृष्ठ १९२

आकस्मिक–अचानक

लाला लाजपतराय

पृष्ठ १९४

मर्मरोपल-निर्मित–संगमर्मर पत्थर के बने हुए

'पंचनद-पंचानन'–पंजाब का शेर

वीर-मुद्रा-विभूषित–वीरों के प्रभावशाली आकार से सजी

खड्गधारी–तलवार लिये

पृष्ठ १९५

प्रतिरोध–मुकाबला

पराजित–हारा

मध्याह्नकाल–दोपहर

अर्धचेतना–आधी होश

पृष्ठ १६७

तिलांजलि—बिल्कुल छोड़ना

पृष्ठ १६६

द्रवित—पिघलना

दुर्भिक्ष—अकाल

बुभुक्षा—भूख

त्राहि-त्राहि—बचाओ-बचाओ

तांडव-नृत्य—नाश का नाच

पृष्ठ २०५

पराकाष्ठा—हद

कोषाध्यक्ष—ख़ज़ानची

पृष्ठ २१०

धमनी—नाड़ी

असहकार—साथ न देना

अकलुषित—निर्दोष

पृष्ठ २११

स्वत्व—अधिकार, हक़

पृष्ठ २१२

पदान्वेषी—पद की खोज वाले

पृष्ठ २१३

रोष—गुस्सा

पारावार—अन्त

अवहेलना—लापरवाही

चिरनिद्रा—मृत्यु

पृष्ठ २१४

विभावसु—सूर्य

सरदार पटेल

पृष्ठ २२०

विचार-विनियम—परामर्श, सलाह

पृष्ठ २२४

संदेश-वाहक-समाचार ले जानेवाला

पूर्णरूपेण—पूरी तरह से

पृष्ठ २२५

अमोघ—अव्यर्थ

समर—युद्ध

पृष्ठ २२७

निष्ठा—श्रद्धा

महामति—बड़े बुद्धिमान्

निर्भीक—निडर

निरंकुश—उद्दण्ड

विलय—ख़पत

पृष्ठ २३२

महाप्रयाण—स्वर्ग-गमन

जीर्णोद्धार—टूट-फूट की मरम्मत

प्रतिपक्षी—शत्रु

किञ्चित्-मात्र—ज़रा भी

महती—बड़ी भारी

क्षति—हानि